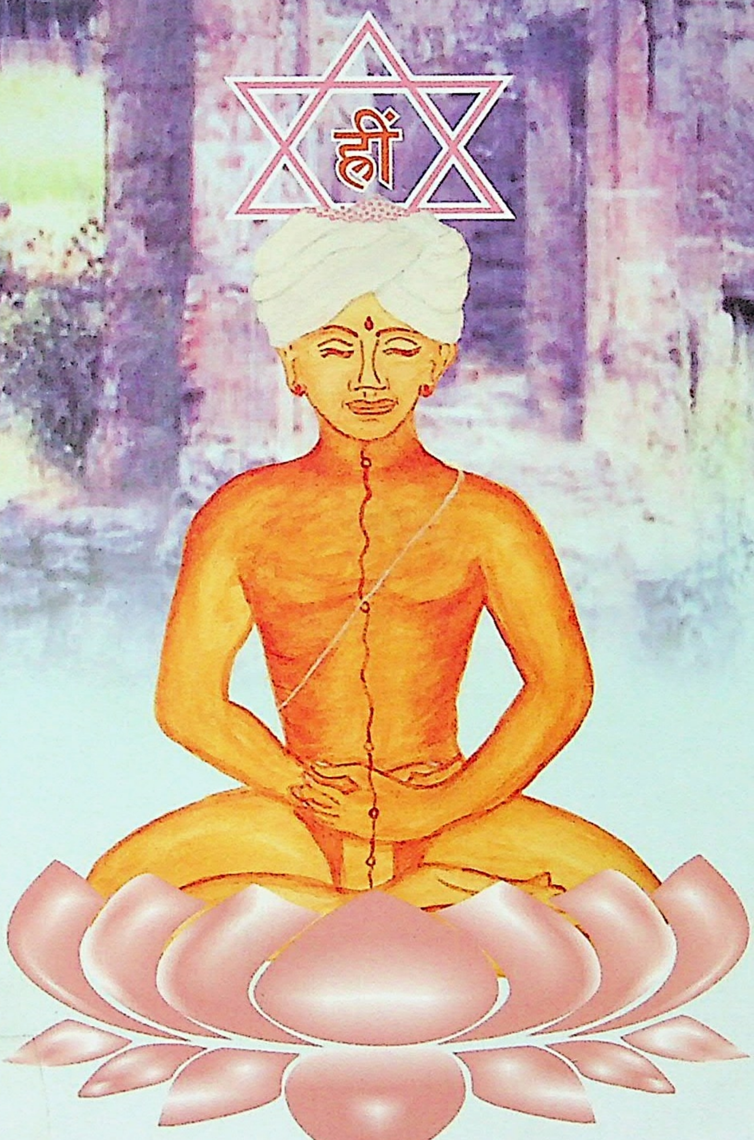
भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट प्रकाशन

कश्मीर की सन्तपरम्परा



सम्पादक - प्रो० (डॉ०) भूषणलाल कौल

'प्रभु एक हैं। उनके सामने सब बराबर हैं।'

– भगवान गोपीनाथ जी

सर्व बन्धुत्व के इस सन्देश को भगवानजी ने पूरे आत्म विश्वास के साथ भक्तजनों तक पहुँचाया।

'प्रभु एक हैं' – कण-कण में व्याप्त हैं, प्रत्येक अणु में विद्यमान हैं। कालातीत होते हुए भी काल की सीमाओं में बन्धे हुए जीव के मानस में विद्यमान हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

'समोऽहं सर्व भूतेषु नमे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
यै भजन्ते तु माँ भक्यामयिं ते तेषु चाप्यऽहम्।। ६/२६

भगवान जी ने इसीलिये कहा है कि श्रीमद्भगवद्गीता का कोई एक श्लोक ही हमारे बन्द चक्षुओं को खोल सकता है और हमें विश्व बन्धुत्व के आधरभूत सिद्धान्त की प्रतीति करा सकता है।

सम्पूर्ण प्राणियों में एक ही देवतत्त्व का रहस्यमय वास है। वे सर्वव्यापी हैं। समस्त भूतो की अन्तरात्मा में वही चेतना स्वरूप शाश्वत तत्त्व निहित रहता है। गीताजी के निम्नलिखित श्लोक मे यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है –

'यो माम् पश्यति सर्वत्रा सर्व च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।' ६/३०

इस प्रकार बब जी ने हमारे सांस्कृति स्रोत से एक दिव्यानुभूति को आत्मसात कर अत्यन्त सहज और सरल रूप में जनमानस तक पहुँचाने का सपफल प्रयास किया है।

– सम्पादक

Cover Design : T. K. Shishoo

कश्मीर की सन्तपरम्परा

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No. 6949 39(I)
Dated 10-9-2006

सम्पादक

प्रो० (डॉ०) भूषणलाल कौल
सहायक : राजेन्द्र कम्पासी

G.M.C.E.J
6949

भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट
उदयवाला बोड़ी, जम्मू।

कश्मीर की सन्तपरम्परा
सम्पादक : प्रो॰ (डॉ॰) भूषणलाल कौल
सहायक : राजेन्द्र कम्पासी
प्रथम संस्करण - २००५ ई.
भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट,
उदयवाला, बोड़ी, जम्मू-१८०००२

© *भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट, जम्मू ।*

कवर डिज़ाइन : टी.के. शिशु
मुद्रक : थॉमसन प्रेस

प्रकाशक :
भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट,
उदयवाला, बोड़ी, जम्मू-१८०००२

मिलने का पता :-
भगवान गोपीनाथजी आश्रम
१. ख्रयार, हब्बाकदल, श्रीनगर, कश्मीर।
२. उदयवाला, बोड़ी, जम्मू ।
३. पम्पोश एन्कलेव, नई दिल्ली ।

अध्याय सूची

पृष्ठ संख्या



प्राक्कथन

भगवान गोपीनाथ संस्थान से प्रकाशित हो रही पुस्तक 'कश्मीर की सन्तपरम्परा' का प्राक्कथन लिखते समय मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। कश्मीर अपने अध्यात्म, बन्धुत्व और परस्पर प्रेम के लिए सदैव जाना जाता रहा है। यह समूचे दक्षिणी एशिया में अपनी बौद्धिक गतिविधियों के कारण ऊर्जा का स्रोत बना हुआ है। यह कहने में कोई आश्चर्य नहीं कि भारतीय साहित्य और साहित्य-शास्त्र में प्रवाहशील सौन्दर्यशास्त्रीय तत्त्वों की परम्परा अभिनव गुप्त और आनन्दवर्द्धन जैसे महान कश्मीरी बुद्धिजीवियों और आचार्यों की देन है। वास्तव में सौन्दर्य शास्त्र के जो प्रतिमान इन महान विद्वानों और आचार्यों ने हज़ारों वर्ष पहले स्थापित किए थे वे अब समूचे विश्व-साहित्य के अंग बन गये हैं।

कश्मीरी पण्डित समाज विशिष्ट है, इसे इस कारण विशिष्ट नहीं माना जाता कि यह पढ़ा लिखा समाज है बल्कि इस नाते विशिष्ट कहा जा सकता है कि इसमें वैश्विक चेतना अत्यधिक है। अभी भी कश्मीरी पण्डितों की अनुभव सम्पदा से बहुत कुछ सीखा जा सकता है बेशक इस समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा त्रासद जीवन-स्थितियों में जी रहा हो। संक्षेप में कहें तो कश्मीरी पण्डित अपने विशिष्ट जीवन-मूल्यों, मान्यताओं, स्वस्थ शैव परम्पराओं और सांस्कृतिक चेतना के कारण वर्षों से चर्चित रहे हैं और यह सुनिश्चित है कि अभी भी कश्मीरी पण्डित अपने आध्यत्मिक जीवन-मूल्यों, अनुभव-सम्पदा और वैश्विक चेतना और स्नेह से सींच कर त्रासद और दुःखद मानव जीवन को सुखद और स्नेहसिक्त बना सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि इनकी त्रासद जीवन-स्थितियों को कुछ सुधार दिया जाए।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक विस्तृत पाठक वर्ग पढ़ेगा और उसके लिए यह उपयोगी और सामयिक भी सिद्ध होगी।

मई, २००५

अमिताभ मट्टू
उप-कुलपति,
जम्मू विश्वविद्यालय।



आभार

कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास में सन्तों, साधकों, तत्त्व चिन्तकों, शैव शस्त्रियों एवं योग-सिद्ध महात्माओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है। यह भी एक कारण है कि कश्मीर को 'ऋषि वॉर' (ऋषि वाटिका) कहा जाता है। एक महान कर्मयोगी सन्त भौतिक बन्धनों एवं सांसारिक क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर तथा अध्यात्म की दिव्य-प्रेरणा से प्रेरित होकर सृष्टि के मूल रहस्य को जानने और समझने के हेतु व्यग्र हो उठता है । वह आत्म-संयम और आत्म-मंथन के आधार पर सर्वप्रथम ब्रह्म, जीव, जगत और माया के पारस्परिक सम्बन्ध को पहचानने के हेतु साधना रत रहता है। सन्त सम्पूर्ण मानव समाज के हेतु आदर्श बनकर तथा दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होकर लोक व्यवहार में चतुर स्वार्थी मनुष्य को सचेत करता है तथा गुरु उपदेश के प्रसाद से भीतर के तमस् को मिटाने के हेतु अपनी परोपकारी भूमिका का निर्वाह करता है।

'भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट' का यह सर्वसम्मत संकल्प था कि कश्मीर के विविध क्षेत्रों में दिव्य-शक्तियों से सम्पन्न महापुरुषों की जीवन लीला के आकर्षक दृश्य शब्द-बद्ध करके जनता तक पहुँचाये जाये ताकि हमारी संस्कृति एवं भव्य-परम्परा को जीवन शक्ति प्रदान करने वाली इन विभूतियों से हम प्रेरणा ले सकें और इनके साधना प्रधान जीवन व्यवहार से अनमोल मौक्तिक-कण बटोर सकें।

इन महापुरुषों का जीवन चरित इतिहास-सम्मत, क्रमबद्ध एवं परिपूर्ण कहीं सुरक्षित नहीं था। अतः ट्रस्ट ने इस पुनीत काम को अपने हाथ में लिया और लगभग ढाई वर्ष के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप आज हम कश्मीर संस्कृति के इस स्वर्णिम अध्याय को जनता के सम्मुख उपहारस्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

इस कार्य योजना को क्रियान्वित करने के हेतु हमें भक्तजनों का सहयोग प्राप्त हुआ जिनमें श्री बी० एल० कोठदार का नाम विशेष उल्लेख्य है। कोठेदार जी ने सामग्री संकलन में सहायता के अतिरिक्त परियोजना को पूरा करने हेतु अपनी सेवाएँ समर्पित कर निःसन्देह मनसः वाचः कर्मणाः सहयोग देकर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। विभिन्न स्थानों से कई बन्धुओं द्वारा प्रेषित सन्तों, महापुरुषों के चित्र उनके जीवन विषयक संस्मरण और संक्षिप्त परिचय प्राप्त हुए।

लिखित सामग्री को समुचित दिशा देने में कई विद्वान बन्धुओं का सहयोग प्राप्त हुआ जिनमें प्रोफ़ेसर आर० एल० ऐमा एवं प्रो० चमन लाल कौल का उल्लेख करना आवश्यक है। उनके प्रति अपना आभार व्यक्त कर रही हूँ। संक्षिप्त जीवन परिचय तैयार किये गए जो सम्बन्धित महापुरुष/सन्त के चित्र सहित २७ अक्तूबर सन् २००२ ई० के दिन आश्रम परिसर में आयोजित प्रदर्शनी में जनता के दर्शनार्थ/अवलोकानार्थ दो सप्ताह के लिए रखे गए। प्रारम्भ में ही जनता से अनुरोध किया गया था कि यदि किसी सज्जन को किसी महापुरुष के विषय में दिए परिचय के बारे में कोई सन्देह हो या कुछ और अधिक जानकारी रखते हों तो प्रदर्शनी में रखी सुझाव-पुस्तिका में उसका उल्लेख करें। इस तरह कई और जीवन परिचय प्राप्त हुए और जहाँ आवश्यक था वहाँ सुधार भी हो पाए।

मात्र प्रदर्शनी से यह पुनीत कार्य पूरा नहीं होता यदि इन सभी महान विभूतियों के जीवन चरित को एक पुस्तक में संगृहीत रूप प्रदान न किया जाता। इस कार्य को पूरा करने के लिए समाज के प्रतिष्ठित विद्वान प्रो० (डॉ०) भूषणलाल कौल (भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय) ने अपनी सेवाएँ प्रस्तुत की। प्रो. कौल ने अपनी निजी शोध परियोजनाओं में व्यस्त रहने के बावजूद इस कार्य को सहर्ष हाथ में लिया। इस पुस्तक के हेतु प्रो० कौल ने भगवान गोपीनाथजी तथा सर्वश्री कृष्णजू राज़दान, लक्ष्मणजू रैणा 'बुलबुल', कश काक, पण्डित श्री भट्ट, केशव भट्ट ज्योतिषी, पण्डित सोनुँराम रैणा एवं मास्टर ज़िन्द कौल के विषय में रेखाचित्र स्वयं लिखे हैं। इस प्रकार उन्होंने आश्रम के इस पुनीत काम को पूरा करने के लिए अथक परिश्रम किया और अपना बहुमूल्य समय लगाया। मैं व्यक्तिगत रूप से और आश्रम की प्रमुख ज़िम्मेदार सदस्या के रूप में उनके प्रति विशेष आभार प्रकट कर रही हूँ।

श्री राजेन्द्र कम्पासी का योगदान भी प्रशंसनीय है, उन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी अपनी सेवाएँ इस पुनीत कार्य क हेतु अर्पित की और महीनों कम्प्यूटर पर बैठ कर कार्यरत रहे । मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि इस जाति बन्धु ने सकल्पबद्ध सेवाव्रत धारण करके अपनी निष्ठा, त्याग भावना, एवं कर्तव्य कर्म का ज्वलन्त उदाहरण पेश किया है।

ट्रस्ट के समस्त सदस्यों का सहयोग और परामर्श भी बराबर मिलता रहा है । उनके कठिन परिश्रम, दृढ़ संकल्प एवं सक्रिय सहयोग से ही यह काम पूरा हो सका । वे सब महानुभाव निस्सन्देह बधाई के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वारा हमारी नव-पीढी का परम्परागत आदर्शों एवं लोक प्रचलित मान्यताओं और विश्वासों के साथ सम्पर्क स्थापित होगा तथा अध्यात्म-पथ के अन्वेषकों को शैव एवं वैदिक विश्वासों के आधार पर अपना साधना पथ एवं साधना प्रक्रिया निश्चित करने में पर्याप्त सुविधा होगी । महान सन्तों के जीवन-चरित उनके साधना पथ को दिशा प्रदान करते हुए प्रकाशित करेंगे।

कश्मीरी अध्यात्म चिन्तन, योग साधना एवं अलौकिक अनुभूति प्राप्ति की दिशा में यह हमारा पहला प्रयास है और भविष्य की सम्भावनाएं भी इसके द्वारा सुनिश्चित होंगी ।

मैं इस पुस्तक को जनता के सम्मुख लाने में अपार हर्ष का अनुभव कर रही हूँ। मुझे विश्वास है कि इतना कार्य करने के पश्चात् भी सुधार एवं पुनर्विचार की सम्भावना अवश्य रहेगी क्योंकि शोध की कोई अन्तिम सीमा नहीं होती।

हमारी क्रिया और जाति बन्धुओं की प्रतिक्रिया दोनों के सहयोग से सम्पूर्ण मानव समाज का मार्ग प्रशस्त हो यही मेरी भगवानजी से कर-बद्ध प्रार्थना है। भगवान गोपीनाथजी महाराज हम सब को सद्बुद्धि प्रदान करते हुए सत् पथ पर चलने का साहस और सामर्थ्य प्रदान करें।

इसी शुभ कामना के साथ,

जयकिशोरी पटवारी
प्रधान,
भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट

अप्रैल २७, २००५



सम्पादकीय

'सन्त' शब्द का प्रयोग किसी भी महात्मा, सत्-पथ अनुयायी और सदाचारी पुरुष के लिये किया जा सकता है। सन्त स्वार्थमय भौतिक जीवन के दलदल से बाहर निकल कर परमार्थ के पथ पर अग्रसर होते हुए दिव्य साक्षात्कार के लिये साधना रत रहता है। 'सन्त' वह है जिसने अपने आप को पहचान लिया हो अथवा अपने आप को पहचानने के हेतु प्रयत्नशील हो। बाह्य जीवन के स्वार्थमय व्यवहार से दूर रहकर वह अपने भीतर प्रवेश करता है और मानस के तमस् को ज्ञान अथवा सहजानुभूति के प्रकाश से कान्ति-युक्त बना देता है।

सन्त के लिये सामान्य सामाजिक अथवा गार्हस्थ्य जीवन से विमुख होना अनिवार्य नहीं है। वह भौतिक बन्धनों में रहकर भी अध्यात्म के प्रकाश से अपने अस्तित्व को द्युतिमान बना सकता है। काश्मीर में हमें गार्हस्थ्य जीवन का निर्वाह करने वाले महान सन्तों की परम्परा देखने को मिलती है।

सन्त अपने अनुभव अथवा प्राप्ति को केवल अपने आप तक ही सीमित नहीं रखता। वह पथ-प्रदर्शक की भूमिका निबाहते हुए समाज को नई दिशा और सोचने- समझने की शक्ति प्रदान करता है। वह अपने दिव्यानुभवों को लोक कल्याण के हेतु जाग्रत मानस तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। वह कीचड़ में रह कर भी कमल के समान अपने व्यक्तित्व की छटा सर्वत्र बिखेर देता है।

सन्त में अपार सहनशीलता के साथ-साथ सहज जीवन निर्वाह की अद्भुत क्षमता देखने को मिलती है। समाज के ' वर्तमान ' को नवीन दिशा देने के साथ-साथ वह उसके भविष्य को भी सुरक्षित रखने के लिये प्रयास-रत

रहता है।

सन्त जाति, धर्म, वर्ग एवं सम्प्रदाय की संकुचित सीमाओं से बहुत ऊपर उठकर समग्र मानव-कल्याण की बात करता है। ये क्षुद्र सांसारिक बन्धन अथवा वर्ग-विभाजन उन्हें मान्य नहीं है। उनका मानस असाधारण द्युतिकणों से प्रज्वलित रहता है । सन्त सत्-मार्ग पर दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ता है और उसके साधना पथ पर गुरु प्रकाश-स्तम्भ-सदृश दिशा निर्देश करते हुए पथ-प्रशस्त करता है।

यह वस्तुतः साधनात्मक जीवन जीने की प्रक्रिया है जिसमें साधक दुई (द्वैत) के सीकचों से बाहर निकल कर अद्वैत के असीम व्यवहार में लय होने के हेतु सतत् प्रयत्नशील रहता है। इस साधना पथ पर अनेक बाधाएँ उसका मार्ग अवरुद्ध करती हैं लेकिन निष्ठावान साधक अपने पथ प्रदर्शक के सहयोग से एक-एक पग आगे बढ़ कर अपनी मंज़िल पर पहुँच जाता है। जहाँ उसे परमानन्द का अनुभव होता है और बूँद समुद्र में लय होकर असीम सागर का रूप धारण करती है। ' मैं ' और 'आप' का भेद मिट जाता है, सर्वत्र केवल परमप्रिय ही नृत्यमग्न दिखाई देते हैं।

सन्त अपनी वाणी और उपदेशों के द्वारा सर्वकल्याण का पथ प्रशस्त करता है। उसका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली और आकर्षक होता है। वह अपनी ही मस्ती में उल्लासमय क्षणों की दिव्यानुभूति का अनुभव करता है, भीतरी आनन्द को शब्दों के माध्यम से बाह्य रूप प्रदान करता है और वही सन्त के 'अनमोल वचन' कहलाते है।

'हिन्दी साहित्य कोश' में ' सन्त' के विशिष्ट लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है कि " 'सन्त' शब्द का व्यवहार केवल उन आदर्श महापुरुषों के लिये किया जा सकता है, जो पूर्णतः आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए भी, निस्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं ।"[1]

इसमें सन्देह नहीं कि सन्त की साधना 'सहज साधना' होती है जिसमें किसी विशेष पंथ, मत, वाद, सम्प्रदाय अथवा रूढ़िग्रस्त परम्परा क प्रति आग्रह नहीं रहता। वह तो निर्मल हृदय लेकर समाज के सम्मुख आता है और प्रत्येक कर्तव्यनिष्ठ साधक को अपने हृदय के दर्पण में झाँकने की प्रेरणा देता

१. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी-१९८५ ई.-पृ. ८५४

है। वह तो सहज रूप में अप्राप्त की प्राप्ति-हेतु एक-एक मंज़िल ऊपर चढ़ कर तथा आत्म विस्मृत होकर अद्भुत में लय हो जाने की प्रेरणा देता है।

कश्मीर के सन्तों को शैवमत, तन्त्र-शास्त्र, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, एवं हठयोग साधना ने अवश्य अपनी ओर आकर्षित किया है । वस्तुतः ये हमारे स्वर्णिम अतीत की विभूतियाँ हैं। यही हमारी 'कश्मीरियत' है जिसने यहाँ के सन्तों को मोह लिया है। षट-चक्रों की सीमा से बाहर निकल कर वे सहस्रार के असीम आलोक में आत्म-विस्मृत होकर लय हो जाते हैं। यह साधना बहुत कठिन है । इन्द्रिय निग्रह के साथ-साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पर विजय प्राप्त करना तथा बुद्धि और मन को नियन्त्रित रखना इस साधना के लिये नितान्तावश्यक है। कैलास पहुँच कर मानसरोवर के तट पर हंस की चाल से मोती चुगने की क्षमता प्रत्येक साधक में नहीं होती फिर भी सन्त इस पथ पर निरन्तर अग्रसर दिखाई देते हैं।

ढाई वर्ष पूर्व 'भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट' ने कश्मीर के सन्तों से सम्बन्धित एक परिचयात्मक पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय लिया। सर्वप्रथम समाचार पत्रों के माध्यम से जनता को ट्रस्ट के इस संकल्प से अवगत कराया गया और उनसे यह भी निवेदन किया गया कि वे कृपा करके अपने गाँव, पुर, कसबे और इलाके के सन्तों के विषय में जो भी जानकारी रखते हैं उसे लिखित रूप में भगवान गोपीनाथजी आश्रम के पता पर भेज दें और यदि सन्त-विशेष का चित्र भी उपलब्ध हो तो उसकी एक प्रति साथ भेजने का कष्ट करें।

जनता के पास जब यह सूचना पहुँची तो उसने एक राय से इसका स्वागत किया और कई बन्धुओं ने अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू में सन्तों के विषय में जानकारी लिख कर भेज दी। समस्या यह थी कि इस सामग्री को व्यवस्थित रूप में किस प्रकार प्रस्तुत किया जाये क्योंकि एक ही सन्त पर कई बन्धुओं ने जो सामग्री लिख कर भेजी थी उसमें परस्पर पर्याप्त अन्तर देखने को मिला।

अतः पहला निर्णय यह लिया गया कि समाज के प्रतिष्ठित विद्वानों के पास इसे भेज कर एक आदर्श रूप प्रदान किया जाये। किसी हद तक यह काम पूरा हुआ । इसके बाद ट्रस्ट ने यह पूरी ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर डाल दी। मैंने इस काम को एक पवित्र अनुष्ठान के रूप में अपने हाथ में लिया और निम्नलिखित विशिष्ट कार्य-प्रणाली के आधार पर सामग्री को व्यवस्था प्रदान

करने लगा -

१. सम्पूर्ण लिखित सामग्री (अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू) को एक ही भाषा अर्थात् हिन्दी में तैयार किया।

२. कश्मीरी सन्तों पर आज तक जो कुछ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है उस समस्त प्रकाशित सामग्री का अध्ययन करने के बाद उपलब्ध सामग्री को यथा सम्भव विश्वसनीय रूप प्रदान किया ।

३. जिन जाति बन्धुओं ने अपने हस्ताक्षरों के साथ पत्रों के द्वारा सूचनाएँ भेजीं उनका यथासम्भव उपयोग किया और साथ ही प्रत्येक सन्त के जीवन-परिचय को अन्तिम रूप प्रदान करते समय ' प्राप्त स्रोत' की सूचना भी दी।

४. समस्त सन्तों के परिचय को भाषा की दृष्टि से एक मान्य रूप प्रदान करने का प्रयास किया।

५. प्रत्येक सन्त के प्रामाणिक जीवन-काल अर्थात् युग का निर्णय करके उस युग के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त आकार के भीतर जीवन चरित को चित्रित किया ।

६. अनावश्यक अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन से यथा-सम्भव दूर रहने का प्रयास किया। विश्वसनीय ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करने के हेतु यह आवश्यक था।

ट्रस्ट का यह भी एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था कि प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं महान आत्माओं को स्थान दिया जाए जो इस समय जीवित नहीं हैं। जिनकी इह-लोक लीला समाप्त हो चुकी है, जो ब्रह्मलीन हुए हैं और जिनकी केवल मधुर स्मृतियाँ ही शेष रह गई हैं, कहीं समय की धूल से उनका अस्तित्व ही आच्छादित न हो जाये अतः इतिहास के पन्नों पर उन्हें सुरक्षित रखने की आवश्यकता को महसूस करते हुए यह निर्णय लिया गया।

२७ अक्तूबर सन् २००२ ई० के दिन 'भगवान गोपीनाथजी आश्रम' उदयवाला, बोड़ी, जम्मू, के परिसर में 'कश्मीर के सन्त महात्मा' शीर्षक से एक भव्य प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें प्रत्येक सन्त महात्मा के फोटो चित्र के साथ उसका संक्षिप्त जीवन परिचय भी दिया गया और साधना पथ पर उसकी उपलब्धियों को भी रेखांकित किया गया।

इस प्रदर्शनी के 'शुभारम्भ समारोह' में कई गण्यमान्य अतिथि उपस्थित थे जिनमें स्वर्गीय स्वामी मोतीलाल जी ब्रह्मचारी एवं स्वामी स्वयमानन्द जी महाराज उल्लेखनीय हैं । स्वयमानन्द जी के कर कमलों से दीप प्रज्वलित कर प्रदर्शनी का शुभारम्भ समारोह सम्पन्न हुआ। निर्णय यह लिया गया था कि प्रदर्शनी दस दिन तक चलेगी परन्तु जनता के आग्रह पर इसे एक सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया गया।

एक कुशल और अनुभवी कम्प्यूटर विशेषज्ञ श्री राजेन्द्र रैणा कम्पासी ने सम्पूर्ण शोधित और सम्पादित सामग्री को कम्प्यूटर में फीड किया । श्री कम्पासी को कई भाषाओं की सम्यक् जानकारी है और हिन्दी टंकण/कम्पयूटर का वर्षों का अनुभव भी है। इन्हें कश्मीरी इतिहास और संस्कृति की भी सम्यक् जानकारी है। शैव शास्त्र में भी इन्हें रुचि है। इन्होंने इस शोध सामग्री को व्यवस्थित आकार प्रदान करने में सहयोग दिया है । अशुद्धि-सुधार के कई प्रयत्न किये गए और काफ़ी परिश्रम के बाद अन्त में तैयार की गई कॉपी को मुद्रण हेतु भेजा गया । यह कई वर्षों के निष्काम सेवा का परिणाम है । श्री राजेन्द्र को साधुवाद देते हुए मुझे हर्ष होता है।

इस प्रकार पूर्ण निष्ठा और सेवा भाव से प्रेरित होकर हम सब ने, जिसमें आप सब भी शामिल हैं, इस स्वप्न को साकार बनाने का संकल्प पूरा किया।

हमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है इसका निर्णय श्रद्धालु पाठकों, भक्तों और सेवकों के साथ-साथ विज्ञ आलोचकों और पुस्तक समीक्षकों को भी करना होगा। हम हर उचित सुझाव का स्वागत करने के लिये प्रतीक्षारत रहेंगे।

मर्च २७,२००५

प्रोफ़ेसर भूषणलाल कौल
एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्०
भूतपूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।



अलक्ष्येश्वरी माता रुपभवानी

माता रुपभवानी द्र्यदमॅर, सफाकदल, श्रीनगर (कश्मीर) के पण्डित माधवजू धर की सुपुत्री थी। आपका जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमासी सन् १६२१ ई० में हुआ। ऐसी किंवदंती है कि स्वयं माता शारिका ने रूपा में अपना सगुण साकार रूप धारण किया था । प्रतिष्ठित तथा सुशिक्षित घर में जन्म लेने के कारण रुपभवानी का चित्त-संस्कार अत्यन्त विशुद्ध था। बाल्यकाल से ही उन की विचार शृंखला अत्यन्त पावन एवं निर्मल थी। बचपन से ही आप सांसारिक विषयों के प्रति उदासीन रहती थीं । आपके पिता पण्डित माधवजू धर ने आपको आध्यात्मिक दीक्षा दी और वे ही आपके गुरु बने। रुपभवानी प्रति दिन नियम से अर्द्ध-प्रभात की वेला में माता शारिका के दर्शन हेतु हारी पर्वत जाती थीं । आप का विवाह हब्बाकदल, श्रीनगर के सप्रू परिवार में हुआ। वहाँ भी आप अपनी आत्मिक एवं आध्यात्मिक साधना में डूबी रहती। हारी पर्वत की परिक्रमा करने का नियम बना रहा। इस कारण आपकी सास और पति श्री हीरानन्द सप्रू आपसे नाराज़ रहने लगे और आपको अनेक मानसिक एवं शारीरिक यातनाओं से गुज़रना पड़ा । हीरानन्द सप्रू रुपाभवानी की आध्यात्मिक आभा को पहचान न पाया और उनकी सास सॉऽपकुज का व्यवहार भी काफी कठोर होता था । अपने आध्यात्मिक मार्ग में कई प्रकार के विघ्न आते देख माता रुपभवानी अपने पिता के घर लौट आईं। यहाँ पर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की, किन्तु कुछ कठिनाइयों के कारण रुपभवानी घर छोड़कर पहले चश्मा साहिबी (श्रीनगर, डल-झील के किनारे स्थित) में कुछ वर्ष रही और इसके बाद वोतशन/उत्‌शन(गान्दरबल तहसील) पहुँची और वहाँ से मनिगाम में पहले लालचन्द के घर रही और फिर अलग एक कुटिया



अलक्ष्येश्वरी माता रुपभवानी (१६२१-१७२१ ई.)

में रहने लगी । मनिगाम में एक दिन लॉर कोऽल के किनारे उन्होंने चिनार की एक अधजली शाख को कुल्या में बहते देखा। उसे उठा कर कुटिया में ले आई जहाँ उन्होंने उस शाख़ को उल्टा करके ज़मीन में बोया। दैवयोग से वह शाखा आज एक विशाल चिनार वृक्ष का रूप धारण कर चुकी है।

उसी चिनार की एक शाखा मनिगाम की एक बेटी विस्थापन के बाद जम्मू लाई और अपने घर के उद्यान में उसे बो दिया । आज यह शाखा भी धीरे-धीरे वृक्ष का रूप ग्रहण कर रही है। राजपोरा जम्मू में पण्डित ओमकार नाथ बख्शी (मूल निवासी मागाम,कश्मीर) के उद्यान में यह चिनार आज अपनी आभा बिखेर रहा है। सम्पादक की यह आँखों देखी बात है। मनिगाम में उन्होंने एक आश्रम भी बनाया और लॉर कोऽल के किनारे रहने लगीं। यहाँ से रूपभवानी लार (तुलमुला के निकट) चली आईं और साढ़े बारह वर्ष तक रहीं। इस बीच इन्होंने अनेक चमत्कार किए, जिनसे इनकी प्रसिद्धि सारे कश्मीर में फैल गई। मुग़ल बादशाह जहाँगीर ने भी फ़ारसी में माता रुपभवानी की आत्मिक शक्ति की प्रशंसा की। लार के बाद रुपभवानी वासकुर (सुम्बल के निकट) गाँव में रहने लगी । वहाँ एक आश्रम बनवाया। पानी निकट न होने के कारण एक कुँआ खुदवाया और उसके जल से एक अन्धे मुसलमान लड़के की नेत्र दृष्टि लौटाई।

भक्त-जन उन्हें रो'प द्यद के नाम से स्मरण करते हैं। अलखेश्वरी/अलक्ष्येश्वरी (अतीन्द्रिय अवस्था को प्राप्त अति सूक्ष्म, अगोचर एवं अलक्ष्य से परिचित ईश्वरी शक्ति) उपनामों से भी जानी जाती है । रूपभवानी को संस्कृत, फारसी, उर्दू, हिन्दी का परिपूर्ण ज्ञान था। वेदान्त, उपनिषद्, योग-साधना तथा शैव-दर्शन का उनकी अमृत वाणी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा हुआ है। उनकी यही अमृतवाणी 'वाखों' और श्लोकों में उपलब्ध है।

रुपभवानी ने इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया। डॉ० जियालाल हण्डू के विचारानुसार इस सन्त कवयित्री में मानवीय गुणों, जैसे करुणा, धैर्य, शुद्ध-हृदय भावना, दृढ़ संकल्प, संयतेंद्रियता, दृढ़ेच्छा-शक्ति, आत्मसंयम, नाम-स्मरण तथा शिव के प्रति अनन्य आसक्ति का आकर्षण देखने को मिलता है। व्यावाहारिक जीवन व्यतीत करने पर ही मानव परमशिव के आत्मस्वरूप को पहचान पाता है।

यह भी प्रसिद्ध है कि जब सन् १७२१ ई. में उनकी लोक-लीला समाप्त हुई और उनके शव को संस्कार के लिए ले जाया जा रहा था, तभी वासकुरा से उनका एक शिष्य आ पहुँचा और उसने कहा कि देवी रूपा भवानी के आदेश से ही वह यहाँ आया है तथा देवी ने स्वयं उसे शहर से कुछेक वस्तुएँ लाने के लिए भेजा है। जब अरथी को नीचे उतार कर दखा गया तो चादर उठाए जाने पर पता चला कि वहाँ केवल अलक और चन्द फूल हैं, शव नहीं।

डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू द्वारा लिखित 'श्री रुपभवानी रहस्योपदेश' नाम से श्री अलख साहिबा ट्रस्ट कश्मीर ने सन् १९७७ ई० में एक महत्त्वपूर्ण रचना को प्रकाशित किया है। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में रुपभवानी के कुल १४६ वाख चार उपशीर्षकों के अतर्गत व्याख्या एवं टीका सहित संगृहीत हैं। डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू का परिश्रम स्तुत्य है।

'रुपभवानी' (जीवन, शिक्षा और दर्शन) शीर्षक से पण्डित त्रिलोकनाथ धर ने सन् १९७७ ई. में अंग्रेज़ी भाषा में एक पुस्तक लिखी जो 'सर्वभारत सारस्वत सांस्कृतिक संस्था' जम्मू कश्मीर की ओर से प्रकाशित हुई। यह पुस्तक रुप-भवानी पर लिखी पुस्तकों में पर्याप्त चर्चित रही है। श्री धर का प्रयास प्रशंसनीय है।

डॉ० अपर्णा धर एवं डॉ० जियालाल हण्डू के लेख 'कोशुर समाचार' फरवरी १९९९ ई. में प्रकाशित हुए हैं। डॉ० हण्डू के लेख से प्रस्तुत परिचय पत्र लिखने में पर्याप्त सहायता ली गई है। कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर कश्मीरी विभाग से श्री सोमनाथ पण्डित द्वारा लिखित 'रो'प भवॉनी ' शीर्षक से २५१ पृष्ठों की कश्मीरी भाषा में एक महत्त्वपूर्ण रचना सन् १९८३ ई. में प्रकाशित हुई है। माता रुपभवानी के 'वाख' और व्यक्तित्व को समझने में इन पुस्तकों और लेखों से काफी सहायता मिलती है।

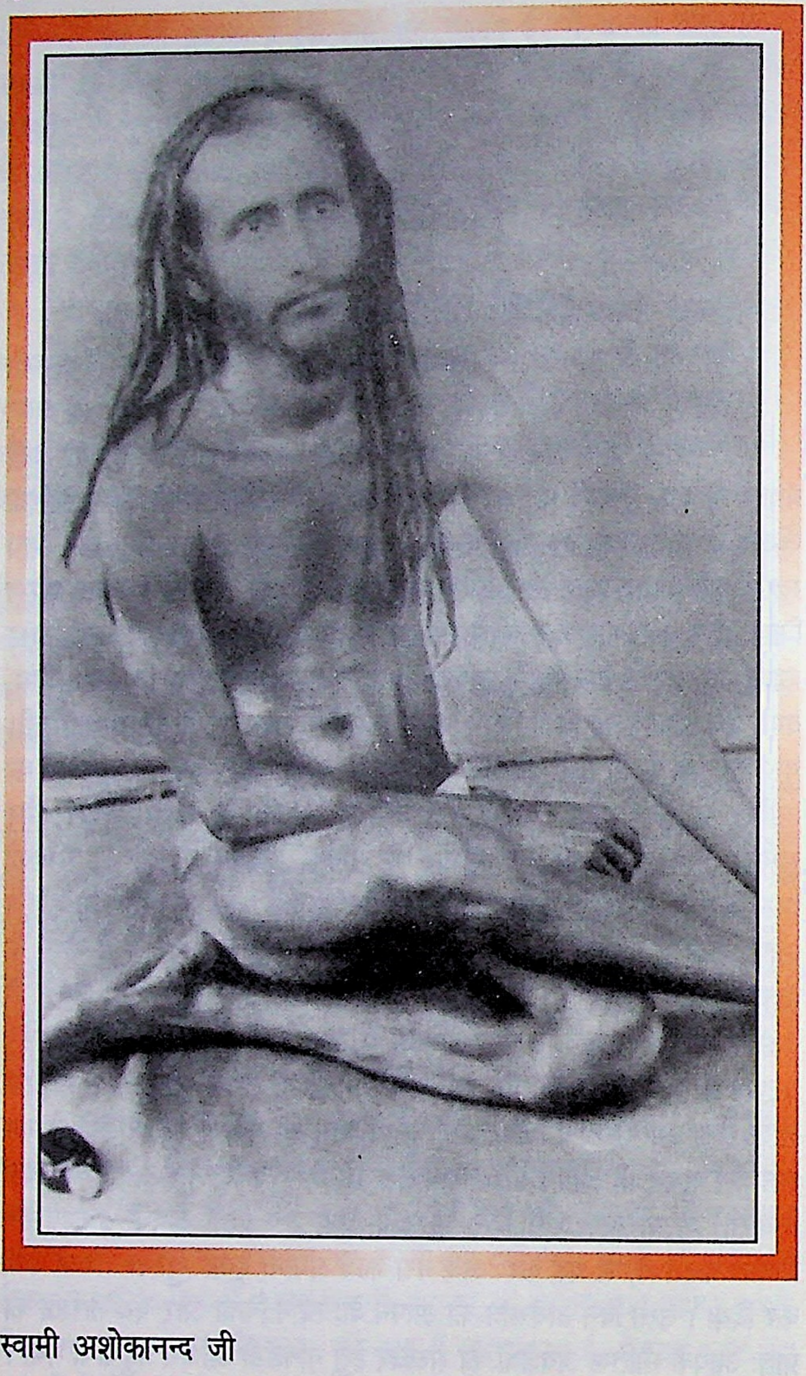
माता रुपभवानी के चमत्कारों की अनेकानेक कथाएँ हैं, जिनसे उनके योगबल और आध्यात्मिक शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। आपने ललद्यद की ही भाँति कश्मीरी में कविता की, जिसके द्वारा अपने धार्मिक व आध्यात्मिक विचारों को लोगों तक पहुँचाया। आप की कविताएँ (वाख) दार्शनिक विचारों, ईश्वर प्रेम एवं समर्पण की अमृतधारा प्रवाहित करती हैं। आप का स्वर्गवास सौ साल की आयु में सन् १७२१ ई. में माघ कृष्ण पक्ष सप्तमी के दिन हुआ ।



स्वामी अशोकानन्द जी

{ सुम्बली बाबा }

स्वामी अशोकानन्द जी का जन्म १० फरवरी १९११ ई. को पूर्वी बंगाल के एक मुखर्जी परिवार में हुआ था । वे बाल्यकाल से ही सांसारिक जीवन के प्रति उदासीन रहे। केवल ८ वर्ष की आयु में घर छोड़ कर आप स्वामी सच्चिदानन्द जी के आश्रम मे पहुँचे, वहीं पर आपने सन्यास धारण किया और अशोकानन्द नाम से आश्रम में चर्चित रहे। तत्पश्चात् आप उत्तर काशी गए, उसके बाद स्वामी सच्चिदानन्द जी से आपको वस्त्र त्याग कर हिम, वर्षा, धूप इत्यादि को बिना किसी बाह्य्य सहारे के सहन करने की आज्ञा मिली। गुरु महाराज से ही उन्हें कश्मीर जाकर ईश-सन्देश जन-जन तक पहुँचाने का आदेश भी प्राप्त हुआ । आप तीस वर्ष की अवस्था में कश्मीर पधारे और सुम्बल ग्राम में नन्दकेश्वर मन्दिर में अपना आश्रम जमाया । आपका वास्तविक नाम अशोक कुमार था पर सुम्बल में दीर्घ काल तक रहने के कारण आप सुम्बली बाबाजी के नाम से विख्यात हुए । कई वर्ष सुम्बल में रहने के पश्चात् आप नागडंड़ी, अच्छाबल. अन्तनाग गए और वहाँ एक जंगल में आश्रम बनाया । आप निरन्तर समाधि में मग्न रहते थे । दिसम्बर १६ सन् १९७१ के दिन सायंकाल जब भारतीय सैनिकों के समक्ष पाकिस्तान की एक लाख सेना आत्मसम्पर्ण किया और युद्ध विराम की घोषणा हुई, रेडियो से यह समाचार सुनते ही आपने डॉ० जियालाल ओगरा (चिंक्राल मुहल्ला, हब्बाकदल निवासी) के परिवार जनों जिन के यहाँ आप उन दिनों अपनी इच्छानुसार निवास करते थे, से यह कर 'अब मेरा कार्य समाप्त हुआ' तुरन्त रेडियो बन्द कर दिया । उसी दिन अर्धरात्रि को आपने देह त्याग किया और २० तारीख को प्रातः आपके भौतिक अवशेषों को संस्कार हेतु नागडंडी आश्रम पहुँचाया गया ।



स्वामी अशोकानन्द जी

यही पर आप की समाधि बनाई गई । आपने अपने अन्तकाल के आने का संकेत अपने प्रिय भक्तजनों को पहले ही दिया था, ऐसा डा० के पुत्र प्रो० गिरधारीलाल ओगरा ने बताया । आश्रम के देख रेख हेतु आपने अपने महाप्रयाण से पूर्व इच्छा प्रकट की थी कि आश्रम की व्यवस्था और प्रबन्ध का अधिकार 'स्वामी विवेकानन्द रॉक मेमोरियल, कन्याकुमारी को दिया जाये । राक मेमोरियल के उस समय के महासचिव स्वर्गीय एकनाथ जी रानड़े ने आश्रम की व्यवस्था अपनी संस्था के अधीन की और तब से आश्रम में अखिल भारतीय स्तर पर योगाभ्यास के शिविर, संगोष्ठियां और अनेक कार्यक्रम सुचारु रुप से चल रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण महासम्मेलन ट्रस्ट, नई दिल्ली-४८ की ओर से प्रकाशित 'द क्युस्ट' नामक अंग्रेज़ी पत्रिका (सम्पादक श्री मनमोहन धर) के सन् २००४ के भाग-१, अंक-२ में श्री श्याम कौल का 'सुम्बली बाबाजी - चन्द संस्मरण' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है । इस लेख में श्री श्याम कौल लिखते हैं कि सन् १९२०-३० के मध्य सुम्बली बाबा नन्दकेश्वर मन्दिर में आये और सुम्बल में उनका निवास लगभग १० वर्ष रहा । सन् १९४० के आसपास वे नागडंडी अच्छाबल चले गये। सुम्बल आने से पूर्व वे ज़ैनदार मुहल्ला हब्बाबदल क काठलीश्वर मन्दिर में कुछ समय रहे । रैणावारी निवासी पण्डित काशीनाथ काचरू यहीं पर उनसे मिले हैं और उनकी अद्भुत योग साधना से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये।

श्री श्याम कौल के पिताजी पण्डित शम्भुनाथ कौल (मूल निवासी सफापुर कश्मीर) तथा अग्रज पण्डित सोमनाथ कौल सुम्बली बाबा के प्रिय शिष्यों में थे । दिल्ली निवासी श्री मनमोहन धर भी स्वामी जी के निकट सम्पर्क में रहे । बहुत समय तक स्वामी जी के साथ उनका पत्राचार होता रहा । बाद में उन पत्रों को श्री धर ने प्रकाशित भी किया है।

श्री चमनलाल राज़दान ने 'श्री नागडण्डी चालीसा' (प्रकाशन वर्ष २००५ ई.) में स्वामी अशोकानन्द के जीवन के विषय में उपयोगी सामग्री प्रकाशित की है । प्रस्तुत परिचय पत्र लिखते समय उससे भी सहायता ली गई है ।



पण्डित आफ़ताबजू वांगनू

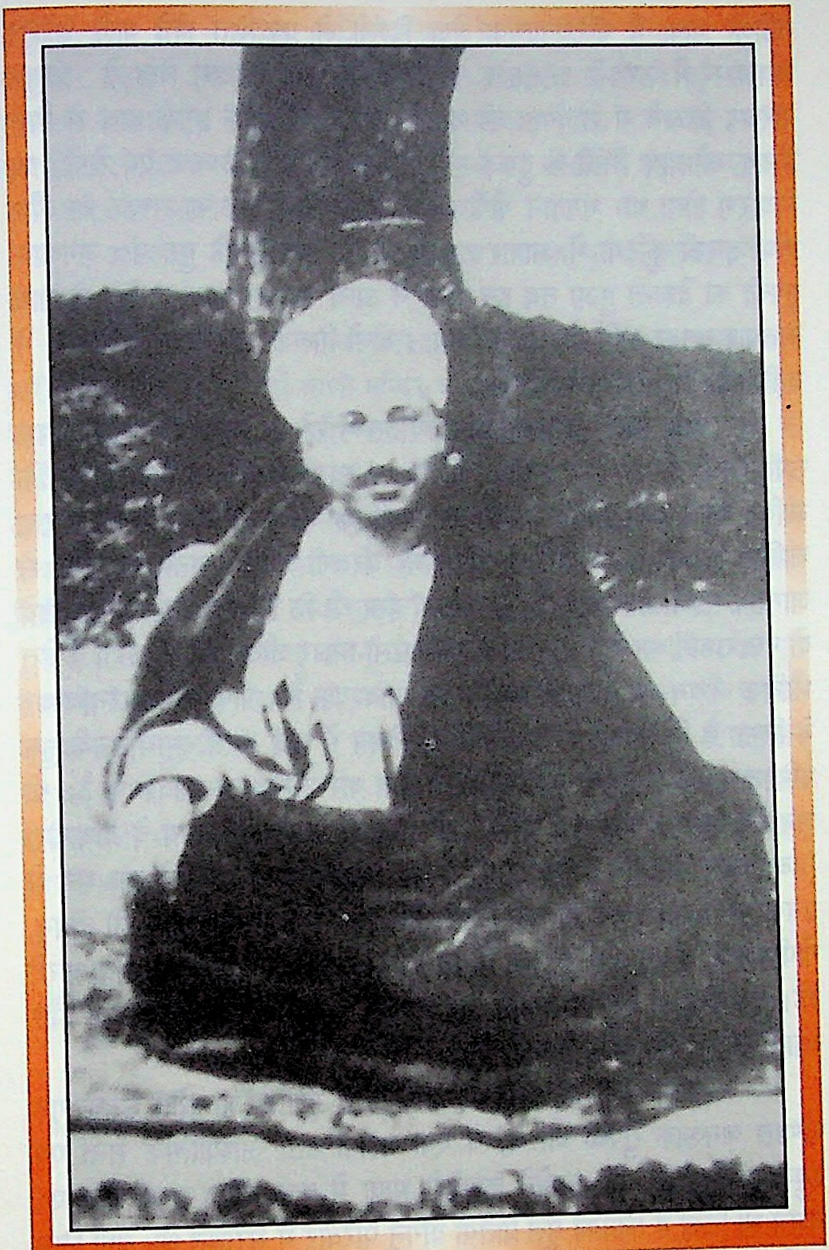
{ बॉयजी 'अकलाल' }

आप बाबापोरा हब्बाकदल, श्रीनगर (कश्मीर) के पण्डित केशवजू वांगनू के सुपुत्र थे। श्री केशवजू वांगनू माल-विभाग में क्लर्क थे। उनकी पत्नी का नाम था कुदमाल । आपका जन्म माघ शुक्ल पक्ष भीमसेन दशमी के दिन सन् १८६३ ई. में हुआ। आप के दो भाई और थे - बलजी वांगनू और गोपीनाथ वांगनू जो नौकरी करते थे। पण्डित आफ़ताबजू बचपन से ही वैराग्य-स्वभाव के थे। बाल-ब्रह्मचारी थे और अपने ही घर में एक कुटिया में रहते थे।

पिता के असमय देहान्त के कारण आठवीं कक्षा में ही वे तार घर में सन्देशक की नौकरी पर नियुक्त हुए । हारीपर्वत की परिक्रमा पर प्रतिदिन जाना उनके जीवन का अनिवार्य कर्म बन गया था। आपने पण्डित ज़नकाक जी तुफ़्ची को अपना गुरु स्वीकार किया है।

गुरु कृपा से आप आध्यात्मिक क्षेत्र में काफ़ी आगे पहुँचे और अनेक लोग आप के पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते थे। हिन्दू-मुसलमान आपका सम्मान करते थे। आपके पड़ोसी अहमद जू हलवाई और उसके सन्तान आपके सेवाकार्य में लगे रहते थे। अन्य शिष्यों में गफ्फ़ार गोजरी, पण्डित दमकाक सप्रू, ईश्वर कौल त्रिछ़ल, दीनानाथ सप्रू, रघुनाथ सप्रू आदि थे।

अकलाल जी ज्योतिष विद्या के पारखी पण्डित थे। जन्मपत्री पढ़ने और गणित करने में माहिर थे। वे प्रायः क्षीरभवानी के दर्शनार्थ तुलमुला जाते थे। स्वामी जी के जीवन एवं आध्यात्मिक साधना पर प्रो० अमरनाथ धर का



पण्डित आफ़ताबजू वागंनू (१८६३ - १६४८ ई.)

अंग्रेज़ी भाषा में परिचयात्मक लेख दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'कोशुर समाचार' में फरवरी १९९९ इ. में प्रकाशित हुआ है। इस लेख से प्रस्तुत परिचय लिखने मं सहायता ली गई है। प्रसिद्ध है कि इनके हाथ से मिले प्रसाद, जो प्रायः मिस्री के टुकड़े होते थे, से हर प्रकार के कष्ट एवं रोगों का निवारण होता था। भगवान गोपीनाथजी से इनका निकट का सम्पर्क था और प्रायः इनकी कुटिया में आकर ठहरते भी थे। जब इनके गुरु पं० ज़नकाक तुफ़्ची का देहान्त हुआ तब इन दोनों ने अन्य श्रद्धालु भक्त जनों के साथ मिलकर उनका अन्तिम संस्कार किया । दोनों मिलकर उनके स्मृति दिवस में बड़ी श्रद्धा से सम्मिलित होते थे।

आप स्वयं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत में रहे पर विवाह को आध्यात्मिक उपलब्धियों के पथ पर बाधक नहीं माना। स्वामीजी की मान्यता यह है कि व्यक्ति को अपने भौतिक-जीवन का सर्वाधिक एवं उत्तमोतम उपयोग करना चाहिए । जीवन व्यवहार में सावधानी बरतनी होगी। मानसिक दृष्टि से जागरुक रहना आवश्यक है। उनकी मान्यता थी कि जिस प्रकार पक्षी के लिये दो पंख उड़ान भरने के हेतु अनिवार्य हैं उसी प्रकार जीवन की सफलता के हेतु भौतिक जीवन एवं आध्यात्मिक चिन्तन आवश्यक है । प्रोफ़ेसर अमरनाथ धर ने लिखा है कि स्वामी अकलाल जी के विषय में बात करते समय उनके गुरु पण्डित ज़नकाक तुफ़्ची की जानकारी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। श्री ज़नकाक तुफ्ची १०० वर्ष जीवित रहे जिस में अधिकांश समय वे बाबापोरा (हब्बाकदल) के वाँगनू परिवार में ही रहे। यहाँ अकलाल जी ने तन मन से उनकी सेवा की। इतना ही नहीं उनके तीन अन्य भाई सिरिय काक जी वाँगनू, गोपीनाथजी वाँगनू और बालजी वाँगनू गुरु महाराज की यथासम्भव सेवा करते रहे। गुरु सेवा के हेतु ही उन्होंने तार घर की नौकरी से त्याग-पत्र दिया और स्थायी रूप से सेवा कार्य में जुट गये।

अकलाल जी की अध्यात्म-साधना के मूल प्रेरणा स्रोत उनके गुरु पण्डित ज़नकाक तुफ़्ची जी थे। वे एक महापण्डित, आध्यात्मिक सन्त एवं प्रबुद्ध मार्गदर्शक थे। उन्होंने कश्मीरी भाषा में कुछ भक्ति परक गीत एवं भजन भी लिखे हैं जिनकी मूल प्रतियां वाँगनू परिवार में सुरक्षित थीं। वर्षों जिस कमरे में वाँगनू परिवार के घर में ज़नकाक जी रहते थे वहाँ कुछ बहुमूल्य स्मृतिशेष (Relics) भी रखे गए थे। यह ज्ञात नहीं है कि आज वे अवशेष कहाँ

हैं । प्रोफेसर धर ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि स्वामी ज़नकाक मूलतः क्रॉमशोर बड़गाम (कश्मीर) के रहने वाले थे। श्रीनगर आकर वे कुछ समय तक श्री जानकीनाथ मिस्री के घर पर डलहसनयार में रहे तत्पश्चात् स्थायी रूप से अपने शिष्य स्वामी अफ़ताब जू वांगनू के घर बाबापोरा (हब्बाकदल) में रहने लगे और आजीवन उनका निवास वहीं रहा।

अकलाल जी को योग साधना का पाठ सफलता पूर्वक ज़नकाक जी ने ही पढ़ाया है।

अकलाल जी के साधनात्मक जीवन में दोपहर के आस-पास हारी-पर्वत रोज़ जाना, वहाँ काली मन्दिर के सम्मुख बैठ कर घण्टों साधनारत रहना और दिन ढलते घर लौटना, नियमपूर्वक चलता रहा। प्रातः गुरु के आदेश पर 'गुरुगीता' का विधि पूर्वक पाठ करना तथा 'भवानी नामसहस्रस्तुति' तथा 'इन्द्राक्षी' स्तोत्र का पाठ सायं काल आजीवन चलता रहा। प्रोफ़ेसर धर के कथनानुसार अकलाल जी संगीत के प्रति भी आकृष्ट थे। भजन कीर्तन में उन्हें विशेष रुचि रहती थी और प्रायः उनके निवास पर सत्संग चलता रहता था।

स्वामी आफताबजू वांगनू अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित थे। गुरु सेवा के हेतु उन्होंने नौकरी छोड़ दी और स्थायी रूप से अपने गुरु पण्डित ज़नकाक जी तुफ़्ची की सेवा में लीन रहे । पण्डित आफ़ताबजू वांगनू सन् १९४८ ई. में अन्तर्धान हुए। उस समय उनकी आयु ५५ वर्ष थी। भगवान गोपीनाथजी भी इनके अन्तिम संस्कार में उपस्थित थे। आप का स्मृति दिवस आपके भाइयों के लड़के-लड़कियाँ आज भी धूम-धाम से मनाते हैं।



स्वामी आफ़ताब जी

{ कारिहामा कश्मीर }

कश्मीर अपने प्राकृतिक दृश्यों, जलवायु तथा स्थानीय विशेषताओं के कारण भूस्वर्ग की पदवी पर आसीन है। इतना ही नहीं इस पुण्य भूमि ने अच्छे-अच्छे सूफियों, सिद्धों, दार्शनिकों, महान विद्वानों, उच्च कोटि के कवियों तथा प्रतिभाशाली आचार्यों को जन्म दिया है । उनकी मधुर वाणी से हम आज भी उसी प्रकार आप्लावित हो रहे हैं जिस प्रकार उनके जीवनकाल में आनन्द की मस्ती से झूम उठते थे।

यहाँ पर उन आदरणीय महानुभावों में से मैं विशेषतया एक का वर्णन कर रहा हूँ । आपका शुभ नाम महात्मा स्वरूप स्वामी आफताब जी है। आपका जन्म ३ अगस्त १८८३ ई. शनिवार को २ बजे ५० मिनट कारिहामा में हुआ तथा आपका शिवलोक गमन ५ माघ २०१६ वि. तदनुसार १८ जनवरी १६६० ई. १ बजे ५५ मिनट सोमवार को हुआ। शैशव काल से ही आप में ऐसे लक्षण दिखाई देते थे जिनसे आपके भीतर में विद्यमान किसी आध्यात्मिक शक्ति का भान (प्रतीति) होता था। आपके गुरुवर ने इन्हीं कारणों से एवं आपके सहज स्वभाव के कारण ही आपको 'भास्कर' के नाम से पुकारना उचित समझा चूँकि भास्कर (सूर्य) के प्रकाश से समस्त जगत का अन्धकार क्षणों में दूर होता है।

आपके गुरु महाराज एक महानुभाव प्रतिभाशाली बुद्धिजीवी थे तथा चिंक्राल मुहल्ला, श्रीनगर, में रहते थे। उनका नाम श्री गोविन्द जी तलाशी है।

स्वामी आफ़ताब जी अल्पायु से ही (सात वर्ष की अवस्था) सांसारिक बन्धनों से दूर रहकर परम-परमेश्वर की भक्ति में लीन हुए । आप



स्वामी आफताब जी (१८८३ - १९६० ई.)



स्वामी आफ़ताब जी

{ कारिहामा कश्मीर }

कश्मीर अपने प्राकृतिक दृश्यों, जलवायु तथा स्थानीय विशेषताओं के कारण भूस्वर्ग की पदवी पर आसीन है। इतना ही नहीं इस पुण्य भूमि ने अच्छे-अच्छे सूफियों, सिद्धों, दार्शनिकों, महान विद्वानों, उच्च कोटि के कवियों तथा प्रतिभाशाली आचार्यों को जन्म दिया है । उनकी मधुर वाणी से हम आज भी उसी प्रकार आप्लावित हो रहे हैं जिस प्रकार उनके जीवनकाल में आनन्द की मस्ती से झूम उठते थे।

यहाँ पर उन आदरणीय महानुभावों में से मैं विशेषतया एक का वर्णन कर रहा हूँ । आपका शुभ नाम महात्मा स्वरूप स्वामी आफताब जी है। आपका जन्म ३ अगस्त १८८३ ई. शनिवार को २ बजे ५० मिनट कारिहामा में हुआ तथा आपका शिवलोक गमन ५ माघ २०१६ वि. तदनुसार १८ जनवरी १६६० ई. १ बजे ५५ मिनट सोमवार को हुआ। शैशव काल से ही आप में ऐसे लक्षण दिखाई देते थे जिनसे आपके भीतर में विद्यमान किसी आध्यात्मिक शक्ति का भान (प्रतीति) होता था। आपके गुरुवर ने इन्हीं कारणों से एवं आपके सहज स्वभाव के कारण ही आपको 'भास्कर' के नाम से पुकारना उचित समझा चूँकि भास्कर (सूर्य) के प्रकाश से समस्त जगत का अन्धकार क्षणों में दूर होता है।

आपके गुरु महाराज एक महानुभाव प्रतिभाशाली बुद्धिजीवी थे तथा चिंक्राल मुहल्ला, श्रीनगर, में रहते थे। उनका नाम श्री गोविन्द जी तलाशी है।

स्वामी आफ़ताब जी अल्पायु से ही (सात वर्ष की अवस्था) सांसारिक बन्धनों से दूर रहकर परम-परमेश्वर की भक्ति में लीन हुए । आप



स्वामी आफताब जी (१८८३ - १९६० ई.)

ब्रह्मचारी-गृहस्थी सन्त थे।

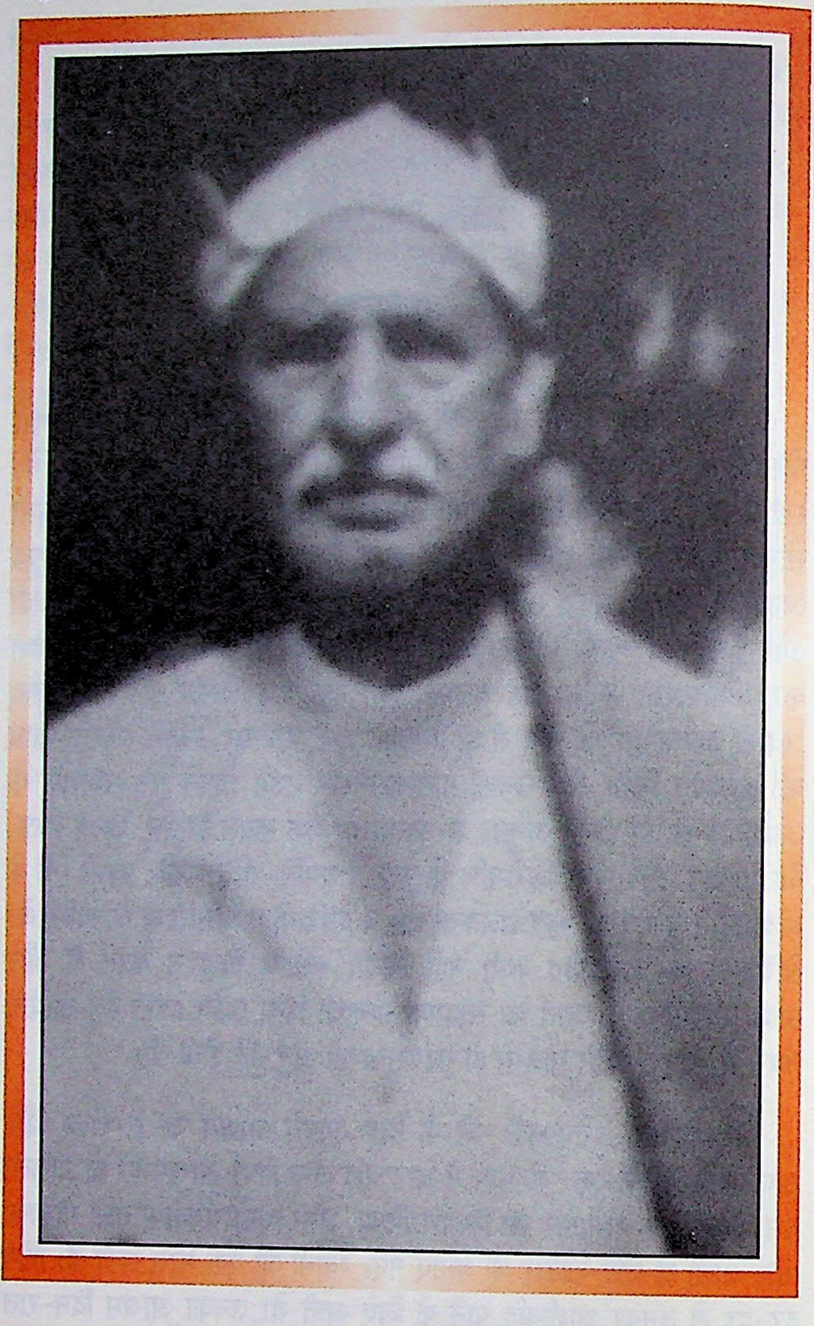
आपकी काव्य रचना में वैदिक तथा पौराणिक विचारधाराओं का आभास मिलता है। 'भास्कर प्रकाश' नाम से आपकी कुछ भक्ति-परक रचनाओं का प्रकाशन देवनागरी लिपि में हुआ है। पुस्तिका पर प्रकाशन वर्ष कहीं नहीं दिया गया है। श्री हरिकृष्ण कौल द्वारा लिखित पुस्तिका के प्राक्कथन का संशोधित अंश परिचय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन रचनाओं में अद्वैत वाद, अखण्ड ब्रह्मवाद, अलौकिक तथ्यकथन, काव्य सूक्तियों के वैचित्र्य, चमत्कार उत्पन्न करने वाली उपमाओं एवं अन्य अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग का सहज ही अनुभव किया जा सकता है



स्वामी आत्माराम जी

महाराजा प्रताप सिंह के राज्यकाल में दक्षिण कश्मीर में स्थित गोसानीगोंड (अनन्तनाग) आश्रम मं प्रसिद्ध सन्त स्वामी जोन साहब रहते थे। स्वामी जोन साहब के शिष्य स्वामी तोतुँकाक और तोतुँकाक के शिष्य स्वामी सोनुँकाक थे। स्वामी सोनुँकाक गुदर यात्रा में कुलगाम से राज कौल के पुत्र आफताब जी को अपने साथ गोसानी गोंड आश्रम लाये। बालक बहुत मेधावी और चतुर था। स्वामी सोनुँकाक ने उन्हें गुरु दीक्षा दी और उनका नाम बदल कर 'आत्माराम' रखा। यह बालक आगे चल कर गोसाई गोंड के प्रसिद्ध 'स्वामी आत्माराम' के नाम से ही विख्यात हुए। यहीं पर उन्होंने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया और उनकी प्रतिभा निखर उठी। अपने गुरु महाराज के आशीर्वाद से एव ईश्वर अनुग्रह से आत्माराम एक महान विद्वान, शास्त्र ज्ञाता, वेद पण्डित और सन्त शिरोमणि के रूप में पर्याप्त चर्चित रहे। स्वामी जी के व्यवहार में पूर्णता का भाव झलकता था। वे ऋद्धियों एवं सिद्धियों के स्वामी थे। लेकिन इनका दुरुपयोग कभी नहीं किया। स्वच्छन्द विचरण करते थे और अष्टसिद्धियों को परमार्थ का सहायक मानकर दिव्य दर्शन प्राप्ति हेतु उपयोग करते थे। उनके दर्शन मात्र से ही परमसुख की अनुभूति होती थी।

पण्डित सोनुँकाक जी के बाद आपने आश्रम को सम्भाला और अपने तथा अपने गुरु के नाम में चार चाँद लगा दिए। आश्रम को दो मंज़िला बना दिया, एक सभागार का निर्माण किया, लंगरखाना बनवाया तथा गोशाला और शाली के लिए कोठार भी बनाए गए। स्वामी जी एक मस्त सन्त थे। लोग दूर-दूर से उनका आशीर्वाद पाने के लिए आते थे। उनका आश्रम दिन-रात



स्वामी आत्माराम जी (- १९७६ ई.)

खुला रहता। अमरनाथ यात्री इस आश्रम में कुछ दिन अवश्य विश्राम करते। आप सदैव हर किसी की सेवा में रत रहते। ग़रीब लोगों की मद्द करते, ग़रीब लड़कियों की शादी करवाते, बीमारों की तीमारदारी करते। इनके शिष्यों में पण्डित सर्वानन्द व्यसू और नाथजी भट्ट विशेष उल्लेखनीय हैं जो इनकी सेवा में लगे रहते थे।

इस परम सिद्ध महात्मा का निधन सन् १६७६ ई. में हुआ। स्वामी आत्माराम के निर्वाण के बाद स्वामी सर्वानन्द जी और स्वामी नाथजी ने आश्रम की भागड़ोर सम्भाली और इन दोनों के निर्वाण के बाद इनके प्रधान शिष्यों – स्वामी प्रेमानन्द और स्वामी पृथ्वीनाथ जी ने सारा बोझ अपने कन्धों पर उठाया।

स्वामी आत्माराम जी का जीवन चरित चित्रित करने के हेतु स्वामी प्रेमानन्द जी ने गोसांई गोंड आश्रम (तुमाल-बोडी, जम्मू) से लिखित सामग्री उपलब्ध की जिसके आधार पर प्रस्तुत जीवन चरित तैयार किया गया है।

स्वामी आत्माराम जी परमसिद्ध योगी के रूप में अपनी अद्भुत करामातों के कारण काफ़ी चर्चित रहे हैं।



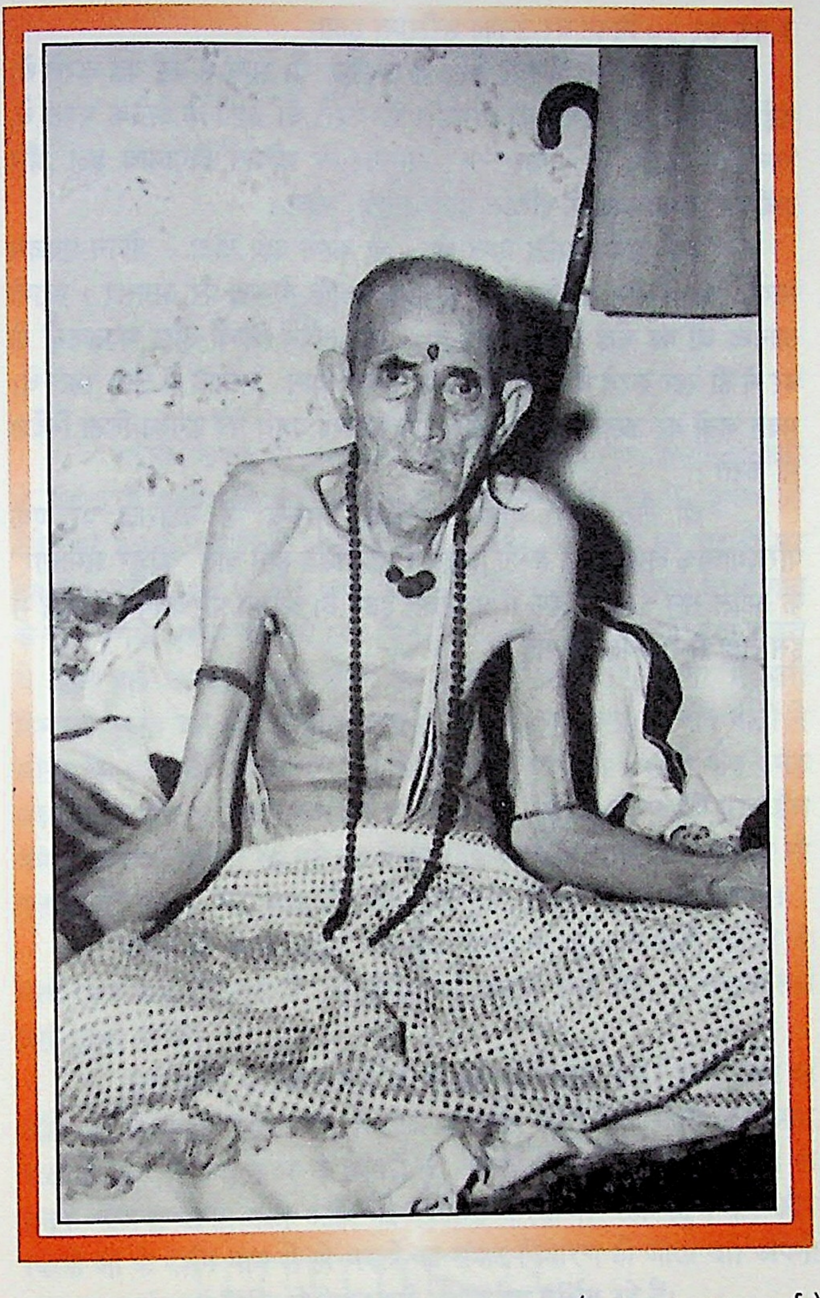
स्वामी आनन्द जी

{ विलगाम }

स्वामी जी का जन्म-दिन असूज कृष्ण पक्ष द्वादशी को मनाया जाता है। वर्ष कौन सा था यह ज्ञात नहीं। आषाढ़ शुक्ल पक्ष सप्तमी को स्वामी जी का देहावसान हुआ वर्ष था -१९८३ ई. । श्रद्धा और सम्मान वश भक्त-जन उन्हें 'बब साहब' कहते थे। आपके पूज्य पिता स्वर्गीय पण्डित राधवराम भट्ट वासकुरा - सुम्बल के मूल निवासी थे और बाद में विलगाम (हन्दवारा) स्थायी रूप से रहने के लिए चले गये।

पण्डित राधवराम भट्ट के छः पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थीं और बब साहब उनमें चौथे थे। कुछ समय के पश्चात् बब साहब श्रीनगर आये और पण्डित दीनानाथ डल्लू के घर पर कर्णनगर - श्रीनगर में नौकरी करने लगे। वे अपनी योग साधना और ईश्वर चिन्तन में लीन रहते थे और प्रायः रात्रि जागरण कर ध्यनावस्था में रहते थे। एक रात घर वालों को इसकी जानकारी हुइ, वे तुरन्त घर छोड़ कर चले गए।

गुशी कुपवारा के पण्डित शम्भूनाथ जी बब साहब के सम्पर्क में सन् १९५७ ई. में आये और बब साहब से गुरु दीक्षा लेकर अध्यात्म चिन्तन में लीन हुए। बब-साहब डुल्लू परिवार के साथ लगभग चालीस वर्ष जुड़े रहे। सन् १९६७ ई. में वे माता क्षीरभवानी तुलमुला चले आये और साधना में लीन रहे। यहाँ वे पण्डित गाशराम की दुकान की पहली मंज़िल पर निर्मित कमरे में रहते थे। सन् १९८३ ई. में गुरदे की बीमारी से स्वामीजी अकस्मात् अस्वस्थ हुए। उन्हें श्रीनगर में डॉ. शम्भूनाथ पेंशन के प्राइवेट अस्पताल (नेशनल अस्पताल, करणनगर) में दाख़िल कराया गया । यहीं १७ जुलाई सन् १९८३ ई. में सायम्



स्वामी आनन्द जी (विलगाम) (- १६८३ ई.)

३ बज कर ५० मिनट पर उनका शरीरान्त हुआ।

स्वामीजी नन्दकेश्वर भैरव के उपासक थे। साल में कई यज्ञ करते थे। कई प्रकार के कर्मकाण्डों का अभ्यास भी करते थे। आप के अनेक भक्त थे, जिनमें से विशेष थे - करणनगर श्रीनगर के पण्डित दीनानाथ डुलू और द्राबीयार, हब्बाकदल के पण्डित द्वारिकानाथ कौल।

इन्हें वाक्य सिद्धि प्राप्त थी - जो कहते वही होता - जीवन एकदम सादा, ईश्वर-प्रेम में लीन और आत्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर। स्वामी आनन्द जी का कोई आश्रम नहीं था - बस अपने शिष्यों और भक्तजनों के घर में ही रहा करते थे और अधिकांश समय ध्यान समाधि में लीन रहते थे। भक्त जनों का कल्याण करते और आवश्यकता पड़ने पर उनका दिशा निर्देश भी करते।

श्री जे० एल० नेहरू ने स्वामी आनन्द जी महाराज पर एक परिचयात्मक लेख लिखा है जो दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'कोशुर समाचार' के अप्रैल सन् १९९६ अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत परिचयपत्र लिखने में इस लेख से सहायता ली गई है।



स्वामी आनन्द जी
{ जमनगरी }

स्वामी आनन्द जी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कश्मीर के महानतम सन्तों में गिने जाते हैं। स्वामी आनन्द जी शैवाचार्य स्वामी रामजी के समकालीन थे । पहले जमनगरी की पहाड़ी पर बिल्कुल अकेले रहते थे और सदा साधना में लीन रहते थे । निकट स्थित गाँव के लोग इनके आहार के लिये सत्तू (बुने हुए अन्न का चूर्ण, बुकनी) रख छोड़ते थे और यही उनका आहार होता था। कहते हैं एक बार कश्मीर में बारी हिमपात हुआ। कई दिन लगातार बर्फ गिरती रही। जमनगरी में गाँव वालों ने सोचा कि सन्त जी पहाड़ी पर बर्फ़ के नीच दब गये होंगे । सारा गाँव उमड़ आया और गाँव से पहाड़ी तक बर्फ़ हटाने में जुट गये। ऊपर पहाड़ी पर पहुँच कर वे आश्चर्य चकित रह गये यह देखकर कि चश्मे के चारों ओर लगभग सौ फुट के गेरे में बर्फ़ गिरी नहीं और स्वामीजी मस्त अपनी साधना में लीन हैं ।

भक्तों के काफ़ी कहने पर कुछ समय के बाद स्वामीजी पहाड़ी से नीचे उतर कर जमनगरी में एक पण्डित परिवार में रहने लगे। अन्तकाल तक उसी कमरे में रहे।

नारी जाति के प्रति स्वामी जी के हृदय में विशेष आदर भाव रहता था और 'हतबी माता' कहकर उनके साथ बातचीत करते थे । भक्त जन आस पास के गाँव से तथा शहर से हज़ारों की संख्या में आते रहते थे और वे ही उनके भोजन, पानी, वस्त्र आदि की व्यवस्था करते थे। यहाँ पहुँच कर और स्वामी जी के दर्शन मात्र से ही भक्तों का संकट निवारण हो जाता था। अपनी चमत्कार पूर्ण कार्य सिद्धि के हेतु स्वामी जी पर्याप्त चर्चित रहे हैं।



स्वामी आनन्द जी (जमनगरी) (- १६३८ ई.)

स्वामी आनन्द जी जमनगरी बुमय (सोपुर) गाँव भी पहुँचे थे। बुमय जूनीपोरा सड़क पर भीमाश्वरी जी की स्थापना है जहाँ एक प्राकृतिक गुफ़ा है । आनन्द जी काफी समय तक गुफ़ा के भीतर रहे हैं। कभी-कभी भक्त जनों के सम्मुख बैठते थे।

वे पण्डित आफ़ताब भट्ट के गुरु महाराज थे। बुमय निवासी पण्डित आफ़ताब भट्ट एक बार गुरु महाराज से मिलने जमनगरी अपने घोड़े पर नौकर के साथ चले गये थे । भयंकर वर्षा में जमनगरी के पास की नदी जो वर्षा के कारण भीषण रूप धारण कर चुकी थी, वे पार कैसे हुए, इसके साथ एक आश्चर्य चकित कर देने वाली घटना जुड़ी है जो स्वामी जी की दैवी शक्तियों का बोध कराती है।

आनन्द जी पण्डित आफ़ताब भट्ट के गुरु महाराज थे और आफ़ताब भट्ट अपने बेटे स्वामी जियालाल भट्ट के गुरु थे।



स्वामी बख़्शी ईशर दास

स्वामी बख़्शी ईशर (ईश्वर) दास को आमलोग स्वामी जी के नाम से जानते थे। वे वची पुलवामा कश्मीर के बख़्शी बीरबल के सुपुत्र थे। बाल्यकाल से ही शक्ति माँ की उपासना में लीन रहते थे। तत्पश्चात् पण्डित साहिब कौल को अपना गुरु स्वीकारा और गुरु दीक्षा पाकर वह रुहू-कांगडा (हिमाचल प्रदेश) चले गये। वहाँ राजा साहब राजा रहीम-उल्ला खान ने उनको ज़मीन दी जिस पर उन्होंने अपना आश्रम बना लिया और ६५ साल तक वहीं रहे तथा वहीं परमधाम सिधारे। वह आश्रम आज भी वहाँ मौजूद है । इनके सुपुत्र बख़्शी गोपीचन्द थे जिन्हें लोग गोपाल भट्ट के नाम से भी जानते थे। स्वामी जी का पहला शिष्य शिवरत्न जी थे जिनके नेतृत्व में अमरनाथ यात्रा के समय पवित्र छड़ी मुबारक दुर्गानाग श्रीनगर से श्री अमरनाथ गुफ़ा की यात्रा पर निकलती थी। इनके दूसरे शिष्य महाराजा प्रताप सिंह महाराज थे। बख़्शी गोपीचन्द को स्वामी जी न गोद लिया था। वे वस्तुतः इनके एक शिष्य थे। इनके सुपुत्र पण्डित श्रीकंठ बख़्शी थे जो अपने दादा जी के ही शिष्य थे ।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



स्वामी बख़्शी ईशर दास



पीर पण्डित पादशाह ऋषिपीर साहब

{ हरदुजहाँ मुश्किल आसाँ }

श्रीनगर के बटयार आलीकदल मुहल्ले में पण्डित गोविन्दजू कौल खो'शू के सुपुत्र ऋषि पीर साहब का जन्म सोपुर के निकट एक नाविका में सन् १६३७ ई. में वैशाख कृष्ण पक्ष पंचमी को हुआ। नवजात शिशु का नाम रखा गया - ऋषि । पिता जी के अस्वस्थ होने के कारण इन का पालन-पोषण माताजी करती रही। ७ वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ था और तत्पश्चात् इनके पिताश्री पण्डित गोविन्द कौल का देहान्त हुआ। १२ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वे सांसारिक मायामोह से पूर्णतः मुक्त हुए थे और अपना अधिकांश समय साधना में व्यतीत करने लगे। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा इनमें जन्मजात थी। हारी पर्वत में माता शारिका के मन्दिर की परिक्रमा करना इनका हर दिन का कार्यक्रम बन गया - इन्होंने एक बार चालीस दिन लगातार घुटनों के बल परिक्रमा का व्रत लिया । व्रत पूरा होने पर दवी माँ प्रकट हुईं और इन्हें गुरु धारण करने का आदेश दिया और यह भी कहा कि अभी आगे जाने पर जो पहला व्यक्ति इन्हें मिलेगा वही इनका गुरु होगा । ठीक ऐसा ही हुआ और इन्हें पण्डित कृष्णकार जी मिले और उन्हीं से इन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हुई। कृष्णकार जी एक दिन इनकी अनुपस्थित में इनके घर आये। हुक्का पिया और इनकी माता को आदेश दिया कि जब ऋषि घर आयेंगे तो हुक्का उन्हें पीने को देना । कहते हैं चिलम के दो कश भरते ही उनके ज्ञान नेत्र खुल गए और वे त्रिकाल-दर्शी बन गए। पीर पण्डित पादशाह की टाँगे लगभग बेकार हो गई थीं -अतः उन्हें पालकी में घुमाया जाता था। इन्होंने बटयार आलीकदल में अपना आश्रम बनाया और वहीं रहने लगे।



पीर पण्डित पादशाह ऋषिपीर साहब (१६३७ - १६९७ ई.)

पीर पण्डित पादशाह गृहस्थ सन्त थे। माता के कहने पर इन्होंने विवाह किया और इनका एक पुत्र भी हुआ । ऋषिपीर कश्मीरी पण्डितों में आध्यत्मिक सन्तों की लम्बी परम्परा की अत्यन्त प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कड़ी है। उनकी सिद्धियों और चमत्कारों की अनगिनत कहानियाँ कश्मीरी पण्डितों के घर-घर में आज भी प्रचलित हैं। मुल्ला आखून के अहंकार का खण्डन, औरंगज़ेब की कट्टरवादिता को प्रताड़ित करना, अपनी माता को बटयार आलीकदल में ही गंगा स्नान करवाना, अपने सेवक नानशाह की मृत्त-माता को पुनर्जीवित करना आदि सर्वविदित घटनाएँ हैं। बादशाह औरंगज़ेब पीर पण्डित पादशाह की अलौकिक शक्तियों से आश्चर्य चकित हो उठे थे और उन्होंने दिवसर गाँव में उन के नाम जागीर रखवाई थी।

पीर पण्डित पादशाह नाम अपने आप में ऋषिपीर के व्यक्तित्व की गरिमा को दर्शाता है। गुरु कृपा के लिये चौदह वर्षों तक कठोर तपस्या-करने वाले इस सन्त को गुरु ने ही गद्दी पर बिठा कर 'पीर पण्डित पादशाह' नाम दिया। ऋषिपीर ६० साल की आयु मं सन् १६९७ ई. में अपने जन्म दिवस वैशाख कृष्ण पक्ष पंचमी के दिन ब्रह्मलीन हुए। उनका दाह संस्कार वितस्ता नदी के बटयार घाट पर किया गया जहाँ बाद में एक मन्दिर की स्थापना की गई। इनके वंश के लोग (वंशज) आज भी जीवित हैं।

ऋषिपीर एक कर्म योगी सन्त थे। वे हर समय अपने भक्त जनों को एक साथ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति एवं लौकिक जीवन निर्वाह के हेतु पथ प्रदर्शन करते रहे। सन् १९८१ ई. में पण्डित हरिकृष्ण पीर एवं पण्डित लम्बोदर नाथ पीर ने मिलकर 'पीर पण्डित पादशाह' का जीवन चरित एक पुस्तिका के रूप में श्रीनगर से उर्दू भाषा में प्रकाशित करवाया है।

१७वीं शताब्दी में ऋषि पीर कश्मीर के महान सन्तों में एक हैं । वे एक कर्म योगी थे जो हर समय जन सामान्य को एक साथ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति एवं लौकिक जीवन निर्वाह के हेतु पथ प्रदर्शन करते रहे।



श्रीमती रुँच़ द्यद

कश्मीर की मातृ शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए तथा महिला भक्त कवियों और साधकों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए स्वर्गीय श्रीमती रुँच़ द्यद का योगदान अभूतपूर्व रहा है । माता रुँच़ द्यद न केवल एक कवयित्री थी अपितु एक महान तपस्विनी और साधिका थी। आप का जन्म १८८० ई० में श्रीनगर में हुआ। कौल परिवार में आप का विवाह हुआ । पति देव थे - स्वर्गीय श्री ज़नार्दन कौल 'सागर' । वे उर्दू भाषा के एक प्रसिद्ध कवि, चिन्तक और ज्ञानी पण्डित थे। आप निज़ामे हैदरबाद के कर्मचारी के रूप में देवबन्द के दारूलउलूम में मीरे मुतर्जिम (मुख्य अनुवादक) के पद पर कार्यरत थे और अकस्मात् सन् १९१८ ई. में स्वर्ग सिधारे। उस समय उनकी पत्नी रुँच़ द्यद का एक बेटा और एक बेटी थी। यहीं से उनका साधनात्मक जीवन शुरु होता है और कठिन ज्ञान साधना के साथ-साथ वह कर्म साधना में भी रत रही । धीरे धीरे अद्भुत प्रकाश से द्युतिमान हो उठी और समाज में एक प्रतिष्ठित महिला सन्त के रूप में जनता के आकर्षण का केन्द्र बन गईं।

'रुँच़' शब्द कश्मीरी भाषा का है और अर्थ है - 'शुभ' । वस्तुतः भक्तजन उनके करामाती व्यवहार से प्रभावित होकर उन्हें रुँच़ द्यद कहते थे। यह वस्तुतः उस सिद्ध महिला के प्रति उनके हृदय में उमड़ता प्यार ही तो था।

१९६६ ई. में आपका स्वर्गवास हुआ। श्री पृथ्वीनाथ कौल 'सायिल' ने दो वर्ष कठोर परिश्रम करके आपके ४५० वाखों का संकलन तैयार किया जिसे रुँच़ द्यद के सुपुत्र स्वर्गीय हरिकृष्ण कौल 'फ़ानी' ने प्रकाशित करवाया और इस प्रकार अपनी माता की पुण्य स्मृति को अमर कर दिया।

रुँच़ द्यद ने अपने वाखों में आध्यात्मिक अनुभवों, जीवन रहस्यों एवं



श्रीमती रुँच् घद (१८८० - १६६६ ई.)

ब्रह्मज्ञान की गुत्थियों को सहज रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है। ब्रह्म-जीव सम्बन्ध तथा सांसारिक माया मोह व्यवहार पर भी आपने सम्यक् प्रकाश डाला है। रुँच़ द्यद के करामाती जीवन की कई घटनाएँ वाख संग्रह में पढ़ने को मिलती हैं। इन वाखों को वास्तव में उनकी बहू श्रीमती धनवती कौल ने सम्भाल के रख दिया था। आवश्यक पाठ शुद्धि के साथ सायिल साहब ने इन्हें भक्त जनों तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इतना ही नहीं प्रस्तुत परिचय को तैयार करने के हेतु भी सायिल साहब ने रुँच़ द्यद के विषय में आवश्यक जानकारी लिखित रूप में भेज दी।

निस्सन्देह २०वीं शताब्दी की भक्त कवयित्रियों में रुँच़ द्यद का स्थान महत्त्वपूर्ण है ।

रुँच़ द्यद के दो वाख देखने योग्य हैं :

१. लो'कचार यावुन तुँ बुजर,
त्रन छुनुँ केहँ हिशर ।
शर्कुँल, खसलथ तुँ नसीब,
ब्योन ब्योन छि फी बशर ।।

'रुँच़ द्यद' – पृ. ७६

२. युस आव यो'त सुमालिमरुन क्यँुत आव,
युस द्राव तस वो'थिनुँ सूरुँ बनिकाव ।
ज़्योन तुँ मरुन छुई नोनँ आव तुँ जाव,
संसार छु भ्रम, अपज़्युक सोरुय यि चिकुँचाव ।।

'श्रुँच़ द्यद' – पृ. १२८



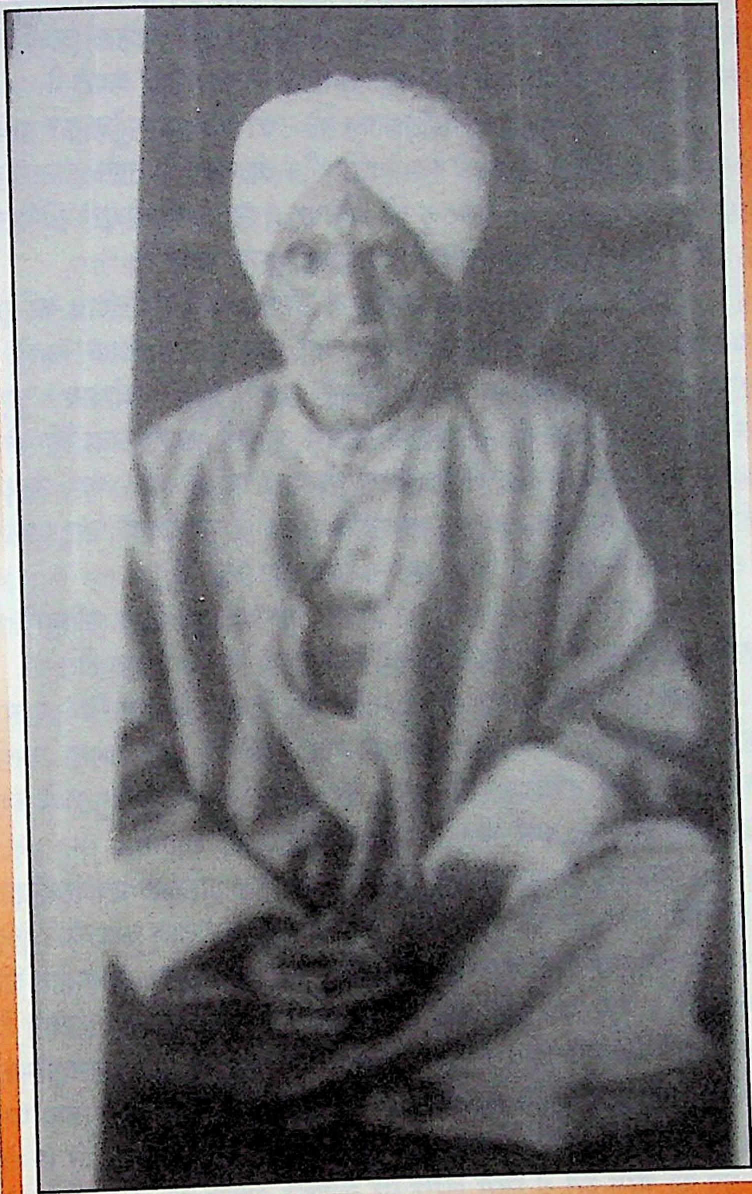
पण्डित कण्ठजू काशकारी

पण्डित श्रीकण्ठ काशकारी, जिन्हें उनके शिष्य स्नेहवश 'कंठ जू' कहते थे, का जन्म १८८३ ई. में सफरीयार हब्बाकदल श्रीनगर में हुआ था। परिवारजन उन्हें बॉयगाश कहते थे। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद पारिवारिक उत्तरदायित्व को निबाहने के हेतु एक ठेकेदार के पास लेखाकार (Accountant) के रूप में नौकरी करने लगे । ठेकेदार श्री मुहम्मद रमज़ान (रमज़ान लालटेन) उस युग के प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यवसायी थे।

पण्डित श्रीकण्ठ का विवाह यम्बिरज़ल देवी के साथ हुआ था और गृहस्थ जीवन का उत्तरदायित्व निबाहते हुए यम्बिरज़ल देवी ने एक सती-साध्वी महिला के रूप में आजीवन उनका साथ दिया । श्रीकण्ठ जी के सुपुत्र स्वर्गीय दीनानाथ काशकारी थे और दीनानाथ काशकारी के सुपुत्र श्री बंसीलाल काशकारी ने अपने दादा जी के विषय में सचित्र व्योरा लिख कर आश्रम के नाम भेजा जिसको आधार बना कर प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार किया गया है।

बल्यकाल से ही पण्डित कंठजू काशकारी अज्ञात सत्ता के प्रति आकृष्ट हुए और अलौकिक तथ्य को जानने के हेतु उन्होंने सर्वप्रथम ज्ञान-मार्ग को अपनाया। फारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी भाषाओं की उन्हें सम्यक् जानकारी थी लेकिन इसके साथ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे संस्कृत, हिन्दी और शारदा लिपि में भी सम्यक् योग्यता रखते थे। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वे एक भाषा पण्डित थे।

गार्हस्थ्य जीवन के साथ-साथ कंठजू अध्यात्म चिन्तन में व्यस्त रहते थे और नित घण्टों पूजा और साधना में व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे वे तत्कालीन कश्मीर के महान सन्तों के सम्पर्क में आये जिनमें नन्द बब, कश



पण्डित कण्ठजू काशकारी (१८८३ - १९७२ ई.)

काक, ग्रट बब, स्वामी लक्षमणजू और भगवान गोपीनाथजी उल्लेखनीय हैं। गुरुजनों के आशीर्वाद और दिशा निर्देश से आप अपनी मंज़िल (लक्ष्य) की ओर आगे बढ़ते रहे। पण्डित कश काक उन्हें 'शहर का काज़ी' कहते थे।

सन्तों का मानना है कि अध्यात्म की उच्च भूमि पर पहुँच कर प्रत्येक सन्त को एक विशिष्ट क्षेत्र की ज़िम्मेदारी सौंप दी जाती है ताकि जनता का दिशा निर्देश हो सके। पं० कण्ठजू को श्रीनगर शहर की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी । इसी लिये स्वामी कशकाक उन्हें 'शहर का काज़ी' कहते थे।

पण्डित कंण्ठजू के पास कश्मीर के संस्कृत ग्रन्थों में लिखित कई गूढ़ तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के हेतु जाने माने संस्कृत विद्वान आते थे जिनमें स्वर्गीय जानकीनाथ कौल 'कमल' तथा प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' उल्लेखनीय हैं। इतना ही नहीं स्वामी लक्ष्मण जू जैसे महान सन्त भी शंका निवारण हेतु संस्कृत ग्रन्थ लेकर कंठजू के पास पहुँचते थे । कई संस्कृत श्लोकों के सही अर्थ तथा व्याख्या को सुनने के हेतु वे गुरु देव के पास पहुँचते थे और शंका निवारण के बाद प्रसन्न चित्त लौट आते थे।

महाराज हरिसिंह कंठजू की विद्वता, योग्यता एवं दिव्य शक्तियों से प्रभावित होकर उन्हें सम्मान देने के लिये स्वयं उनके पास उपस्थित होते थे।

कंठजू ज्योतिष विद्या में भी माहिर थे। बिना एक पैसा लिये वे घर आये श्रद्धालुओं एवं भक्तजनों के जन्म-पत्रे देखते थे और गणना करके शत-प्रतिशत शुभ भविष्यवाणियाँ करते थे। उन्होंने अपने कुल गुरु से यह विद्या सीखी थी परन्तु कभी भी इसे अपना व्यवसाय नहीं बनाया।

श्रीकंठजू भगवान गोपीनाथजी के परम मित्र, प्रशंसक एव रिश्तेदार भी थे। दोनों एक दूसरे का पूरा सम्मान करते थे। श्री बंसीलाल काशकारी सन् १९५७ में कुछ समस्या ले कर भगवानजी के पास पहुँचे । सुन कर भगवान जी तुरन्त बोले - 'तुम यहाँ क्यों आये तुम्हारे घर में देवपुरुष कंठजू विद्यमान हैं जाओ उनसे विनती करो।' घटना वास्तव में कंण्ठजू की आध्यात्मिक उपलब्धियों की ओर संकेत करती है। साधना के क्षेत्र में वे अन्तिम पड़ाव पर पहुँचे हुए गृहस्थ सन्त थे। जब भी भक्तजन संकट में उनके पास आते थे तो उन्हें धूप का भस्म देते थे जिसे शरीर पर लगाकर अथवा मुँह में डाल कर वे संकट मुक्त हो जाते थे तथा उनकी मनोकामना पूर्ण होती थी। कश्मीरी पण्डितों के कर्म-काण्ड शास्त्र से भी वे पूर्ण परिचित थे । उनके घर पर अमूल्य

पुस्तकों, हस्त लिखित शारदा लिपि में लिखे ग्रन्थों तथा शारदा पाण्डुलिपियों का भंडार था जिन्हें वे अपनी मूल्यवान पूंजी समझते थे। विस्थापन के समय सन् १९८९-९० में इन्हें बचाना असम्भव हो गया और सब पूंजी नष्ट हो गयी। पण्डित कंठजू काशकारी के श्रद्धालु भक्तों में श्री सोमनाथ सप्रू का नाम उल्लेखनीय है। कंण्ठजू काशकारी और नन्द बब की कन्याकदल श्रीनगर में एक भेंट पर्याप्त चर्चित रही है।

पण्डित कंण्ठ जू धर्माडम्बर एवं रूढ़ि पालन के कट्टर विरोधी थे । वे धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों एवं व्यवहारिक क्रिया-कलापों पर विश्वास रखते थे। उन्हें परमब्रह्म का आभास अपने ही मानस के भीतर होता था। उनके मुख मण्डल पर अद्‌भुत तेज और आँखों में ज्ञान ज्योति का अजस्र प्रवाह देखने योग्य होता था। आगन्तुक व्यक्ति केवल उनके दर्शन से ही मंत्रमुग्ध हो जाता था। जीवन पर्यन्त जब तक वे नौकरी में रहे अपनी अधिकांश आय परोपकारी योजनाओं पर व्यय करते रहे । हर वर्ष महायज्ञ का आयोजन, साधुओं एवं ग़रीब लोगों को भोजन खिलाना और असहाय शरणागत की सहायता करना उनका धर्म था।

सन् १९७२ ई. के सितम्बर मास में एक दिन पण्डित कंण्ठजू ने तब समस्त परिवारजनों और भक्तजनों को आश्चर्य में डाल दिया जब उन्होंने स्वयं अन्तिम यात्रा की पूरी तैयारी की। स्वच्छ ताज़ा पानी का गडुआ मंगवाया, कमरे में ज़मीन पर कम्बल बिछा दी । लेट गये और शरीर के एक-एक अंग से प्राण साथ छोडने लगे, हाथों के इशारे से दिखाते रहे । भक्त पण्डित महीश्वर नाथ माम भगवद्‌गीता का पाठ करते रहे और कंठजू की इहलीला समाप्त हो गई।

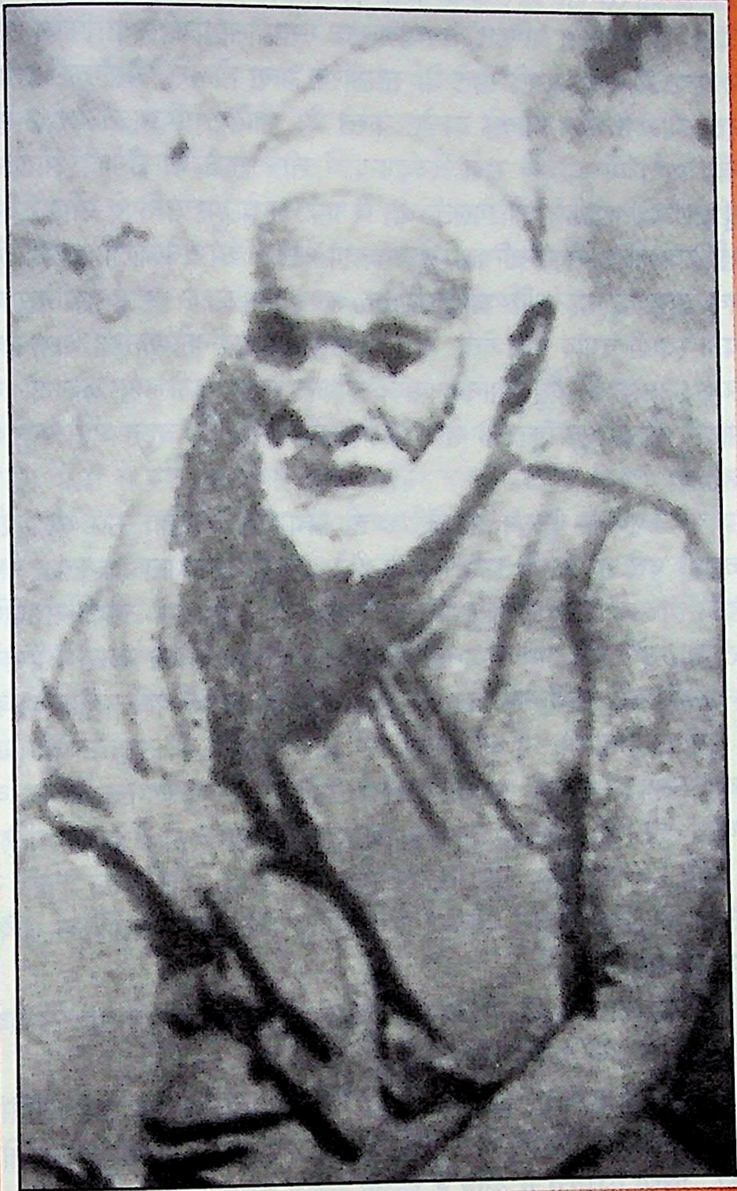


पण्डित कशकाक जी

तहसील गान्दरबल (ज़िला श्रीनगर) में स्थित मनिगाम गाँव देवी रूपभवानी (रुपद्‌यद्‌) की योग-साधना का प्रमुख साधना पीठ रहा है। यह गाँव श्रीनगर से लगभग पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसी गाँव में पण्डित राजराम मल्ला के घर पण्डित कश काक का जन्म सन्‌ १८८३ ई. के आस-पास हुआ । उनकी माता का नाम था - लॅखमी । पण्डित राजराम माल विभाग (Revenue Department) में नौकरी करते थे । अल्पायु में ही कशकाक मूल तत्त्व को जानने पहचानने के लिये व्याकुल दिखाई दिये। उनका विवाह पास के गाँव वुसन में हुआ था। पत्नी का नाम था राधा। उनके घर दो पुत्रो पण्डित आफ़ताब राम मल्ला और पण्डित शम्भूनाथ मल्ला तथा एक पुत्री ज़र्पुर द्‌यद/गोनॅवती ने जन्म लिया। ज़र्पुर द्‌यद आज भी जीवित है।

खेतीबारी के साथ-साथ पण्डित कशकाक मल्ला युवावस्था में पास के कई गूजर बकरवाल गाँव मे फेरी किया करते थे और प्रायः तत्त्व चिन्तन में लीन रहते थे। खड़ाऊँ पहन अखरोट के एक विशालकाय वृक्ष पर जब वे चढ़ गए तो देखते ही गाँव वालों के होश उड़ गए और उनकी अलौकिक शक्ति की चर्चा सारे इलाके में होने लगी।

पण्डित कशकाक प्रायः मनिगाम के साथ-साथ बहने वाली लॉर को'ल के किनारे बैठते थे और जो भी भक्त अथवा श्रद्धालु उनके पास आता था वह वही संत जी के सम्मुख बैठकर दिव्यानन्द का सुख प्राप्त करता। भक्त-जन जो भी खाद्य पदार्थ श्रद्धावश उनके लिये लाते थे वे उन पदार्थो को एक-एक करके धीरे-धीरे लार को'ल (नदी) में बहा देते थे और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में हल्की आवाज़ में अपने ही साथ बतियाते रहते । भक्त जनों को दूध



पण्डित कशकाक जी (१८८३ - १९६१ ई.)

लाने का आदेश देते और कभी-कभी एक ही दिन में पचास से सौ किलो दूध नदिया में बहाते थे। पण्डित कशकाक एक मस्तमौला फ़कीर थे। फिरन पहन कर प्रायः नंगे पाँव घूमते रहते थे। सांसारिक माया मोह से कोसों दूर अत्यन्त सरल और निश्छल जीवन व्यतीत करते थे। भौतिक एषणाओं पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी। वे सदा दिव्यानन्द में लीन रहते थे। उनकी आँखों में अद्‌भुत ज्योति देखने को मिलती थी। वे एक पहुँचे हुए सन्त थे और उनकी अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित कई आश्चर्य चकित कर देने वाली कथाएँ और उनके द्वारा की गई भविष्यवाणियाँ (predictions) आज भी जन-मानस पर अपना स्थायी प्रभाव डाल देती हैं। पण्डित कशकाक को फ़ारसी भाषा की सम्यक् जानकारी थी। आनन्द मग्न होकर भक्त जनों की शंकाओं का समाधान किसी एक फ़ारसी शे'र को पढ़कर करते थे। बहुत धीमे स्वर में बोलते थे।

कशकाक के घर से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। सब की मुरादें (इच्छाएँ) पूरी हो जाती। कई बार उन्होंने अद्‌भुत करामात (चमत्कार) भी दिखाये हैं। उनक घर से कोई निराश नहीं लौटता। सब पर उनकी समदृष्टि रहती थी। छोटे बड़े अथवा अमीर गरीब का भेद-भाव उनकी नज़र में बेमानी था। उन्होंने कई रुग्ण जनों को रोग मुक्त किया। उनके यहाँ प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत होता था। वे धर्म, जाति, वर्ग और सम्प्रदाय की संकुचित सीमाओं से बहुत ऊपर उठ चुके थे। उन्होंने कदापि हिन्दू और मुसलमाल के भेद को स्वीकार नहीं किया। उनकी नज़र में सब एक थे। वास्तव में वे अपनी मंज़िल पर पहुँचे हुए एक दिव्य दृष्टि सम्पन्न सन्त थे - सहज और सरल प्रकृति के मालिक। अकृत्रिम जीवन व्यवहार में विश्वास रखने वाले अलौकिक शक्ति सम्पन्न किसान।

कशकाक ने साधना पथ पर स्वर्गीय पण्डित नारायणजू भान से दीक्षा ली थी और वे उन्हें अपना गुरु मानते थे।

जम्मू कश्मीर राज्य के अन्तिम डोगरा शासक महाराज हरीसिंह उनका बहुत सम्मान करते थे। घाटी के कई प्रतिष्ठित एवं बहुचर्चित लोग उनकी शिष्य परम्परा में आते हैं जिनमें बख़्शी गुलाम मुहम्मद, श्री जगन्नाथ पीर एवं श्री अर्जुननाथ ठुस्सू उल्लखनीय हैं। कहते हैं कि कशकाक की प्रसिद्धि भारत के अन्य राज्यों में भी फैली थी। पूना (महराष्ट्र) के प्रसिद्ध सन्त और

योगी मेहरबाबा, जिन्हें उनके शिष्य अवतार स्वरूप मानते थे, कशकाक से मिलने श्रीनगर आये और उनके दर्शन पाकर उन्हीं के हाथों प्रसाद ग्रहण किया। मेहरबाबा ने महान सन्तों के जीवन से सम्बन्धित अपनी चर्चित पुस्तक ' The Wayfarers में लिखा है कि 'मैंने कशकाक को एक महान आत्म-ज्ञानी के रूप में देखा है जो आत्म चेतना के सातवें तल पर पहुँचे हुए थे।' श्री जी० एन० रैणा ने अपने एक लधु परिचयपत्र में जो दिल्ली से प्रकाशित होने वाले ' कोशुर समाचार' के फरवरी १९९९ ई. अंक में छपा है, इस कथन का उल्लेख किया है। उनका मानना है कि स्वामी नन्दलाल जी और स्वामी लक्ष्मण जू भी कशकाक के दर्शनार्थ मनीगाम आए हैं।

भारत पर चीन द्वारा आक्रमण किये जाने से पूर्व सन् १९६१ ई. में जब नुनर गाँव के नन्द बब उनसे मिलने मनिगाम आए तो उन्होंने बब से कहा – 'हम दो में से एक को जाना होगा आख़िर हमारे देश पर विदेशी आक्रमण होने वाला है, इसे रोकना होगा। मैं ही चला जाऊँगा।' सुन कर नन्द बब द्वार से ही वापस लौट गए। १७ अगस्त सन् १९६१ ई. के दिन सन्त कश काक जी की देह लीला समाप्त हुई। मनिगाम में उस दिन हज़ारों की संख्या में हिन्दू मुस्लमान ग्रामवासी और नगरवासी भक्त जन एकत्र हुए और सिन्धु नदी के किनारे वायुल पुल के पास श्मशान घाट पर उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ।

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना, यह तत्त कहियो ज्ञानी।"



कलन्दर बाबा

आपके जन्मस्थान एवं जन्म तिथि के विषय में आधिकारिक रूप में कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं है। आप कृष्ण वर्ण के सुगठित शरीरधारी मस्त फ़कीर थे। वर्ण से दक्षिण भारत से आए हुए बाबा जाने जाते थे किन्तु नाम से शायद् ही आप को कोई जानता था। आपके भक्तों ने आपके दर्शन श्रीनगर में बड़शाह पुल और इसके आसपास के इलाके में ही प्रायः किये है । आध्यात्मिक दृष्टि-विहीन लोगों के लिए आप एक साधारण सुध खोए हुए व्यक्ति के रूप में लगते थे किन्तु जीवन रहस्य का अध्ययन करने वाले और परखने वाले लोग आपके समीप हर समय मंडराते थे और अपनी जिज्ञासा को तृप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे। आपका कोई विशेष आश्रम अथवा बैठने का स्थान नहीं था – कभी दुकानों के पटरी पर और कभी पुल के पास पगडंडी पर रात दिन अपनी ही मस्ती में तल्लीन रहते थे।

आप अध्यात्म जगत में किस स्थान पर आसीन थे इसका आभास कुछ लोगों को था जिसके बारे में आश्रम के श्री मोहनकृष्ण तिक्कू जी द्वारा उद्धृत एक उदाहरण इस प्रकार है – "श्रीमान तिक्कू पं० श्यामलाल जी (भूतपूर्व उपसचिव राज्य गृह-विभाग) के साथ एक बार आश्रम के विषय में कोई विशेष बात करने के लिए पं० श्रीधर जू धर (भूतपूर्व कन्सरवेटर जम्मू कश्मीर राज्य वन-विभाग) के घर गए थे। तिक्कू जी और श्यामलाल जी ने पं० श्रीधर जू धर को अपने कक्ष में सुप्तावस्था में देखा अतः वे कुछ समय उनके कमरे में आपस में बातें करते रहे और तत्पश्चात् उन्हें जगाए बिना ही चले गए। अगली भेंट होने पर तिक्कू जी ने पं० श्रीधर जू को जब यह बताया कि वह इससे पूर्व उनसे मिलने आए थे और उन्हें सोया हुआ देखकर चले गए



कलन्दर बाबा

थे तो पं० श्रीधर जू ने उत्तर में कहा – " हाँ आप अमुक दिन आए थे किन्तु मैं सोया नहीं था, मुझे ईश्वर की अनुकम्पा से उस समय ध्यानावस्था में सन्तों के एक सम्मेलन का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सम्मेलन में आए अनेक मनीषियों में अमुक बाबा (उनका शारीरिक, विवरण देकर) कलन्दर बाबा एक गज (हाथी) पर आरूढ आ रहे दिखे थे।" यह पण्डित श्रीधर जू धर के ध्यान में तुर्यावस्था की स्थिति में अनुभव किया हुआ सत्य था। तिक्कू जी को इससे बड़शाह पुल के आसपास ठहरने वाले कृष्ण वर्ण क मस्त मलंग की आलैकिक शक्ति का ज्ञान प्राप्त हुआ।

बाबा दक्षिण भारत के निवासी थे इसकी पुष्टि श्रीमान मोहनकृष्ण तिक्कू जी को ही दक्षिण भारत के एक सज्जन जो तिक्कू जी के पास केसर लेने के लिए श्रीनगर में प्रायः आते थे, के कथन से होती है। उस सज्जन ने तिक्कू जी से कहा था कि वह बाबा को जानते हैं और बाबा सेना में कार्य रत थे। वह सज्जन जो एक होटल चलाते थे, बाबा को कभी उनकी पसन्द का भोजन एक विशेष प्रकार की दाल इत्यादि बना कर ले आते थे। उस सज्जन ने यह भी कहा था कि जब उन्होनें एक बार बाबा से पूछा था " बाबा आपका नाम क्या है ? "तो बाबा ने उत्तर में कहा था – "जो आप का नाम है।" तिक्कू जी से जब यह पूछा गया कि उस सज्जन का नाम क्या था तो तिक्कू जी बता नहीं सके क्योंकि ठीक से स्मरण नहीं था।

सन् १९८६ में राज्य के गुप्तचर विभाग को बाबा पर सन्देह हुआ और उन्हें हिरासत में लेने के लिए माईसुमा थाने और कोठी बाग थाने (श्रीनगर) से पुलिस की जो टुकडी पकड़ने के लिए आई पहले तो वह उनक शरीर के वज़न को उठाने में असमर्थ रहे फिर जिस गाडी में बाबा को बिठाया वह वाहन ही चल न सका। यह धटना उन्हें पहले साधारण तकनीकी खराबी का कारण लगी किन्तु दूसरी बार जब एक विशेष दल उन्हें पकड़ने के लिए आया तो उस दल के प्रमुख को विचित्र संकेत मिले जिसके कारण उन्हें बाबा को हिरासत में लेने का विचार ही तर्क करना पड़ा।

आपके भक्त दोनों हिन्दू और मुसलमान थे। दोनों समुदायों के लोगों को आपने अपने-अपने विश्वास के अनुसार ही दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। दोनों समुदायों के भक्त लोग अपने-अपने अनुष्ठानों के अनुसार आपकी अर्चना करते हैं।



श्री किश बब
{एक महान रहस्यवादी सन्त}

पण्डित केशवनाथ १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में खाह बाज़ार अनन्तनाग में जन्मे थे। आठवीं तक शिक्षा प्राप्त करके आपको राज्य के शिक्षा विभाग में ड्रिल मास्टर की नौकरी मिली लेकिन बहुत दूर इलाके में प्रथम नियुक्ति होने के कारण नहीं जा सके। दुकानदारी करने लगे, पहले अनन्तनाग में तत्पश्चात् गोसानी गुंड के गाँव में । यह वह समय है जब गोसानी गुंड के आश्रम में स्वामी आत्माराम जी निवास करते थे। केशवनाथ को आत्माराम का मार्गदर्शन मिला और वे अध्यात्म की ओर प्रवृत्त हुए । इस गाँव में केशवनाथ लगभग पचास वर्षों तक रहे और उसके बाद पुनः अनन्तनाग लौट आये लेकिन तब तक वे केशवनाथ नहीं किश बब, किश मोर्त, दरवेश साहब, किश पीर, बब आदि नामों से प्रसिद्ध हुए थे। कहते हैं कि गोसानी गुंड में स्वामी आत्माराम का आशीर्वाद प्राप्त कर वे प्रायः अपने दुकान के बरामदे (दालान) पर घण्टों बैठते थे। आत्माराम जी के साथ-साथ एक मुसलमान सन्त अमुँसॉब का सहयोग भी प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे वे अध्यात्म की गहराइयों में उतर गए।

किश बब एक कर्म योगी सन्त थे, एक रहस्यवादी जो जीवन की सच्चाई को जानने हेतु तथा अध्यात्म के रहस्यों को समझने के लिये जीवन-पर्यन्त साधनारत रहे। उन्होंने अध्यात्म चिन्तन को दिव्यानुभूति और मन को उस अनुभूति को प्राप्त करने के हेतु प्रयोगशाला माना है।

धार्मिक रुढ़ियों पर उन्हे कोई विश्वास नहीं था। वे चेतना को दिव्य प्रकाश की अद्भुत आभा समझ कर उसकी प्राप्ति हेतु आकुल दिखाई देते थे।



श्री किश बब : एक महान रहस्यवादी सन्त (१८६० - १६८६ ई.)

आश्रम के भीतर स्वामी आत्माराम वेद, उपनिषद् और पुराण के मूल तथ्यों से भक्तजनों को अवगत कराते थे और आश्रम के बाहर किश बब की दुकान के बरामदे पर सामान्य जन बैठ कर किश पीर से आशीर्वाद का प्रसाद पाकर धन्य हो जाते थे। उनके दरबार में धर्म, जाति, वर्ग और छोटे बड़े का कोई अन्तर नहीं था। कहते हैं कि वे अपनी कुटिया से बहुत कम बाहर निकलते थे लेकिन अपने भक्तजनों को दूर दूर इलाकों में दर्शन देकर आश्चर्य में डाल देते थे। कहने का अभिप्राय यह है कि दिव्यशक्तियां के मालिक किश बब कहीं भी और कभी भी प्रकट होकर अपनी उपस्थिति का एहसास कराते थे। अनन्तनाग के ऋषिमोल अस्थापन में, डुरू तहसील के काबामर्ग में, कटरा के निकट स्थित वैष्णवदेवी के दरबार में तथा कौंसर नाग कश्मीर में उन्हें कई लोगों द्वारा देखा गया है और आश्चर्य इस बात का है कि गोसानी गुंड स्थित दुकान छोड़ कर वह कहीं नहीं जाते थे ।

किश बब एक साधारण जीव थे और अपनी दिव्य चक्षुओं से सब कुछ देखते थे और प्रत्येक वस्तुस्थिति से पूर्ण परिचित थे। प्रायः दुकान के साथ लगे एक कमरा आवास में बैठ कर अपनी दिनचर्या में व्यस्त दिखाई देते थे। दिसम्बर १९८६ ई. में एक दिन वे भाव-समाधि में लीन रहे और भौतिक स्थिति में लौट आने पर कहने लगे – 'कश्मीर को बहुत बुरे दिन देखने होंगे। हिन्दुओं, को भागना पड़ेगा। इसके बाद कट्टरपंथी नष्ट हो जाएँगे। ख़िलाल (दांत खोदने का तिनका) के बराबंर भी कोई दिखाई नहीं देगा। राम नाम पुनः सिद्धि का महामन्त्र बन जाएगा '।

किश बब कोई महा पण्डित नहीं थे लेकिन सब के मानस में प्रवेश करने का सामर्थ्य रखने वाले सर्वज्ञाता रहस्यवादी सन्त अवश्य थे।

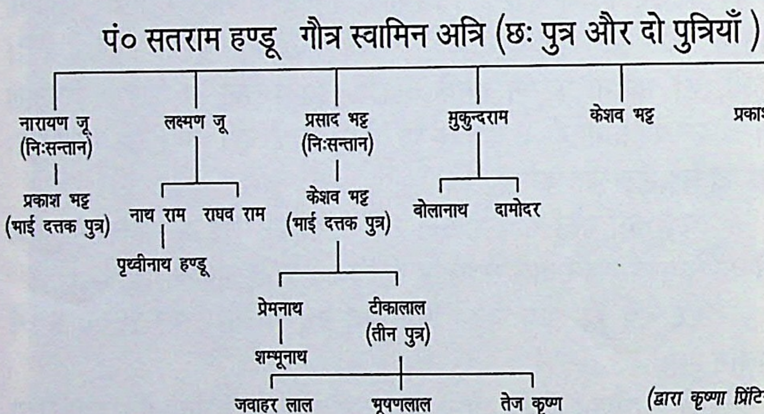
९६ वर्ष की आयु पाकर किश बब २६ दिसम्बर सन् १९८६ ई. में ब्रह्मलीन हुए।

श्री मनमोहन थप्पलू जी ने किश बब पर अंग्रेज़ी भाषा में एक परिचय लेख लिखा है जो 'कोशुर समाचार' फरवरी सन् १९९९ ई. अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत परिचय पत्र को लिखते समय उस लेख से सहायता ली गई है।



पण्डित केशव भट्ट ज्योतिषी

रैणावारी श्रीनगर-कश्मीर में दरिया के किनारे जोगीलंगर (लंगर - सदावर्त - हमेशा अन्न बाँटने का व्रत) मुहल्ले में एक प्रतिष्ठित कश्मीरी ब्राह्मण परिवार रहता था। इस परिवार में १९वीं शताब्दी के अन्तिम काल खण्ड में पण्डित सतराम का जन्म हुआ था। पण्डित सतराम अपनी वंश परम्परा के अनुकूल एक महान पण्डित, ज्योतिषाचार्य एवं कर्मकाण्ड के ज्ञाता सिद्ध हुए। पण्डित सतराम के वंश का विकास इस प्रकार हुआ है :-



(द्वारा कृष्णा प्रिंटिग प्रेस)

सतराम के पुत्र-रत्न संस्कृत भाषा के महान पण्डित एवं ज्योतिष विद्या में पारंगत (learned) सिद्ध हुए। ज्योतिषी मुकुन्दराम महाराजा प्रताप सिंह के राज्य ज्योतिषी बने और प्रसाद भट्ट ज्योतिष शास्त्र के महान गणितज्ञ और गायन कला में निपुण थे । महाराजा के दरबार में सब भाइयों में से इनका



(१८७३ - १९४६ ई.)

पण्डित केशव भट्ट ज्योतिषी

अधिक सम्मान होता था तथा दरबार में आना जाना रहता था। मुकुन्दराम जी कश्मीरी में स्वतन्त्र रूप से एक पंचांग हर वर्ष प्रकाशित करवाते थे और प्रसाद भट्ट उसकी गणित-गणना करते थे। मुकुन्दराम के देहान्त के बाद सम्पादन का कार्यभार भी उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा।

पण्डित केशव भट्ट प्रसाद भट्ट के (दत्तक) पुत्र थे। इनका जन्म १६३० विक्रमी (१८७३ ई.) में हुआ था। इस परिवार का सम्बन्ध महर्षि अत्रि से है और वे आत्रेय गोत्र में जन्मे 'हण्डू' थे।

पण्डित त्रिलोकीनाथ भट्ट ने 'ज्योतिषी प्रसाद भट्ट' शीर्षक से 'कोशुर समाचार' नई दिल्ली के जून १६६५ अंक में एक परिचय लेख लिखा है। पहले मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार करते समय उस पत्र से पर्याप्त सहायता ली गई है। उनका मानना है कि छटी पादशाही (रैणावारी श्रीनगर - कश्मीर) के आस पास रहने वाले सिक्ख उनके यजमान थे। शायद इसी लिए लोग उन्हें केशव भट्ट 'सिक्ख' कहते थे। इस सन्दर्भ में पं० केशव भट्ट के भाई पं० लक्ष्मण जू के पौत्र पं० पृथ्वीनाथ हण्डू से साक्षात्कार में स्पष्ट हुआ कि 'सिक्ख' उपनाम पण्डित सतराम के जीवनकाल से ही उनके परिवार द्वारा अर्जित किया गया है। जब उनसे यह पूछा गया कि सिक्ख उपनाम के पीछे क्या इतिहास है तो उन्होंने बताया कि पं० सतराम महाराजा के विशेष ज्योतिषी थे। एक बार महाराजा को अपने पूजागृह में पवित्र 'गुरु ग्रन्थ साहब' को ससम्मान सुशोभित करने की इच्छा हुई। चूंकि उन दिनों पुस्तकें आसानी से मिलना सम्भव नहीं था - प्रैस की सुविधाएँ सुलभ नहीं थीं इसलिए महाराजा ने अपने दरबारियों को आदेश दिया कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' की एक प्रति को किसी भी प्रकार उपलब्ध किया जाए। यह दायित्व पं० सतराम ने अपने ज़िम्मा ले लिया और कुछ समय मांग कर महाराजा को ग्रन्थ साहब उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया। पं० सतराम करीब छः महीने अपने घर पर रहे और अपने हाथों से 'गुरु ग्रन्थ साहब' की एक प्रति तैयार की। ग्रन्थ साहब तैयार होने की सूचना पं० सतराम ने महाराजा को भिजवाई। महाराजा प्रसन्न हुए और आदेश दिया कि ग्रन्थ साहब को राज्यमहल तक पहुँचाने के लिए पं० सतराम के घर परन्दा (शाही नौका) भिजवा दिया जाए। महाराजा के आदेश का पालन हुआ और पं० सतराम के घर जो रैणावरी बागजोगी लंगर में डल झील के किनारों से प्रवाहित एक

जलधारा के तट पर स्थित था (विस्थापन से पूर्व तक पं० केशव भट्ट का पूरा वंश वही निवास करता था और घर अभी भी विद्यमान है) शाही नौका भेजी गई। महाराजा के भेजे परन्दे में बैठने के लिए जब ज्योतिषी सतराम अपने घर से घाट पर उतर रहे थे तो पड़ोस में देख रहे लोगों ने उन्हें नहीं पहचाना बल्कि दाढ़ी उगे उनके मुख को देख कर यह अनुमान लगाया कि कोई सरदार महाराजा के परन्दे में सवार हो रहे हैं। बाद में जब लोगों को यह ज्ञात हुआ कि दाढ़ी वाले सज्जन पं० सतराम थे तो इसके बाद से आस-पास के लोगों ने ज्योतिषी जी को सतराम हण्डू न कहकर 'सिक्ख' कहना शुरु किया। उन्हीं से इनका हण्डू परिवार 'सिक्ख' उपनाम से विख्यात हुआ।

केशव भट्ट एक कर्मकाण्डी पण्डित थे । महागायत्री के उपासक और गायत्री-जप पर अनन्य विश्वास रखने वाले महापण्डित। पेशे से अध्यापक थे। गान्दरबल से लगभग ३ किलोमीटर की दूरी पर स्थित नुनर गाँव में पाठशाला में बच्चों को पढ़ाते थे और श्रीनगर से प्रायः पैदल चलकर नुनर पहुँचते थे। अपने यजमानों के घर धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा कराने के हेतु आते जाते थे।

पण्डित केशव भट्ट सन्त प्रकृति के एक ज्ञानी महापण्डित थे । निरन्तर अध्ययन, मनन-चिन्तन और ज्ञानार्जन में लीन रहते थे। नम्रता, शालीनता और सहृदयता के गुण उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बना देते थे। साधना के लिये उनके पास रात्रि का समय रहता था। कुछ घण्टों के लिये ही विश्राम करते थे और ब्रह्ममुहूर्त में जाग कर शंका-शौच से निवृत्त होकर रोज़ किसी भी मौसम में नहाते थे। तत्पश्चात् नित्य-पूजा में कुछ समय लगाकर प्रतिदिन के जीवन संघर्ष में जुट जाते थे।

केशव भट्ट गृहस्थ थे। वैवाहिक जीवन से उन्हें दो पुत्र प्राप्त हुए - प्रेमनाथ और टीकालाल।

श्री प्रेमनाथ जी का देहान्त हो चुका है उन्ही के सुपुत्र श्री शम्भूनाथ श्रीनगर में 'कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस' चलाते हैं ।

पण्डित केशव भट्ट नुनर गाँव में पर्याप्त चर्चित रहे। वे छात्रों के अतिरिक्त रुचि रखने वाले पण्डितों को धार्मिक ग्रन्थ, संध्योपासना तथा कर्मकाण्ड से सम्बन्धित बातों की जानकारी देते थे। इसके लिये वे न किसी से पैसा लेते थे और न ही किसी प्रत्युपकार की आशा रखते थे । रैणावारी में भी घर आये जिज्ञासुओं की ज्ञान जिज्ञासा शान्त करते थे।

कहते हैं कि कभी केशव भट्ट ने दक्षिणा के हेतु किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। यजमान ने क्या दिया वे कभी मुट्ठी खोलकर नहीं देखते थे। आज के युग में कई लोगों को यह अविश्वसनीय प्रतीत हो रहा होगा लेकिन यह यथार्थ है एक महान कर्मकाण्डी पण्डित का जिस ने कर्म को धर्म समझ कर निबाहया, कर्म के फल की लालसा से कभी पीडित नहीं हुआ।

यह वह युग है जब कश्मीर में प्रकाशन और मुद्रण की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थी। केशव भट्ट पंचाग हाथ से लिखते थे। कई प्रतियाँ बनानी पड़ती थी और चैत्र कृष्णपक्ष अमावस्या (नवरेह मावस) के दिन अपने यजमानों में बांटते थे। ज्ञानी केशव भट्ट इस व्यवस्था से सन्तुष्ट न थे। उन्हें लग रहा था कि कर्म काण्ड के मूल ग्रन्थों की सुरक्षा नितान्त आवश्यक है नहीं तो एक दिन यह पैतृक सम्पत्ति हम से सदा के लिये छिन जायेगी। वे काफी चिन्तित थे। उन्होंने इस विषय में दृढ़ निश्चय किया और कई स्थानों पर पहुँच कर कर्म काण्ड से जुड़ी मूल पुस्तकों (हस्तलिखित) को एकत्र करना शुरु किया। यह कोई आसान काम नहीं था । कर्मकाण्ड से जुड़ी सभी पुस्तकें (शारदा लिपि में हस्तलिखित) ब्राह्मण परिवारों में सुरक्षित थी परन्तु कोई अपनी पुस्तक को एक दिन के लिए भी देने को तैयार नहीं होता था। अतः केशव भट्ट को वहीं बैठ कर हाथ से लिखकर पुस्तक की प्रति तैयार करनी पड़ती थी।

पर्याप्त सामग्री एकत्र करने के बाद केशव भट्ट न एक ज्ञानी महापण्डित की भूमिका निबाहते हुए सम्पादन का काम शुरु किया और विभिन्न कर्मकांड से जुड़े अनुष्ठानों (religious peformances) की एक मानित/मानक (standard) विधि तैयार की। व्यर्थ के भाग काट कर अलग कर दिये और भावी कश्मीरी ब्राह्मणों के हेतु कर्मकांड एवं पूजापाठ का एक संशोधित रूप तैयार किया।

इसके बाद उन्होंने मुम्बई के 'निर्णय सागर' प्रेस से सम्पर्क स्थापित किया और पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था कर दी। कुछ ही दिनों में ज्योतिषी जी को श्रीनगर में स्थापित 'विश्वनाथ आर्ट प्रेस' के संस्थापकों से भी सम्पर्क हुआ जिन्होंने इस कार्य में उनका सहयोग दिया। बाद में ज्योतिषी जी ने विश्वनाथ प्रेस के मालिकों से व्यवसाय के अतिरिक्त निजी सम्बन्ध भी स्थापित किए। पुस्तकें प्रकाशित होकर केशव भट्ट के पास पहुँची और उन्होंने बहुत ही

सस्ते दामों पर इन्हें पण्डितों क लिये उपलब्ध कराया। कश्मीरी पण्डितों के धार्मिक संस्कारों को जन-जन तक पहुँचाने में उनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। इनके एक मानक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई और भावी पीढ़ी के लिये भी ज्ञान का यह अमूल्य भण्डार सुरक्षित रहा ।

केशव भट्ट आजीवन कर्म साधना में लीन रहे। जन भावनाओं का सम्मान करते हुए उन्होंने पुरोहित समाज को ससम्मान कर्तव्य कर्म निबाहने की प्रेरणा दी और साधन भी जुटाये। अपने समाज के लिये केशव भट्ट का यह योगदान कर्मकांडी पण्डितों के लिये संजीवनी का वरदान सिद्ध हुआ है। इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

पण्डित केशव भट्ट द्वारा संशोधित/सम्पादित कर्मकांड से जुड़ी धार्मिक पुस्तकों की सूची में से कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१. नित्य कर्म विधि (प्रथम भाग); नित्य कर्म विधि (द्वितीय भाग); नित्य कर्म विधि (तृतीय भाग) । प्रथम भाग के अन्तर्गत स्नान विधि, सन्ध्योपासना, नैवेद्य मन्त्र आदि; द्वितीय भाग में गायत्री स्तुति, गुरु स्तुति, महागणेश वन्दना, गौरी स्तुति आदि तथा तृतीय भाग में जन्म दिन पूजा, जन्माष्टमी पूजा, नारायण स्तोत्र एवं आचार शिक्षा आदि उल्लेखनीय पूजा संकल्प शास्त्रीय विधि अनुसार दिये गये हैं।

२. 'शिव पूजा' - कश्मीर शैव धर्म, दर्शन एवं मतानुयायियों का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। इस पुस्तिका के अन्तर्गत शिव पूजा पद्धति, बहुरूपगर्भ, महिम्नास्तोत्र, पंचाक्षर स्तोत्र, अतिभीषण आदि पूजा पद्धतियों का मूल पाठ, विधि निर्देश सहित दिया गया है।

३. ' सौन्दर्यलहरी' पंचस्तवी सहित।

४. देवी पूजा विधि विधान, महाराज्ञी देवी स्तुति, सरस्वती स्तुति एवं रूपभवानी के कुछ 'वाख' ।

५. कर्मकांड (प्रथम भाग) अन्त्येष्टि से लेकर मृतक के वर्ष भर के सारे श्राद्ध एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान (धार्मिक कृत्य आराधना सहित)

६. वेदकल्पद्रुम (हवन/यज्ञ विधि-विधान एवं पद्धति विशेष का अनुपालन)

७. मेखला पुस्तक उपनयन संस्कार, विवाह, कन्या-दान संस्कार

(शात्रानुभाषित विधि-विधान)

८. शिव पूजा (इस पुस्तिका का सम्बन्ध शिवरात्रि पूजा के साथ है।)
९. पार्थिवेश्वर पूजा
१०. भवानी सहस्रनाम (नामावली शिवस्तुति सहित)
११. काश्मीर ज्योतिष संग्रह : (वर्ष फल, जन्म पत्री के हेतु उपयोगी सामग्री, गणित-गणना विधि आदि)
१२. विष्णु सहस्रनाम
१३. गणेश, राज्ञी, ज्वाला, शारिका सहस्रनामावली
१४. भक्ति विवेकसार (अनेक प्रकार के स्तोत्रों का संग्रह)

पण्डित केशव भट्ट के पास कई प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी सुरक्षित थीं जो मुख्यतः शारदा लिपि मे थीं।

केशव भट्ट निस्सन्देह एक कर्मयोगी महापण्डित एवं ज्योतिषाचार्य थे।

कश्मीर खण्ड में प्रचलित कर्मकांड को एक चिर स्थायी रूप प्रदान करने में केशव भट्ट का योगदान अभूतपूर्व रहा है। साधानात्मक जीवन में विश्वास रखने वाले इस महापण्डित ने जाति हित में अपना सर्वस्व समर्पित किया था। हिन्दुत्व को विश्वसनीय शास्त्रीय आधार प्रदान करने में आपने पूरी निष्ठा और संकल्पबद्धता के साथ काम किया और समाज को एक नई दिशा पदान की। आपकी कार्य सिद्धि समाज के लिये वरदान सिद्ध हुई। पण्डित केशव भट्ट का स्वर्गवास संवत् २००६ विक्रमी सन् १९४९ ई. आश्विन कृष्ण पक्ष द्वितीया के दिन हुआ और इस प्रकार कश्मीरी पण्डित समुदाय का एक महान कर्मवीर, योग-साधक, ज्ञानी पण्डित, निस्वार्थ सेवक, लोकहितैशी सर्वत्र ज्ञान ज्योति का प्रकाश फैला कर सदा के लिए मौन हो गया।

रैणावारी के श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री ने जिन्हें केशव भट्ट की विद्वत्ता एवं ज्ञानगरिमा ने बेहद प्रभावित किया था, उनके व्यक्तित्व पर आधारित कुछ दोहे लिखे हैं जिनमें निम्नलिखित दो दोहे विशेष उल्लेखनीय हैं :

नश्वर भौतिक देह को तजकर बंध विहीन।
छः अधिक द्विसहस्र में हुआ ब्रह्म में लीन ।।
प्रतिवत्सर पंचांग का गणित कर सुविशाल।
ज्योतिषविद् यह लोक का हरता था भ्रमजाल ।।



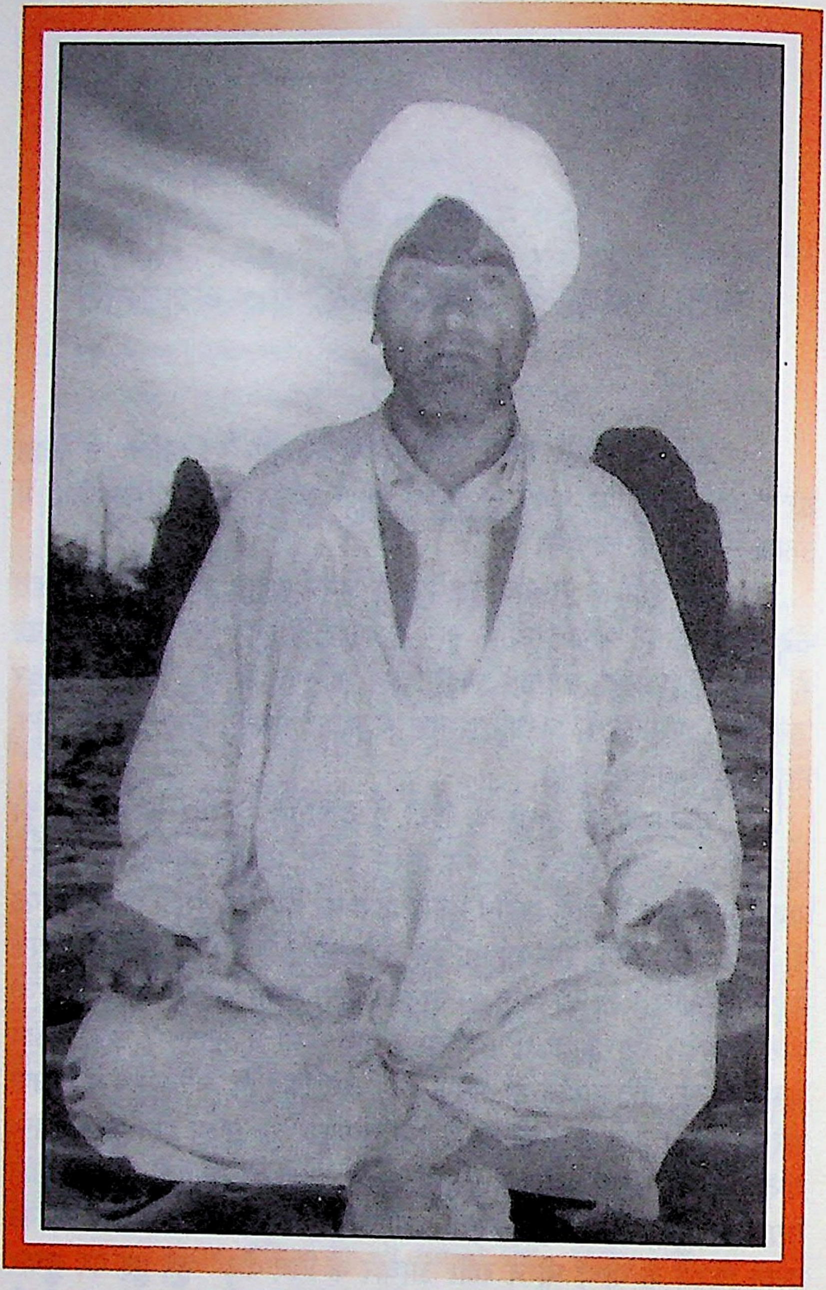
माता भद्रकाली वड़ीपोरा के पं० केशवनाथ

{ पण्डित जी }

कश्मीर ऋषियों, सन्तों और योगियों की भूमि है जिन्होंने न केवल शरण आने वालों को कष्टों से निवृत्त किया अपितु विषम परिस्थितियों में उनका संरक्षण भी किया है।

इसी भूमि से सम्बन्ध रखने वाले अनेक महान आत्माओं में पण्डित केशवनाथ जी-जो पण्डित जी के नाम से लोकप्रिय हुए - का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता रहेगा। इनका जन्म श्रीनगर से ७० किलोमीटर दूर 'हन्दवारा' तहसील के 'वड़ीपोरा' ग्राम में हुआ। गृहस्थी सन्त थे और माता भदकाली के अनन्य भक्त।

युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में वड़ीपोरा से चार किलोमीटर दूर भद्रकाली के पवित्र मन्दिर में जाया करते थे जो भद्रकल नामक वन में एक पहाड़ी पर स्थित है। यहीं इन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। एक दूसरी किंवदन्ति यह भी है कि एक तपस्वी योग साधना हेतु भद्रकाली आए हुए थे, उन्हीं के सम्पर्क में आकर पण्डित जी को माता का अनुग्रह प्राप्त हुआ। पण्डित जी के पास जो कष्ट निवारण हेतु आता था वह खाली हाथ कभी न लौटता । अन्य महान विभूतियों की भाँति इन्होंने भी अनेक चमत्कार किए हैं। लिखितरुप में संक्षिप्त परिचय भेजने वाले बन्धु को उनके एक चमत्कार का साक्ष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके पड़ोस में एक विवाहित युवती जो गर्भवती थी अकस्मात रोग ग्रस्त हुई । रोग बढ़ते-बढ़ते अनियंत्रित होने लगा यहाँ तक कि वह चलने फिरने के योग्य भी न रही। उपचार के लिए दौड़- धूप हुई पर सुधार नदारद। अन्ततः किसी प्रकार उस समय डल-गेट में रह रहे पण्डित जी के



माता भद्रकाली वड़ीपोरा के पं० केशवनाथ (- १६७३ ई.)

पास उसे ले जाया गया, पण्डित जी उसकी दयनीय दशा देख कर द्रवीभूत हुए। मन्त्रोच्चारण करके हस्त स्पर्श किया। रोगी की दशा में तुरन्त सुधार हुआ, वह चलने फिरने लगी। देखने वाले हतप्रभ रहे। इस घटना के बाद हर वर्ग और जाति के लोग उनके पास अपनी समस्याओं को लेकर आने लगे।

सन् १६४७ ई. के कबाइली हमले में उनपर दो बार गोली चलाई गई क्योंकि उन्होंने वह धन-राशि, आभूषण आदि लुटेरों को देने स इनकार किया था जो उनकी शरण में आने वालों ने उनके पास धरोहर रूप में रखे थे। दोनों बार गोली मारने वालों का निशाना चूका और वह यह कह कर वहाँ से खिसके कि यह कोई सन्त महात्मा हैं।

पण्डित जी ने माता भद्रकाली का मन्दिर जो मात्र भग्नावशेष रह गया था - का नवीनीकरण करवाया। उन्हीं के प्रयास फलस्वरूप इस मन्दिर की लोकप्रसिद्धि हुई। उस समय के राज्य के प्रधानमंत्री बख़्शी गुलाम मुहम्मद हन्दवारा की यात्रा के दौरान पण्डित जी के दर्शनार्थ उनके पास आए, उनकी दिव्य शक्तियों से अत्यन्त प्रभावित होकर उनके लिए किसी सेवा का आग्रह किया। पण्डित जी ने अपने लिए कुछ न माँगा अपितु वड़ीपोरा से मन्दिर तक के मार्ग को पुख़्ता बनवाने की बात कही ताकि यात्रियों का आना जाना सुगम हो सके। बख़्शी साहब ने पण्डित जी की यह इच्छा पूरी करवाइ। इसके फलस्वरूप (चैत्र महानवमी) नव-रात्र के दिनों यात्रियों का माता भद्रकाली के दर्शन करने के लिए आना सुविधामय हुआ। पण्डित जी प्रति वर्ष श्रावण अमावस्या को यहाँ एक भव्य यज्ञ करवाते थे।

पण्डित जी को भजन-कीर्तन करना अच्छा लगता था । विशेषकर पंचस्तवी के श्लोकों के भक्ति रस का आस्वादन उन्हें अधिक प्रिय था। ऐसे अवसरों पर वे भाव-विभोर होकर परमानन्द अवस्था में लीन हो जाया करते थे। मार्च १६७३ ई. में उनका देहावसान हुआ। उनकी इच्छानुसार उनका अन्तिम संस्कार भद्रकाली में ही सम्पन्न हुआ ।



पण्डित कृष्णजू राज़दान

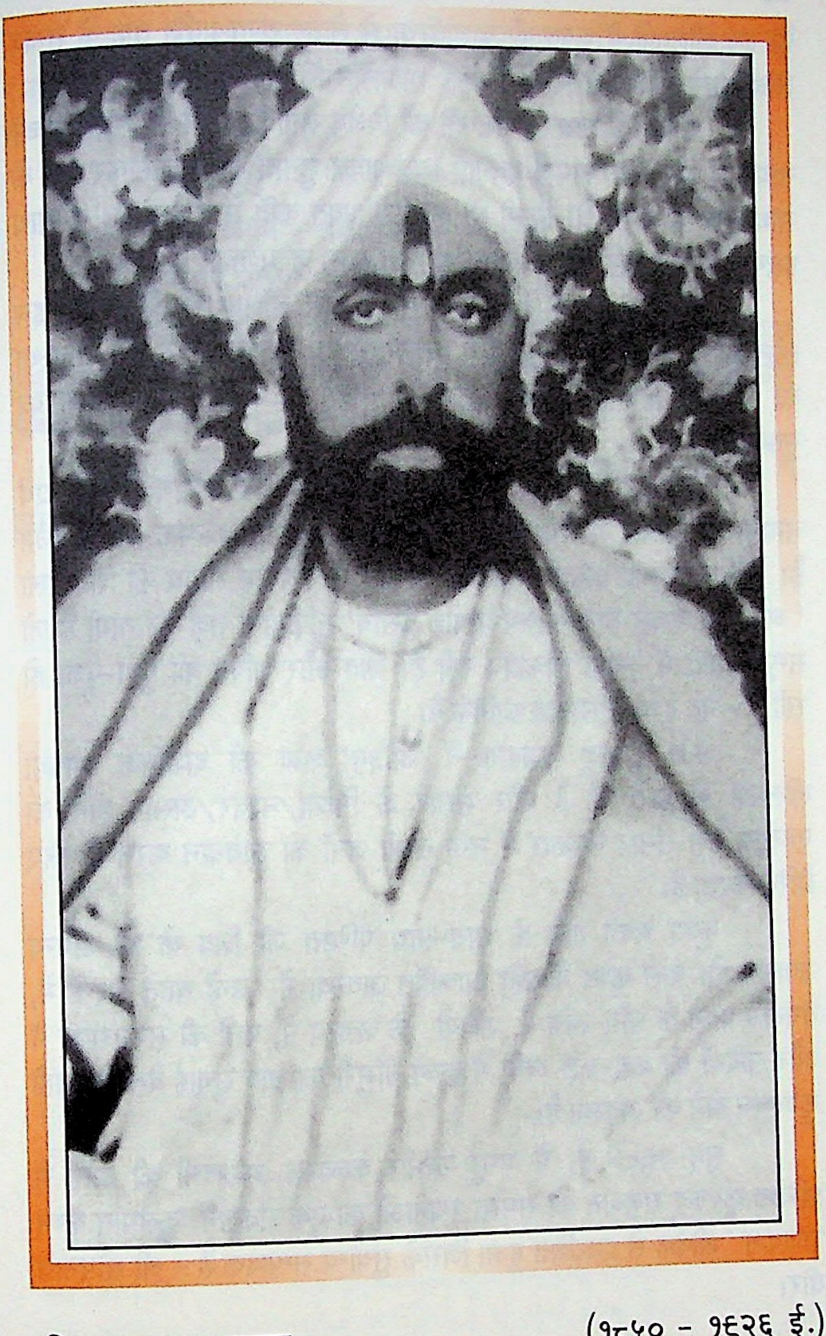
कश्मीर में लीला और भक्ति काव्य के क्षेत्र में स्वामी परमानन्द (१७९१-१८७९ ई.) के पश्चात् पण्डित कृष्ण जू राज़दान का योगदान अभूतपूर्व रहा है। अनन्तनाग (कश्मीर) के निकट वनपोह (तहसील कुलगाम) गाँव में एक सम्पन्न पण्डित परिवार में कृष्णजू १९ अगस्त सन् १८५० ई. में उत्पन्न हुए। उनका विवाह व्योस गाँव में एक ज़मींदार परिवार में हुआ था। पत्नी का नाम था - अरणिमाल। अरणिमाल ने दो पुत्रों को जन्म दिया - आनन्दराम और शंकर रैणा। पण्डित कृष्णजू ने वैवाहिक जीवन के समस्त उत्तरदायित्व को आजीवन निबाहया और गृहस्थ आश्रम में ही उस अखण्ड चेतन सत्ता को पहचानने तथा उसके लीलामय जगत के सौन्दर्य-कणों को बटोरने का प्रयास किया।

पण्डित कृष्णजू राज़दान की भक्तिपरक रचनाओं का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है :-

१. वर्णनात्मक कथा काव्य   २. स्फुट भक्तिपरक लीला काव्य

वर्णनात्मक कथा काव्य के रूप में उनकी उल्लेखनीय रचना है - 'शिवपरिणय'। शिव-शक्ति की प्रणय-कथा ने पण्डित जी को विशेष रूप से मोह लिया था। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'शिवपरिणय' की कथा में स्थानीय रंग निखर कर सामने आया है। उनके विचारानुसार शिव और शक्ति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। शक्ति के बिना शिव शव है। यदि शिव ज्ञान रूप है तो शक्ति क्रिया रुप। सम्पूर्ण कथा लोक-मानस से जुड़ी है।

कृष्णजू ने सैंकड़ो लीलाएँ सगुण कृष्ण के मनमोहक छवि चित्रों को साकार रूप प्रदान करने के लिए लिखी हैं। ये लीलाएँ माधुर्य गुण से ओत-प्रोत



पण्डित कृष्णजू राज़दान (१८५० - १९२६ ई.)

हैं। इन लीलाओं में कृष्ण की बालावस्था से लेकर राज्य प्राप्ति तक के सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं।

संगीत के साथ पण्डित जी को विशेष लगाव था। वे स्वयं एक अच्छे गायक थे और प्रायः अपनी रचनाएँ स्वयं गाकर सुनाते थे। मस्त होकर गाने के साथ नृत्य भी करते थे। किसी भी कश्मीरी भक्त कवि में लोकसंगीत के साथ इतना आकर्षण नहीं रहा है जितना पण्डित कृष्ण जू राज़दान को था।

राज़दान साहब ने अत्यन्त सुन्दर रास लीलाएँ भी लिखी हैं। इन लीलाओं में रास नृत्य का नाटकीय चित्रण वस्तुतः कृष्णमय होने की अवस्था का यथार्थ बोध है। संगीत, नृत्य एवं काव्य का अद्‌भुत संगम रास का मुख्याकर्षण है।

उनके भक्ति काव्य में कहीं-कहीं गूढ़ गम्भीर दार्शनिक तथ्यों एवं साधना की विभिन्न अवस्थाओं का सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है। स्वर्गीय मुहम्मद अब्दुल्लाह तिब्बत बक़ाल ने राज़दान साहब की शिवलीला 'ब्यल तय मादल व्यनुँ गोलाब पम्पोश दस्तय' सूफ़ियाना तर्ज़ पर गायी है जो सम्पूर्ण घाटी में पर्याप्त लोकप्रिय रही है। शिव और शक्ति की पुष्प-पूजा हो रही है - यह दृश्य निस्सन्देह स्वर्गिक है।

सन्त कृष्णजू राज़दान ने 'ओ३म्' शब्द की दार्शनिक व्याख्या लीलाओं के द्वारा की है और संसार के मिथ्या/नश्वर/असार होने का एहसास उसे संसार व्यवहार में मग्न लोभी जनों को सावधान करने के लिए प्रेरित करता है।

कृष्ण भक्त होने के साथ-साथ पण्डित जी शिव के भी अनन्य उपासक थे। बाल कृष्ण के प्रति आकर्षित अवस्था में उन्हें बहते झरनों में, वेगवान पवन के साँय-साँय में, पक्षियों के कलरव में, पत्तों की सरसराहट में और नदियों की कल-कल ध्वनि में कृष्ण बाँसुरी का नाद सुनाई देता है। यही कृष्णमय होने की अवस्था है।

सन् १९८४ ई. में जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से पण्डित कृष्णजू राज़दान की समस्त रचनाओं का एक संकलन 'कुलयात कृष्ण राज़दान' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसके सुयोग्य सम्पादक हैं - श्री सोमनाथ वीर।

इधर श्री श्यामलाल राज़दान के सम्पादकत्व में पण्डित कृष्ण जू राज़दान की समस्त रचनाएँ निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुई हैं :

१. 'कृष्णॅ दर्शुन' – प्रकाशन वर्ष १९९९ ई.

२. 'शिवुॅ लॅगुॅन' – प्रकाशन वर्ष १९९८ ई.

३. 'कृष्णुॅ वॉणी' – प्रकाशन वर्ष २००० ई.

पण्डित जी ने कई लीलाएँ एवं भजन हिन्दी भाषा में तथा कुछ गज़ल शुद्ध फ़ारसी में भी लिखे हैं। कश्मीरी भाषा में लिखी हुई उनकी लीलाओं और भक्ति परक रचनाओं की संख्या चार सौ से अधिक है।

पण्डित कृष्णजू राज़दान का देहान्त १३ दिसम्बर सन् १९२६ ई. में हुआ।



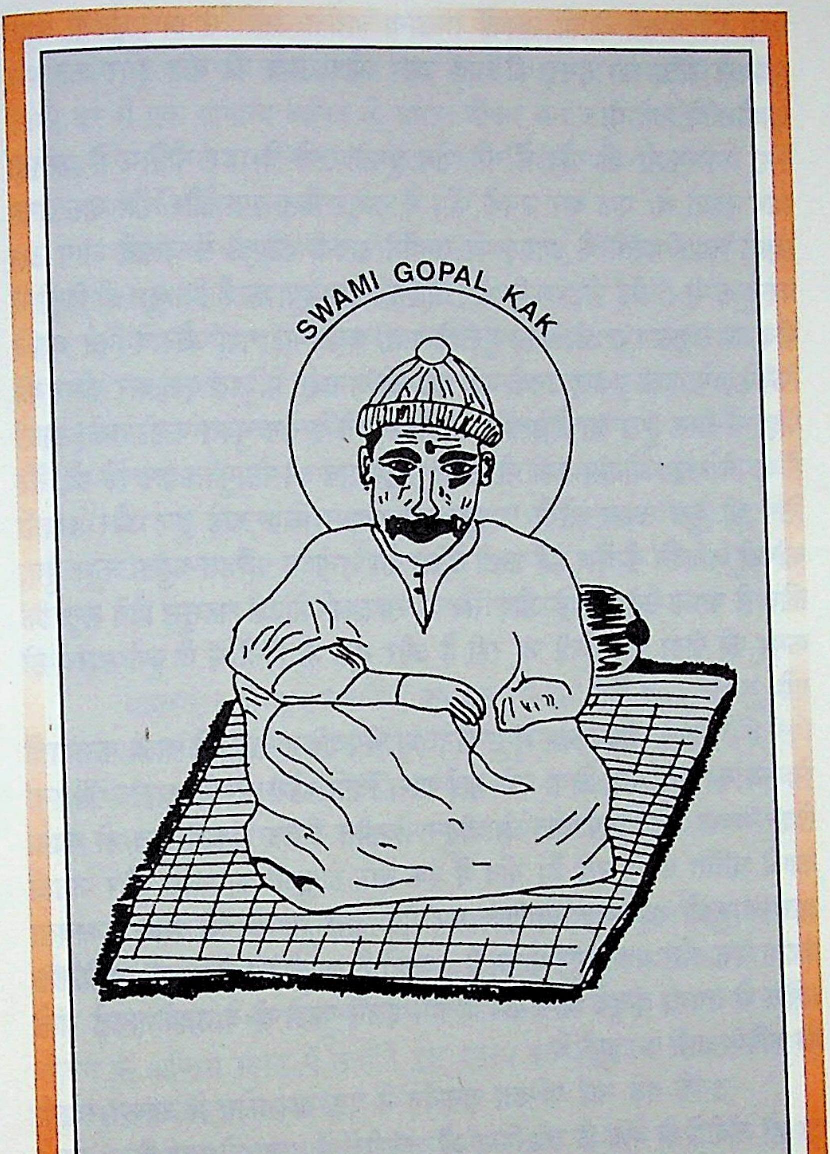
स्वामी गोपाल पण्डित 'काक'

स्वामी गोपाल पण्डित (काक) का जन्म कश्मीर के कुपवारा ज़िले के वडीपोरा गांव में सन् १८७५ ई. के आस-पास हुआ था। बाल्यकाल से ही उनका व्यवहार बड़ा विचित्र था। ऐसा प्रतीत होता था कि असन्तुलित मानसिक अवस्था अथवा विक्षिप्त अवस्था में ग्राम बालक मन मानी करते हुए इधर उधर भटक रहा है। गाँव के बच्चे उसे चिढ़ाने के हेतु फबतियाँ (चुटीली बातें) कसते और तंग करते थे। कभी छोटे-छोटे पत्थर उस पर फंकते थे और कभी खाने के हेतु नाना प्रकार की वस्तुएँ देते थे।

समय व्यतीत होता गया और समूचे ग्राम समाज को यह एहसास होने लगा कि गोपाल पण्डित पागल नहीं अपितु कोई सिद्ध महात्मा है। लोग अब गम्भीरता पूर्वक उसके प्रति आकर्षित हुए और उसे सम्मान देने लगे। पण्डितों के साथ साथ गाँव और ज़िले के मुसलमान बन्धु भी उसके प्रति आकर्षित हुए और वे उसे 'गफ़्फ़ार साहब' कहने लगे। 'गफ़्फ़ार' ईश्वर नामवाचक शब्द है।

स्वामी जी सदा अपने आप में मस्त रहते थे, उन्हें कोई सुध नहीं रहती कि कौन आया और कौन नहीं आया। वे अपने मानस के भीतर ही मग्न रहते थे। उन्हें इस बात की भी चिन्ता नहीं थी कि लोग उनके बारे में क्या कह रहे हैं। वे किसी प्रकार के प्रदर्शन या प्रचार के लिये परेशान नहीं थे। क़हते हैं कि आरम्भिक दिनों में स्वामी जी को बच्चे चिढ़ाने के हेतु कंकरियां खाने को देते थे और वह चुपचाप उनको निगल जाते थे।

वे प्रायः मौन रहते थे, कुछ कहते नहीं थे। अत्यन्त अल्प भाषी थे और संकेतों अथवा मुख मुद्राओं से अपने आपको अभिव्यक्त करते थे। जब



स्वामी गोपाल पण्डित (काक) (१८७५ - १९४५ ई.)

कभी वह बोलते थे तो उसको समझना अथवा उसमें से अर्थ ढूँढना बहुत मुश्किल होता था। इधर की बात उधर और उधर की बात इधर कह कर ख़ामोश हो जाते थे।

स्वामी जी गाँव में नंगे पाँव घूमते रहते थे। हर मौसिम में कांगड़ी साथ रखते थे। एक बार उनके पाँव में नासूर फैल गया और पाँव एक तरह सड़ने लगा। भक्तों के आग्रह पर उन्होंने अपनी कांगड़ी से जलती आग उस पर डाल दी । कोई पीड़ा नही और आश्चर्य इस बात का है कि कुछ ही दिनों में पाँव का संदूषाण (infection) दूर हो गया, ज़ख्म भर गया और वे फिर चलने फिरने लगे। इसी प्रकार उनके बड़े भाई श्री ज़नार्दन पण्डित एक बार कमर की पीड़ा से ग्रस्त हुए। काफ़ी इलाज कराने पर भी वे रोग मुक्त न हो सके। अन्त में अपने भाई गोपाल काक से कहा – 'तुम सब को रोगमुक्त कर रहे हो, मेरे लिये भी कुछ उपाय सोचो '। सुन कर गोपाल काक खड़े हुए और अपनी कांगड़ी ज़नार्दन के सिर पर उल्टी उँडेल दी। ज़नार्दन पण्डित बहुत रुष्ट हुए, क्रोध से पगला उठे। कपड़े और सिर को साफ करके उसे महसूस होने लगा कि कमर की पीड़ा कम होती जा रही है और कुछ ही दिनों में वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

अपने जीवनकाल में उन्होंने आश्चर्यचकित कर देने वाली करामातों से सब का मन मोह लिया था। नाई द्वारा बिना सोचे समझे उसका 'फिरन' लेकर जाना और तत्पश्चात् आजीवन नेत्रहीन होकर संकट गस्त हो जाना काफ़ी चर्चित घटना रही है। गाँव में एक बार डाकुओं का प्रवेश और जनता द्वारा डाकुओं का आश्चर्यचकित कर देने वाले सामर्थ्य के साथ मुकाबला करना एक और महत्त्वपूर्ण घटना है । कहते हैं स्वामी जी ने अपनी अलौकिक शक्ति से उनकी बन्दूकें जाम कर दी थी। इससे पहले ही वे उनके पकड़े जाने की भविष्यवाणी कर चुके थे ।

उनके बड़े भाई पण्डित ज़नार्दन ने एक बार क्रोध में आकर स्वामी जी को जंजीरों से बांध के रख दिया और जंजीरों में ताला भी लगा दिया। दूसरे दिन प्रातः यह देखकर वे आश्चर्य में पड़ गये कि ताले की चाबी उनके जेब में है और स्वामी जी मस्त होकर इधर उधर घूम रहे हैं और जंजीरें टूटी हुई ज़मीन पर पड़ी मिली।

कहा जाता है कि अपने जीवनकाल में स्वामी जी बारह वर्षों के लिये अपने गाँव से चले गये और अज्ञात वास में रहे । इन बारह वर्षों में वे कहीं किसी घर में एक सामान्य व्यक्ति के समान नौकर बन कर रह रहे थे । वहाँ भी ज़हरीले साँप से सम्बन्धित एक घटना घटी जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें वापस अपने गाँव लौट कर आना पड़ा।

स्वामी जी के मुस्लिम शिष्यों में हबीब जू रावा, जो गाँव में अपने भाई अब्दुलग़नी रावा के साथ दुकान चलाते थ, काफ़ी प्रसिद्ध रहे हैं । वे मूलतः सोपुर के निवासी थे। बड़े भाई हबीब जू को स्वामी जी पर अटूट श्रद्धा थी और छोटे भाई ग़नी जू के हृदय में सन्देह का कांटा चुबा हुआ था। एक दिन निमाज़ अदा करने के बाद ग़नी जू अचेत हो गये और स्वप्न में उन्होंने स्वामी जी को न्यायाधीश के आसन पर न्यायमूर्ति के रूप में आसीन दखा और अपने आपको अपराधी के रूप में। न्यायमूर्ति के मुख पर मुसकान खिली हुई थी। ग़नी जू की चेतना लौट आई और उन्होंने पास बैठे स्वामी जी के मुख पर बिल्कुल वही मुस्कान देखी। देख कर उसके होश उड़ गये और वह सदा के लिए सावधान हो गया।

देहावसान के बाद स्वामीजी का दाह संस्कार नहीं हुआ अपितु गाँव के पास एक नदिया के किनारे उन्हें पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया गया। इसके लिये इलाके के हिन्दू और मुसलमानों की राय एक थी। श्रद्धालु यहाँ की माटी लेकर अपने पास सुरक्षित रखते हैं तथा रोग मुक्त होने के लिये इसे प्रयोग में लाते हैं।

स्वामी जी के प्रमुख शिष्यों में उनका भतीजा पण्डित शिव जी था। पण्डित शिव जी पहले निर्गुण उपासक रहे हैं बाद में सगुण उपासना भी करने लगे। उनपर स्वामी श्रीरामकृष्णदेव की विचारधारा का काफ़ी प्रभाव पड़ा था । जीवन के अन्तिम समय में उन्होंने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि उनके गुरु स्वामी गोपाल काक थे।

प्रोफ़ेसर एस० एन० पण्डित ने स्वामी गोपाल काक के साधना प्रधान जीवन से सम्बन्धित २४ पृष्ठों की एक पुस्तिका अंग्रेज़ी भाषा में २००१ ई. में प्रकाशित की है। प्रस्तुत परिचय पत्र लिखते समय उस पुस्तिका से पर्याप्त सहायता ली गई है।



भगवान गोपीनाथजी

२०वीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर की सन्तपरम्परा में भगवान गोपीनाथजी (बॅब भगवान) श्रद्धालु भक्तों के लिये साक्षात् भगवद्स्वरूप प्रकट हुए हैं। आपके दिव्य व्यक्तित्व की ज्योति-छटा आज २१वीं शताब्दी में भक्तजनों को दिव्यानन्द में निमग्न कर देती हैं। आज विश्वस्तर पर भगवानजी के माहात्म्य का गुणगान हो रहा है।

बानमुहल्ला हब्बाकदल श्रीनगर में रहने वाले लोकाकि देवलया गोत्रीय एक सम्पन्न कश्मीरी पण्डित परिवार में गोपीनाथजी का जन्म शुभ शुक्रवार ३ जुलाई सन् १८९८ ई० तदनुसार आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशी के दिन हुआ। उनके पूज्य पिता पण्डित नारायण जू भान एक उदार हृदयी पशमीना व्यापारी थे। भगवानजी की पूजनीय माता श्रीमती हारमाल स्वर्गीय पण्डित प्रसाद जू पारिमू की सुपुत्री थी । पण्डित प्रसादजू एक रहस्यवादी सन्त थे। इन्हें 'जडभरत' भी कहते थे। उनकी गहन साधना पर प्रसन्न होकर माता क्षीरभवानी ने पण्डित प्रसादजू को उनके घर में पुत्री के रूप में जन्म लेने की पूर्वसूचना दी थी अतः भाग्यशाली पुत्री हारमाल का जन्म हुआ । विवाहोपरान्त भगवानजी पुत्र रूप में इन्हीं के गर्भ से जन्मे। पण्डित नारायणजू भान और माता हारमाली क दाम्पत्य जीवन में यह विधाता की अद्भुत देन थी। यही देन दशरथ और कौशल्या, वसुदेव और देवकी तथा नन्द बाबा और यशोदा को श्रीसम्पन्न एवं गौरवशाली बना देती है।

भगवानजी ने मिडल स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत, फारसी, उर्दू और हिन्दी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान अर्जित किया था। आनन्द अवस्था में वे कभी-कभी अंग्रेज़ी वाक्यों का उच्चारण भी किया करते थे। शारदा और नागरी लिपियों में उनके लिखे कई पत्र, लेख प्राप्त हुए हैं। अपने प्रारम्भिक



भगवान गोपीनाथजी (१८९८ - १९६८ ई.)

जीवन में आप बिना किसी की सहायता के भवानीसहस्रनाम, इन्द्राक्षी स्तोत्र, पंचस्तवी, विष्णु सहस्रनाम, शिवमहिम्नास्तोत्र, शिवस्तोत्रावली आदि का नित्य पाठ करते थे। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीगुरुगीता में आपकी परम श्रद्धा थी इन ग्रन्थों की एक-एक प्रति जीवन पर्यन्त आपने अपने समक्ष रखी।[2]

भगवानजी ने युवावस्था से ही जीविका हेतु कोई नियोजन स्वीकार करने में प्रगट रूप से उदासीनता दिखाई थी किन्तु परिवार में उस समय व्याप्त विषम परिस्थितियों के कारण आप पहले पशमीना व्यापार में लग गए, फिर एक स्थानीय प्रेस में तथा अन्त में एक किरयाना दुकान खोल कर जीविकोपार्जन करने लगे। चूंकि उनका मन कहीं और असीम दिशा में उन्मुक्त उडान भर रहा था इस कारण दुकान छोड़ कर 'हक़' (ईश्वर, सत्य, यथार्थ) की तलाश में निकल पड़े। भौतिक इच्छाओं और आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हुए वे मूल तत्त्व के गोपनीय रहस्यों को जानने पहचानने में लग गए। उन्हें लगा कि दिव्य प्रकाश तमसान्धकार की गहन घटाओं से आच्छादित है अतः अज्ञान के वक्ष को चीर कर तथा दिव्यानन्दलोक में प्रवेश करके स्वयं आनन्द स्वरूप होना ही जीवन की महानतम उपलब्धि है और यही 'अनलहक़' (अहं ब्रह्मास्मि) की अवस्था कहलाती है।

इधर धरवाले विवाह बन्धन में बांधना चाहते थे लेकिन गोपीनाथजी तो स्वयं आशिक़ बनकर अपने माशूक के साथ एकात्म हो चुके थे। गृहस्थी का चोला न पहना लेकिन परिवार में रहकर अद्भुत शक्ति स्रोत की भूमिका अवश्य निबाही। इस प्रकार आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर भगवानजी ने जीवन-व्यवहार सम्बन्धी निम्ननिलिखित तीन मूलभूत तत्त्वों पर विशेष बल दिया है :

सहजता (स्यॅज़र) (Simplicity, straight forwardness)
सत्यवादिता (पॅज़र) (Truthfulness)
शुचिता (शोज़र) (Purity, Virtuousness)

भगवानजी ने कश्मीर घाटी को कभी नहीं छोड़ा किन्तु घाटी के विविध देवस्थानों पर अल्पावधि निवास के लिए कभी-कभी जाया करते थे। हारी पर्वत श्रीनगर में माता शारिका के शक्तिपीठ पर नित्य प्रातः जाने के अतिरिक्त एक बार उन्होंने निरन्तर ८ महीने वहाँ निवास किया। सम्भवतः इन्हीं दिनों भगवानजी माता शारिका के दिव्य-दर्शन से अनुगृहीत हुए। इसी

प्रकार तुलमुला क्षीरभवानी में राज्ञा भगवती; ख्रिव में ज्वालाभगवती; हन्दवारा में माता भद्रकाली; तथा श्रीनगर में ज्येष्ठा भगवती, गुप्त गंगा, तुष्कराज भैरव जैसे प्रसिद्ध अस्थापनों के दर्शनार्थ एवं साधना हेतु जाया करते थे। बॅबजी श्री अमरनाथ जी की पावन तीर्थ यात्रा पर भी कई बार गए हैं।[1]

युवावस्था में ही भगवानजी गहन साधना में लीन हुए थे और निराकार ब्रह्म की प्रतीति हेतु निर्गुणोपासना के पथ पर पूरी निष्ठा, दृढ संकल्प, विश्वास और आत्म-समर्पण की भावना के साथ आगे बढ़ते रहे। साधना पथ पर भगवानजी ने इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष बल दिया है। सन् १९२९ से १९३६ ई० तक का ७ वर्षीय कालखण्ड उनके साधनात्मक जीवन में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह समय उनके लिये कठिन साधना एवं गहन परीक्षा का काल था। इस कालावधि में एक बार उनकी बहिन ने उन्हें बताया – 'हम लोग कितना भारी दुख सहन कर रहे हैं ?' और भगवानजी को सांसारिक जीवन अपनाने की सलाह दी। इस पर भगवानजी ने दृढ़ और स्पष्ट उत्तर दिया – 'हमारी नाव समुद्र के मध्य है, या तो हम दोनों सुरक्षित पार उतरेंगे या डूब जायेंगे।'[2]

सात वर्ष निरन्तर साधनारत रहने के पश्चात् बॅबजी 'हाल' (आनन्दाधिक्य से आत्म विस्मृति) की अवस्था में पहुँच गए। हक़ीक़त को पहचान कर ब्रह्मज्ञान के आनन्द अमृत से शराबोर हुए। आत्मा और परमात्मा के मध्य खाई पट गई और द्वैत का अन्तर विलुप्त होकर अद्वैत के आनन्दलोक में समा गया। बॅबजी साक्षात् प्रभु स्वरूप में भगवान के सूक्ष्म आभास का प्रकटीकरण करने लगे। इस प्रकार मुक्तात्मा होकर अद्‌भुत ज्योति-पुंज के रूप में सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगे। कभी-कभी वे महीनों अन्न नहीं लेते। भगवानजी आत्मकेन्द्रित अवस्था में आत्मचिन्तन में लीन रहे। वे अल्पभाषी मस्तमौला लयावस्था में लीन साक्षात् ईश्वरस्वरूप, मोह-माया के बन्धन से मुक्त अपने और पराये की भावना से ऊपर उठकर सर्वकल्याण में जुट गए।

विश्व अध्यात्म गुरु के रूप में उनका मौनधारी अद्‌भुत व्यक्तित्व जन-मानस को अकस्मात् अपनी ओर आकर्षित कर देता। उन्होंने कभी धर्म-भाषणों अथवा धर्मोपदेशों का सहारा नहीं लिया। आदमी अपने आपको पहचान सके यह उसकी सबसे बड़ी समस्या है। मोह, माया, स्वार्थ, द्वेष,

वासना, अहंकार, क्रोध, लोभ - इन समस्त स्वर्ण-पाशों को तोड़ कर भगवानजी विशुद्ध तत्त्व की पहचान को दिव्यानुभूति मानते थे। पथ से भटके व्यक्ति पर क्रुद्ध होकर डांटते और सत् पथ का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करते थे। कई भक्त उनकी दृष्टि मात्र से संकट मुक्त हो गए हैं और कई भक्तो की पीड़ा हर्षोल्लास में बदल गई।

कश्मीर के सन्तों में केवल उन्हीं को उनके जीवनकाल में ही 'भगवान' कहकर सम्बोधित किया गया है और लोग उन्हें 'बॅब' अर्थात् पिता भी कहते हैं। उन्होंने चित्त की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लिया था और परमात्मा में तल्लीन रहा करते थे। अतः इसमें कोई असामान्य बात नहीं है कि उन्हें भगवान रूप में माना गया। भगवानजी अपने जीवनकाल में ही 'भगवान' के अवतार के रूप में प्रख्यात हो गए थे।

संस्कृत भाषा में एक शब्द है - 'भग'। इस शब्द के कई अर्थ हैं जिनमें एक अर्थ है - 'ईश्वर की छः विभूतियाँ', छः अलौकिक शक्तियाँ, षट्‌ ऐश्वर्य अथवा छः गुण। ये छः शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

१- ज्ञान (Knowledge)

२- शक्ति (Strength; Divine Power)

३- यश/ऐश्वर्य (Glory and Grandeur)

४- वीर्य (Potency)

५- श्री / सौभाग्य (Prosperity, Fortune, Splendour)

६- तेज (Brilliance)

'वत्' अथवा 'वद्' अथवा हिन्दी 'वान' प्रत्यय (suffix) के अर्थ में मूल शब्द के अन्त में जुड़ कर अर्थ में विशेषता उत्पन्न करता है।

जैसे - ज्ञान + वान - ज्ञानवान - ज्ञानवाला

'वान' का शाब्दिक अर्थ है -'वाला'। अतः 'भग+वान' का अर्थ है - अद्‌भुत छः ऐश्वर्यों से युक्त, षट्‌-ऐश्वर्य सम्पृक्त, छः विभूतियों से युक्त, छः अलौकिक शक्तियों से सुशोभित; छः विशिष्ट गुण वाला।

इन छः ऐश्वर्यों का समन्वित रूप हमें बॅबजी के व्यक्तित्व में देखने को मिलता है अतः इन्हें हम 'भगवान' कहते हैं। षट्‌ ऐश्वर्य सम्पृक्त होने के कारण आप 'भगवत्' या 'भगवद्' कहलाये।

भगवानजी इहलोक में ही 'जीवनमुक्त' थे जिसे शैवानुयायी 'शाम्भवी

अवस्था' कहते हैं और वेदान्तवादी 'ब्रह्मस्थिति' । भगवान गोपीनाथजी ने उस परमपद अवस्था को इसी लोक में प्राप्त किया था ।

भगवानजी अपने आसन पर विराजे चौबीसों घण्टे साधना में निमग्न रहते थे । भौतिक शरीर को त्याग करने से पूर्व कुछ वर्ष उन्होंने अपना आसन कभी भी नहीं छोड़ा । उनकी यह अवस्था 'आसन-ज़िय' के नाम से प्रसिद्ध है।'

'प्रकाश' के प्रति भगवानजी का विशेष आकर्षण रहा है। उनके सम्मुख धूनी जलती रहती थी और वे स्वयं उचित अवसर पर अपने हाथ से आहुतियाँ देते रहते । इतना ही नहीं धूप और अगरबती को भी ज्योति सहित जलते देखना चाहते थे।

भगवानजी संगीत के प्रति भी आकर्षित थे। प्रतिदिन उनके निवास पर भजन-कीर्तन का आयोजन रहता था। कर्णमधुर गायन अथवा शास्त्रीय संगीत पर आधारित कीर्तन सुनकर वे लयावस्था में आकर आत्मविभोर हो उठते। हर्षातिरेक के कारण उनकी आँखों में और मुख-कमल पर अद्भुत प्रभा खिल उठती थी।

यद्यपि भगवानजी कश्मीर घाटी से बाहर कभी नहीं गए तथापि देश के सुदूर कोनों से कश्मीर आने वाले अनेक साधु उनसे पूर्ण रूपेण परिचित थे और वे आज भी उनका स्मरण एक अद्वितीय योगसिद्ध, प्रबुद्ध आत्मज्ञानी तथा परम दयालु पुरुष के रूप में किया करते हैं। वे कहते हैं कि भारत में ऐसे सन्त जो चौबीसों घन्टे ब्रह्म स्वरूप में लींन रहते हों बहुत कम मिलते हैं। भगवानजी साधु सन्तों का सम्मान करते हुए श्रद्धापूर्वक उन्हें भिक्षा-दान देते थे। मई सन् १९५७ ई० में बनारस के एक आचार्य महोदय भगवानजी के दर्शनार्थ उनके पास पहुँचे । भगवानजी की दिव्याभा से प्रभावित होकर उन्होंने भगवानजी के साधना के स्तर को जानने की मन ही मन चेष्टा की ।भगवान जी ने आगन्तुक की मन की जिज्ञासा को भाँपा और श्रीमद्भगवद्गीता के १५वें अध्याय के निम्नलिखित छठे श्लोक का धीरे-धीरे उच्चारण कर उसकी जिज्ञासा का निवारण किया -

' न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः
यच्छ्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।'

{उस स्वयं प्रकाशमय परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है और न चन्द्रमा । अग्नि भी उसे प्रकाशित नहीं कर सकती है। जिस परमपद

को प्राप्त होकर मनुष्य आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है, वही मेरा परमधाम है। जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे लौट कर नहीं आते हैं वह परमधाम कहलाता है }

श्लोक सुन कर आचार्य जी गद्‌गद् हो उठे और भगवानजी का चरण स्पर्श कर कहने लगे कि 'मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया।'

भगवानजी ने कभी भी 'मैं' शब्द का प्रयोग नहीं किया अपितु 'हम' शब्द का ही प्रयोग करते थे। इससे 'मैं' के स्तर (इदंता) से अहं-शून्य अहंता तत्त्व के स्तर तक विकसित होने के मार्ग का स्पष्ट संकेत मिलता है।' यह सदाशिव-अवस्था का अव्यक्त ओमूकार रूप माना जाता है। भक्तजनों की जिज्ञासा शान्त करते हुए एक बार भगवानजी ने अत्यन्त सारगर्भित शब्दावली में मानव व्यक्तित्व की एक कमज़ोरी की ओर संकेत कर 'ओ३मूकार' शब्द की सार्थकता सिद्ध की है।' उन्होंने पास बैठे भक्तों से कहा -

'अहंकारस नमस्कार
सुई गव ओमूकार
तॅमी सी'त्य बनी साक्षात्कार ।'

हिन्दी अनुवाद - 'अहंकार को नमस्कार
वही है ओमूकार
उस से ही उपलब्ध होगा साक्षात्कार।'

सन् १९४७ ई० से ही बॅबजी ने अपनी दिव्य शक्तियों का प्रयोग देश की सीमाओं को आततायियों की कुदृष्टि से बचाने के लिए समय-समय पर किया । सन् १९४८ ई० के कबाइली आक्रमण, १९६२ के चीनी आक्रमण, १९६५ और १९७१ में पाकिस्तानी आक्रमणों और १९९९ कं करगिल युद्ध में उनका दिव्यरूप मार्गदर्शन करते हुए देखा गया है ।

भगवानजी की महासमाधि के डेढ़ मास पूर्व एक भक्त उनकी शारीरिक दशा को देख कर व्यथित हुआ और मन में सोचने लगा कि कदाचित बॅबजी अपना शरीर त्याग देंगे। भगवानजी ने तत्काल उसके मन में उठ रहे विचार को जान लिया और कहा - 'अमर छा मॅरान?' (क्या अमर मरता है) । अपने महानिर्वाण से एक मास पूर्व उन्होंने भक्तजनों से कहा कि 'अब धूनी की आवश्यकता नहीं है।' किन्तु उपस्थित भक्तों ने जब धूनी को प्रज्वलित

रखने के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने आपत्ति नहीं की । इस पृथ्वी पर अन्तिम रविवार (२६ मई १९६८) के दिन उन्होंने संगीतज्ञों को कार्यक्रम बन्द करने का निर्देश करते हुए कहा – 'अब हम और कोई संगीत नहीं सुनेंगे ।'

२८ मई सन् १९६८ तदनुसार ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीया के दिन प्रातः काल भगवानजी ने नित्य नियम से अपना मुख धोया, साफा बान्धा, तिलक लगाया और दर्शनाभिलाषी भक्तों से मिले । अपराह्न ३ बजे आए हुए तीन साधुओं को एक-एक रूपया दक्षणा स्वरूप प्रदान किया। जब समीप बैठे एक भक्त ने चाय बनाने के लिए आदेश मांगा तो भगवानजी ने 'अब हम कोई चाय नहीं लेंगे' कह कर मनाही की। उसके उपरान्त भगवानजी सायं साढ़े पांच बजे तक समाधि में रहे और बाद में उन्हें एक गिलास शरबत पिलाया गया । सायंकाल ५ बजकर ४५ मिनट पर भगवानजी की आँखों में एक विशिष्ट तेज प्रकट हुआ और कुछ ही क्षणों में उन्होने 'ओ३म् नमः शिवाय' मन्त्र का उच्चारण करते हुए ब्रह्मस्वरूप में स्थायी रूप से प्रवेश किया तथा श्रीमद्भगवतगीता के निम्नलिखित श्लोक की सार्थकता सिद्ध कर दी :-

' ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।'८/१३

{ जो पुरुष एक अक्षर ब्रह्मस्वरूप 'ओ३म्' का उच्चारण करता हुआ तथा मुझ में ध्यानमग्न होकर शरीर त्याग देता है वह निश्चित रूप से परमगति को प्राप्त होता है। अर्थात् मुझ में लय हो जाता है ।}

भगवानजी के महानिर्वाण दिवस के चार या पांच दिन पूर्व स्वामी नन्दलालजी साहिब (नन्द बॅब) भगवानजी के निवास के समीप गए और उनकी खिड़की की ओर मुँह करके विलाप करते हुए कहा – 'भगवानजी आप हमें क्यों छोड़ रहे हैं और महान उत्तरदायित्व का ऐसा बोझ मुझ पर क्यों डाल रहे हैं ?'

स्वामी नन्दलालजी साहिब उन दिनों जहां रहते थे वहाँ से वह मार्ग दिखाई देता था जो भगवानजी की अन्तिम यात्रा के लिये निश्चित किया गया था। भगवानजी के निर्वाण से एक दिन पूर्व स्वामीजी ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि पर्याप्त पुष्प मालाएँ तथा पुष्प-पंखुरियाँ पास में तैयार रखी जायें क्योंकि आगामी दिन ' शहंशाहे-दु-आलम' की सवारी यहाँ से गुज़रने वाली है। अगले दिन जब भगवानजी की महासमाधि यात्रा उस मार्ग से गुज़री तो नन्द बॅब ने मकान की खिड़की के समीप उनके आदेशानुसार बनाए गए

स्थान पर चढ़ कर भगवानजी के पार्थिव शरीर पर पुष्प अर्पण किये।

भौतिक काया छोड़ने के बाद भी भगवानजी अपने सत्‌चित्त स्वरूप में जीवित हैं और अमर होने के कारण सदा हमारे बीच विद्यमान रहेंगे । वे न केवल आध्यात्मिकता के उच्चतर क्षेत्र तक पहुँचने में अपितु सांसारिक लक्ष्यों की पूर्ति में मार्गदर्शन करते हैं। कई भक्तों, जिनमें कुछ विदेशी मूल के हैं, ने भाव समाधि की दशा में भगवानजी के अलौकिक रूप के दर्शन प्राप्त किए हैं और कइयों न स्वप्नावस्था में उन्हें अपनी दिव्यदृष्टि से अनुगृहीत करते हुए अनुभव किया है।

१९७० में भगवानजी के एक परम भक्त जो शारीरिक रूप से विक्षिप्त हुए थे, जब मुम्बई में भगवान श्रीसत्य साईं बाबा के दर्शनार्थ गए तो बाबा ने उनसे कहा – ' तुम्हारे गुरु ने तुम पर कृपा करने के लिए मुझे निर्देश किया है, और आगामी दो महीनों में वे तुम्हें दर्शन देंगे ।'" आशीर्वचनों के साथ बाबा द्वारा कहा गया यह कथन प्रामाणिक रूप में सत्य हो गया जब उस भक्त को भगवानजी के दर्शन प्राप्त हुए और वे रोग मुक्त हो गए ।

इह लीला समाप्ति के बाद बॅबजी के दिव्य सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने हेतु समर्पित संकल्प-बद्ध शिष्य समुदाय ने अपना सर्वस्व उनके चरण कमलों की स्मृति में न्यौछावर करते हुए श्रीनगर स्थित वैखुरीयार हब्बाकदल में 'भगवान गोपीनाथजी आश्रम' की स्थापना की । 'भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट' की स्थापना सन् १९७० में हुई । बॅब जी के प्रति युवा-वर्ग को प्रेरित करते हुए नानाविध कार्यक्रम आरम्भ किये गए जिनमें बच्चों के लिए वार्षिक और अर्द्धवार्षिक प्रतियोगिताएं, सहायता कार्य, अनाथ/निराश्रित लोगों की सहायता, भिन्न-भिन्न स्थानों पर चिकित्सा शिविरों का आयोजन, गरीब मेधावी योग्य छात्रों को शिक्षा हेतु सहायता, शारीरिक रूप से अक्षम/अपंग लोगों की सहायता, समय-समय पर धार्मिक प्रपवचनों का आयोजन एवं अन्य विशिष्ट कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। वर्ष में दो बार 'शुद्धविद्या' नामक सांस्कृतिक पत्रिका तथा त्रैमासिक सूचना-पत्र (News letter) का विधिवत प्रकाशन भी होता है। इस प्रकार के जनोपयोगी कार्यक्रमों के लिए भगवानजी का यह पावन सन्देश प्ररणास्रोत के रूप में जन-मानस को प्रेरित कर रहा है कि –

' नर सेवा ही नारायण सेवा है ।'



सन् १९९७-९८ ई० में 'भगवान गोपीनाथजी जन्म शताब्दी समारोह' श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक मनाया गया। भगवान गोपीनाथजी को सम्मानित करते हुए भारत सरकार ने उनके चित्र पर आधारित एक विशेष डाक टिकट ३ जुलाई सन् १९९८ ई० के दिन जारी की। यू० एस० ए० के न्यू जरसी शहर के महापौर श्री ब्रयूट शुंडल्यर ने २६ जुलाई सन्१९९७ (भगवानजी का जन्म-दिवस) के दिन 'जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ दिवस' घोषित किया। आयोजनों की इसी श्रृंखला में जम्मू में 'आशीष दिवस' मनाया गया जिसमें २८ महानुभावों को जिनमें दो विदेशी श्री फिलिप सिम्पफेन्डारफ़र (आस्ट्रेलिया निवासी भगवानजी के परम भक्त) तथा श्री ब्रयूट शुंडल्यर (न्यू जरसी के महापौर) के नाम उल्लेखनीय हैं। ५ जून सन् २००५ ई० के दिन 'भगवान गोपीनाथ सहस्रनाम' (पुस्तक) का लोकार्पण हुआ।

हर वर्ष भगवानजी के आश्रमों (श्रीनगर, जम्मू, दिल्ली) में पूरी श्रद्धा और सम्मान के साथ उनका जन्म दिन (आषढ़ शुक्लपक्ष द्वादशी) मानाया जाता है। इस दिन भगवानजी की पावन चरण पादुका की पूजा होती है और साधु-भण्डारा किया जाता है। इसी प्रकार हर वर्ष भगवानजी की महा-समाधि (ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीया) के दिन महायज्ञ रचाया जाता है। ये दोनों महापर्व भारत के अन्य प्रदेशों में स्थित सत्संग मंडलों द्वारा तथा भारत के बाहर कई देशों में श्रद्धालु भक्तजनों द्वारा श्रद्धापूर्वक मनाये जाते हैं।

इस प्रकार इस युग के एक श्रेष्ठतम सिद्ध ने ईशाधीन साधारण मर्त्य मनुष्य के समान जीवन आरम्भ कर, दैवत्व प्राप्त किया और अन्त में महा-प्रस्थान कर अनन्त/परमात्मा में विलीन हुए।

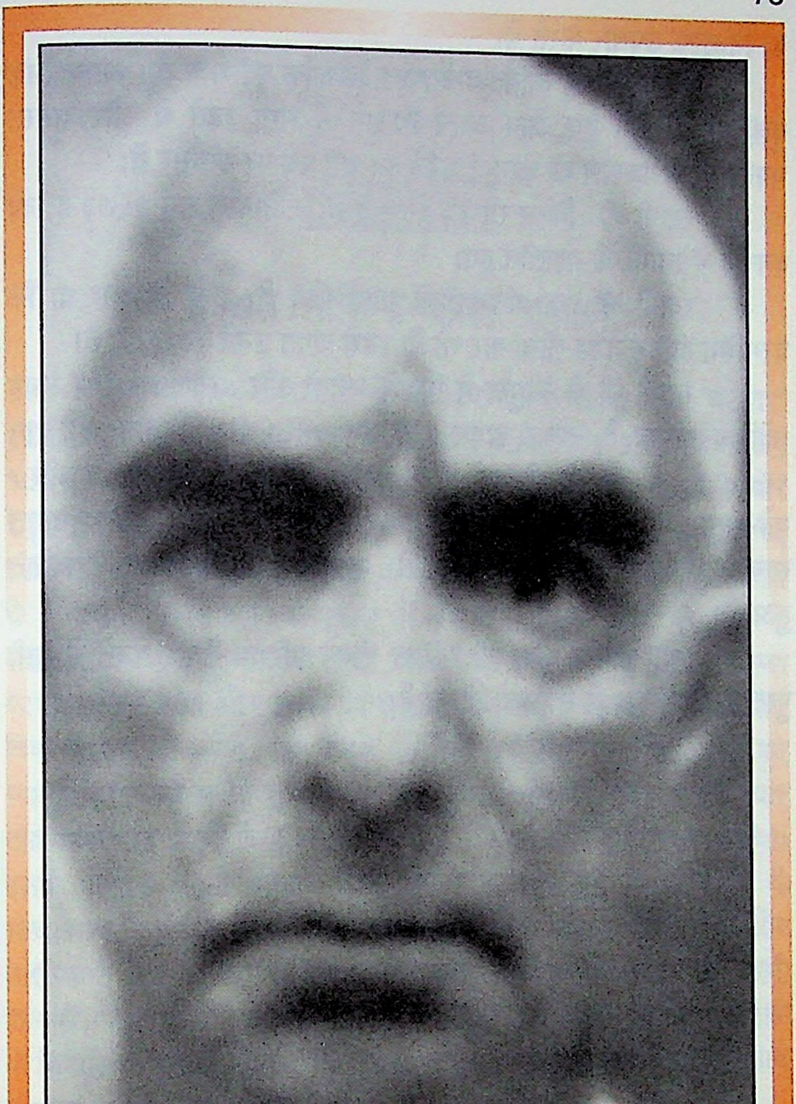
कश्मीर की सन्तपरम्परा



स्वामी गोविन्द कौल

स्वामी जी का जन्म फाल्गुण शुक्ल पक्ष त्रियोदशी संवत् १९४८ विक्रमी तदनुसार मार्च १८९२ ई. में च़वलगाम में हुआ। इनके पिताश्री का नाम पण्डित आफताब कौल और माताश्री का नाम वेशॅमाली था। वह तत्कालीन कृष्णभक्त कवि कृष्णजू राज़दान की चहेती बहन थी। कृष्ण जू ने अपनी बहन को वनपोह में ज़मीन दे दी और पण्डित आफताब कौल का परिवार वनपोह में आकर बस गया। बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। माता-पिता के देहान्त के बाद आपने अपने घर पर ही आश्रम स्थापित किया। आप सादा जीवन व्यतीत करते थे और आत्मिक शक्ति को उन्नत करके अपने सम्पर्क में आए लोगों की आवश्यकतानुसार सहायता करते थे। संकट में पड़े लोगों को दवा-दारु करना भी आपका नित्यकर्म था। आपने कई करामात भी किए जिससे आपकी उच्च आत्मिक शक्ति का भास होता है। आपने लीला पदों का भी सृजन किया है जिनको गा-गा कर भक्त-जनों को आनन्द प्राप्त होता है और वह अध्यात्म विद्या को भी ग्रहण करते हैं। इन पदों से आपके योग-बल और तपो-बल का ज्ञान होता है। आपके आश्रम की स्थापना महेन्द्र नगर जम्मू में की गई। यहां भगवद् स्मरण और आपके लीला पदों का गायन नित्य आपके भक्त-सेवक करते हैं।

स्वामी जी का विवाह कुलगाँव के निवासी आफ़ताब पण्डित की बहन मुगलानी देवी के साथ हुआ था। आरम्भ से ही स्वामी जी गहन चिन्तन में डूबे रहते थे। स्वामी जी के गुरु लाहौर निवासी महर्षि शिवभरत लाल वर्मन थे जिनसे मिलने के हेतु आपने लाहौर यात्रा की। गुरु कृपा से ही स्वामी जी ने दिव्य ज्योति प्राप्त की और महान सन्त की पदवी से सुशोभित हुए । स्वामी जी ब्रह्मज्ञानी होने के साथ-साथ हिकमत भी करते थे और जनसेवा के हेतु रोगियों



स्वामी गोविन्द कौल (१८९२ - १९७३ ई.)

का निःशुल्क उपचार करते थे।

स्वामी जी का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं भव्य था। आध्यात्मिक बुलंदियों को छूते हुए आप आत्म चिन्तन में मग्न रहते थे और समस्त भक्तजनों के कल्याण की कामना करते हुए सत् पथ पर अग्रसर थे।

स्वामी जी विनम्र स्वभाव के सन्त थे। ६ अगस्त सन् १६७३ ई. को वनपोह में स्वामी जी ब्रह्मलीन हुए।

स्वामी जी एक प्रतिभाशाली भक्त कवि थे। उन्हें विश्वास था कि परमशिव ही हर जगह लीला कर रहे हैं। सारा जगत उन्हीं का स्वरूप है।

स्वामी जी के श्रीमुख से निकले भजनों और लीलाओं का संग्रह 'गोविन्द अमृत' है। इसका प्रथम भाग सन् १६६५ तथा द्वितीय भाग सन् १६६८ ई. में 'स्वामी गोविन्द कौल' आश्रम रैणावारी श्रीनगर कश्मीर/महेन्द्रनगर, क्नाल रोड़ जम्मू, द्वारा प्रकाशित हुआ है अब 'गोविन्द अमृत सागर ' शीर्षक से आश्रम की ओर से एक और भजन-संग्रह प्रकाशित हुआ है।

श्री गोविन्द कौल का संक्षिप्त जीवन परिचय तैयार करने में इसी पुस्तक की भूमिका से सहायता ली गई है।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



पण्डित गोविन्द कौल जलाली

शैवाचार्य स्वामी रामजी के सर्वप्रिय शिष्यों में से एक 'बटुँयार' आलीकदल, श्रीनगर के पण्डित गोविन्द कौल जलाली थे। इनका जन्म सन् १८८६ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष पंचमी तदनुसार १६४२ वि० सं० को हुआ था और देहवासान सन् १६५७ आशाढ़ कृष्ण पक्ष सप्तमी तदनुसार वि० सं० २०१३ को हुआ। इनके पूर्वज सन्त स्वभाव के थे और धर्म परायणता के आदर्श थे । इसके फलस्वरूप बाल्यकाल में स्वामी गोविन्द कौल पर घर के सहज-सरल-धर्मनिष्ठ वातावरण का प्रभाव पड़ा। इन्हें अल्पायु में ही जगदम्बा का साक्षात्कार हुआ और उनकी प्रेरणा से उन्होंने अपनी साधना-यात्रा के लिए त्रिक्-आश्रम की शरण ली। इनके एकनिष्ठ धैर्य और लगन को देखते हुए महामाहेश्वराचार्य स्वामी राम ने स्वयं एक पुण्य दिवस पर दैविक प्रसाद देकर तीव्र शक्तिपात करके दिव्य रहस्यों का उन्हें अनुभव और साक्षात्कार कराया। इसके पश्चात् स्वामी गोविन्द कौल अपना गार्हस्थ्य धर्म पालन करने के साथ-साथ नित्य प्रति शैवाश्रम में आकर पारम्परिक ढंग से शैव शास्त्रों और तत्सम्बन्धी शैवागमों का अध्ययन करने लगे। स्वामी गोविन्द कौल की पत्नी जानकी/पोशकुज एक साध्वी महिला थी। उनके माता पिता पहलगाँव इलाके के निवासे थे। स्वामी गोविन्द कौल के तीन पुत्र - महीश्वर नाथ, द्वारिका नाथ तथा राधाकृष्ण और दो पुंत्रियाँ थी।

मूलतः गोविन्द कौल जी रैणावारी के 'बगड़जी' मुहल्ले में रहने वाले श्रीकृष्ण जलाली के तीन पुत्रों में से एक थे। स्वभावतः शान्ति प्रिय थे, अतः वंशानुगत ज़मीन सम्बन्धी झगड़े के कारण उन्होंने पैतृक आवास छोड़ा और आलीकदल के ऋषिपीर मुहल्ले में नया आवास खरीद कर रहने लगे।



पण्डित गोविन्द कौल जलाली (१८८६ - १९५७ ई.)

प्रारम्भिक शिक्षा ' बुद्धि गिरि' (बु'र्द्ध गे'र) आलीकदल, के कैलाश जू आखून से प्राप्त की। समय आने पर फतेहकदल स्थित 'श्री राम शैवाश्रम' में आना-जाना आरम्भ किया, उनके बड़े भाई गाश कौल जलाली स्वामी जी के परम भक्त थे और शिष्य थे। गाशकौल जी ने पहले से स्वामी राम जी के अन्तरतम शिष्य मण्डली में उनके आगमन की राह सुव्यवस्थित कर दी थी, इस कारण उन्हें स्वामी जी के अन्य शिष्य-भाइयों की भाँति वहाँ तक पहुँचने के लिए अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। फराशखान मे कर्मचारी होने के कारण इन्हें 'फराश' भी कहते थे।

शैव शास्त्रों के अध्ययन हेतु स्वामी जी नियमानुसार आश्रम आते रहे पर इन शास्त्रों को समझने परखने के लिए उनकी आयु अभी अल्प ही थी, फलतः थोड़ा निराश हुए पर प्रयास त्यागा नहीं। इन्हीं दिनों उन्होनें स्वामी रामजी से यह विनम्र विनय किया कि वे इन शास्त्रों का सार समझने का उनको वरदान दें। मन्दस्मित होकर स्वामी जी ने उन्हें आगामी चन्द्र ग्रहण के दिन रात के समय आने का आदेश दिया।

स्वामी रामजी ने अपना निर्वाण समय समीप जानकर गोविन्द जी से उनकी इच्छा के विषय में पूछा। गोविन्द जी ने उत्तर में ज्ञान प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। यह ज्ञान शैव-दर्शन से सम्बन्धित था जो आचार्य जी के अन्य दो शिष्यों - महताब काक और विद्याधर जी - की इच्छाओं के प्रतिकूल था। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि गोविन्दकौल जी शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन बिना किसी पूर्वाभ्यास के कर सकते थे।

आदेशानुसार गोविन्द कौल जी पूर्व निश्चित दिन उचित समय पर आए, स्वामी जी उस समय बिल्कुल अकेले थे। उन्होंने गोविन्द कौल जी को एक चपाती बनाने को कहा, आदेश का पालन कर एक थाली में स्वामी जी को यह रोटी (चपाती) दी, स्वामी जी ने इस पर एक मन्त्र लिखा और गोविन्द कौल को खाने के लिए कहा। बिना आनाकानी के गोविन्द जी ने रोटी खाई, इतना करना था कि ततूक्षण शिष्य (गोविन्द जी) शैव-शास्त्र पारंगत हो गए। बाद में उचित जिज्ञासुओं को वे ज्ञान-दान देते रहे। स्वामी जी के समाधिस्थ होने के उपरान्त गोविन्द कौल जी को ही आश्रम की बागड़ोर सँभालने और अध्यापन कार्य करने के लिए चुना गया, यह कार्यभार उन्होंने सन् १९५७ ई. तक संभाला।

कश्मीर के सन्त महात्माओं से यहाँ के जन-साधारण को सदा चमत्कारों की अपेक्षा रहती है। गोविन्द जी इस क्षेत्र में कैसे अपवाद हो सकते थे, अतः कुछेक का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

१. गोविन्दकौल की दूसरी पुत्री सुश्री दुर्गा जी को ससुराल में सुखद वातावरण नहीं मिला था। स्वामी जी के शिष्य अपने गुरुवर पर बराबर दुर्गा जी के कष्ट से मुक्ति का साधन करने की विनती करते रहे। स्वामी जी कुछ नर्म पड़े और एक 'तावीज़' बनाकर श्री काशीनाथ जी के संग अपनी बेटी के घर चले गए। वह 'तावीज़' बेटी को यह निर्देश देते हुए दिया कि इसकी सुरक्षा के प्रति पूर्ण ध्यान दें। तावीज़ का देना था कि तुरन्त ससुराल वालों के मन और व्यवहार में बदलाव आया। बिगड़ी बात बन गई। गृहस्थी बस गई। पर होनी को कौन रोक सका। बसी गृहस्थी तब उजड़ गई जब पति के साथ अनन्तनाग से वापस आते समय उसने तावीज़ को कहीं खो दिया। बेटी के कष्ट फिर सिर उठाने लगे। शिष्यों द्वारा पुनः विनती करने पर भी स्वामी जी अब की बार कुछ करने के लिए प्रस्तुत न हुए। अन्ततः पुत्री की कष्टमय मृत्यु हुई।

२. एक वर्ष ग्रीष्म ऋतु में स्वामी जी के शिष्यों ने उन्हें क्षीरभवानी यात्रा के लिए विनती की। स्वामी जी ने विनती स्वीकारी। काशीनाथ जी विनीतों में से एक थे। एक शनिवार को गुरु और शिष्य वर्ग क्षीरभवानी गए। रविवार को काशीनाथ जी श्रीनगर वापस आने के लिए अनुनय विनय करने लगे क्योंकि वह श्रीनगर नगर- पालिका में 'मीटिंग क्लार्क' थे, जिसकी बैठक सोमवार के लिए तय थी। बैठक सम्बन्धी सारे दस्तावेज़ काशीनाथ के पास थे अतः उनका वापस जाना अनिवार्य था, पर गोविन्द कौल जी किसी भी कीमत पर उनकी वापसी की अनुमति देने को तैयार न थे। गुरु सहित सारा शिष्य वर्ग मंगलवार के दिन वापस श्रीनगर लौट आया। मंगलवार को धड़कते हृदय और अमंगल की आशंका से काशीनाथ दफ्तर पहुँचे। सबसे पहले चपरासी से मिले और बैठक के बारे में पूछने लगे। चपरासी ने ऐसे प्रश्न पूछने पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि जब आप स्वयं बैठक में उपस्थित थे तो ऐसे प्रश्नों का क्या अर्थ है ? अचम्भित होकर काशीनाथ ने हस्ताक्षर करने के लिए रजिस्टर खोली तो पाया कि सोमवार के उनके हस्ताक्षर रजिस्टर पर हैं - उनकी अपनी ही लिखावट में। अलमारी खोली और 'रिकार्ड फाईल' में बैठक की तमाम कारवाई (अपनी लिखावट में) दर्ज हुई देखकर स्तम्भित रहे।

स्वामी जी ने ऐसे ही चमत्कार किये हैं जिनमें उनके पास आए हुए निःसन्तान याचकों को सन्तति वरदान आदि के उदाहरण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

डॉ० त्रिलोकीनाथ गँजू भूतपूर्व रीडर, हिन्दी - विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय,ने स्वामी जी की आध्यात्मिक ऊँचाइयों से सम्बन्धित 'गुरुस्तुति' लिखी है जो 'शिवस्तोत्र संग्रह' का एक भाग है।

स्वामी जी का दैनिक जीवन एक साधारण गृहस्थ का था पर गुप्त रूप से वे सिद्ध-योगी थे। अष्ट सिद्धियों के स्वामी होते हुए कभी भी उनका प्रयोग स्वहित के लिए नही किया। अपने प्रवचनों में इस बात पर सदा बल देते थे कि आत्ममंथन के हेतु आत्मनिग्रह नितान्तावश्यक हैं। स्वामी जी के देहावसान के बाद महात्मा ताराचन्द जी ने आश्रम का कार्यभार संभाला।

स्वामी जी के शिष्यों में श्री प्रेमनाथ नेहरू, श्री अमरनाथ ओगरा, श्री रामजी जलाली, श्री बदरीनाथ नाज़िर, श्री मुकुन्द लाल, श्री नाथ जी द्राल, महात्मा काशीनाथ, डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू, श्री बंसीलाल रैणा (वाङ्गन्यू) आदि चर्चित रहे हैं। श्री नाथजी द्राल, श्री टी० एल० सुल्तान एवं श्री बंसीलाल रैणा वाङ्गन्यू ने स्वामी जी के विषय में लिखित सामग्री भेजी जिसके आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार किया गया है।

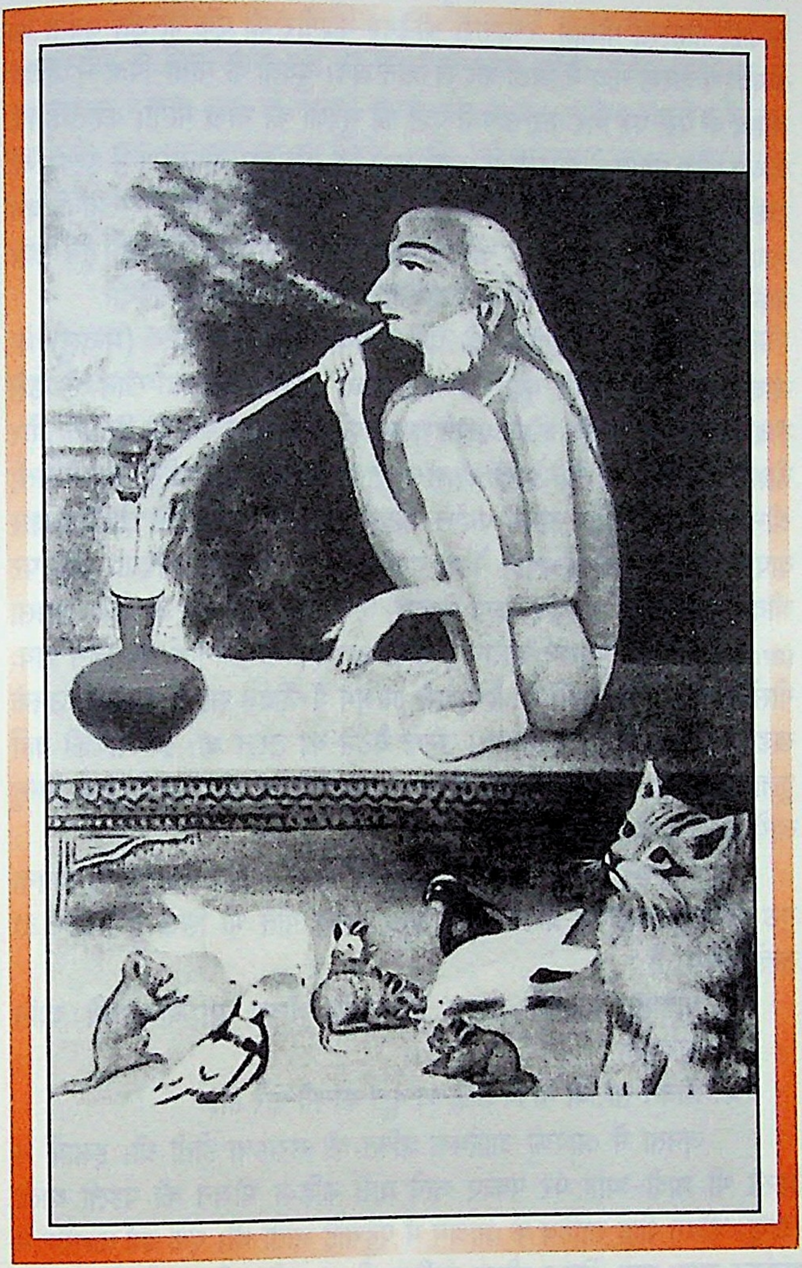
कश्मीर की सन्तपरम्परा



स्वामी जीवन शाह साहब

स्वामी जीवन शाह साहिब १८वीं सदी ई० में विद्यमान थे। आपके पिताजी का नाम पण्डित राजकाक था और मोतियार - रैणावारी, श्रीनगर कश्मीर के रहने वाले थे। छुटपन में ही पिता का देहान्त हुआ था । माता के पास जीवन निर्वाह का कोई साधन न था। वह चर्खा कात कर जीवन निर्वाह करती थी और बच्चे को पालती रही। जब जीवन साहिब ग्यारह वर्ष के हुए तो एक नाँगा साधु इनको अपने साथ ले गया । माता ने वचन लिया कि उसके जीवन के अन्तिम क्षणों में जीवन साहब उसके पास लौट आयेंगे।

जीवन साहिब 'गोसोन्य गोण्ड' में बीस-पच्चीस वर्ष रहे। वस्तुतः यहीं तपस्यारत रहकर इन्हें जीवन सिद्धि प्राप्त हुई । इसके पश्चात् एक दिन अकस्मात् गोसोन्य गोण्ड को छोड़कर लोधुव गाँव के निकट वाली पहाड़ी पर एक समतल भूमि पर अपना निवास बनाया। यह पहाड़ी 'गोसोन्य नार' के नाम से प्रसिद्ध हुई। अपनी माता के जीवन के अन्तिम दिनों में अपने दिये हुए वचनानुसार जीवन साहब गोसान्य नार से अपने घर रैणावारी चले आये। माता बहुत वृद्ध तथा आँखों से अन्धी हो गई थीं। जीवन साहब ने अन्धी आँखों पर अपना हाथ फेर कर उन्हें फिर ज्योति प्रदान की और माता की सेवा शुश्रूषा में लग गये। बचपन से ईश्वर-भक्ति में लीन रहते थ और अपने घर पर ही तपस्या-रत रहे। लकड़ी के तख़्त पर साठ साल तक आसन जमा कर बैठते थे । हुक्का पीने का शौक था । सारे इलाके में इनकी आध्यात्मिक शक्ति की चर्चा होती रही। जीवन शाह साहिब एक महान सिद्धपुरुष थे जिन्होंने अनेक चमत्कारों से उस समय के शासकों को भी प्रभावित किया। कश्मीर पर सन् १७८३ में पठान गवर्नर सरदार आज़ाद खान के अत्याचार और आतंक का निशाना कश्मीरी पण्डित थे। इसी समय पठान सरदार के कुछ



स्वामी जीवन शाह साहब

सिपाही मोहल्ला मीशाह, रैणावारी श्रीनगर-कश्मीर की एक पण्डित युवती का अपहरण करके नाव में बिठा कर ले जाने लगे। युवती के माता-पिता ने जीवन साहब के पैरों पर गिर कर अपनी पुत्री की सुरक्षा की भीख माँगी। कहते हैं कि जीवन शाह साहब ने फ़ारसी में उनसे कहा कि यदि इस अपहरण में ईश्वर की इच्छा नहीं है तो जीवन शाह के हुक्म से यह किश्ती डूब जाए और लड़की बच जाए। ठीक वैसा ही हुआ - पण्डित लड़की बच गई और सिपाही डूब गए। गवर्नर ने जीवन शाह साहिब को ' पीर-ए-कामिल' का खिताब दिया।

जीवन शाह साहिब के प्रमुख भक्त दिलाराम कौल (मन्दलू) थे, जीवन शाह की महती कृपा के फलस्वरूप गवर्नर आज़ाद खान ने उसे दीवान-ए-खास में एक ऊँची पदवी प्रदान की। दिलाराम फ़ारसी लिखने और बोलने में सिद्धहस्त थे। उनक वंशज बहुत समय तक क्रालखोड, हब्बाकदल, श्रीनगर में रहते थे । समय पर्यन्त जीवन साहब रैणावारी से गोसोन्य-नार वापस चले गए। गोसोन्यनार में ही उन्होंने अपना देह त्याग दिया। वहीं पर जीवन साहिब का नागफ़न वाला चिमटा, कमण्डल, पीले रंग का शंख, आसा (arm rest) और मृगचर्म आसन है इन्हीं अवशेषों के दर्शनार्थ भक्तजन प्रायः गोसोन्य नार जाया करते थे। रैणावारी आश्रम में जीवन साहब का चित्र उनके खडाऊ और एक मृगशाला तथा उनके बैठने का तख़्त था। इन सबकी वहाँ पूजा होती थी। ये सभी वस्तुएँ पण्डित श्यामलाल जी पीर अपने साथ जम्मू लाये हैं, ऐसा कहा जाता है।

रैणावारी के श्री लक्ष्मण जू डुल्लू की पत्नी ने जीवन साहब को अपना गुरु मानकर श्रद्धावश प्रेरित होकर कुछ भक्ति गीत भी लिखे हैं जिनमें दा उल्लेखनीय हैं :

१."मूतियारॖ अवतार दोरुथ यथ जाये जीवन साऽबो लग्यो चानि बारगाहे।"

२."जीवन साऽबो मो दि डालै ब्व कूत कालयै पारै हो।"

जनता में आपकी आत्मिक शक्ति की सराहना होती थी। इलाके में किसी भी शादी-ब्याह पर पकाए जाने वाले बढ़िया भोजन की पहली थाली (टाकॖ) जीवन शाह साहिब के आश्रम में पहुँचाई जाती थी। एक वर्ष कश्मीर में भयंकर सूखा पड़ा, किन्तु जीवन साहिब की कृपा से बारिश हुई और जनता को सूखे से मुक्ति मिली।

जब जीवन शाह साहिब का देहावसान हुआ तो भक्त लोग, दाहसंस्कार के लिए उनक शव को लेकर शमशान पहुँचे। वहाँ अरथी पर से जब कफन हटाया गया तो अरथी खाली थी। जीवन साहिब सशरीर वैकुण्ठ पधारे थे। एक मान्यता यह भी है कि उनके आदेशानुसार उनका शरीर झरने के किनारे पर समाधिस्थ है जिसके ऊपर केवल मिट्टी डाली गई है और बीच में एक शिव लिङ्ग मिट्टी के ऊपर रखा गया है।

जीवन साहिब आजीवन दिगम्बर रहे। वे कौपीन के सिवा कोई वस्त्र धारण नही करते थे। इस कारण कश्मीर निवासी इनको 'गों'सॉन्य' यानि गोसाईं कहते थे।

श्री बी० एन० तिक्कू ने दिसम्बर २००२ में जीवन साहब के विषय में जो जीवनचरित लिख कर भेजा है प्रस्तुत परिचय पत्र को लिखने में उससे सहायता ली गई है।

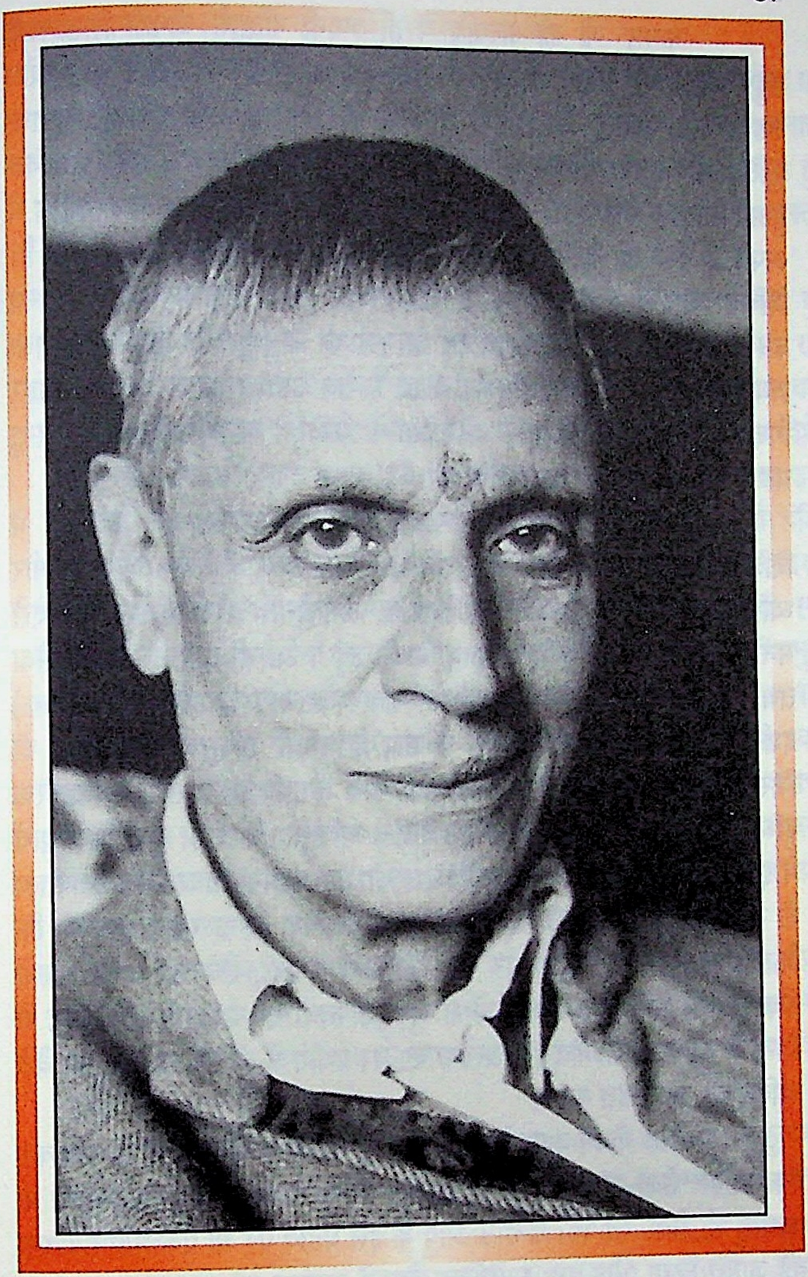


पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल'

एक बार कश्मीर मण्डल के सन्त मनीषी तथा अनुभव सिद्ध महात्मा ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज से किसी ने प्रश्न किया - "स्वामी जी! आजकल के संसार में जब जनमन भौतिकता तथा वैज्ञानिक चमत्कारों से प्रभावित हुआ स्वार्थ, लोभ तथा पतनात्मक कार्यों में व्यस्त दीख पड़ता है तो क्या सिद्ध सन्तों और मनीषियों का विचरना सम्भव हो सकता है "

स्वामी जी ने झट उत्तर मं कहा - "हां, निरपेक्ष सिद्ध महात्मा, सर्वगुणसम्पन्न मनीषी और पारमार्थिक विचारों से सम्पन्न व्यक्ति जब तक मौजूद न हों, तब तक संसार की गति में सन्तुलन रहना असम्भव है। इतनी बात अवश्य है कि ऐसे व्यक्ति दुर्गुण-दुराचार से दूर रहकर ही अपने सौम्य-स्वरूप पर आंच आए बिना, पीडित जनता को उबारने हेतु निःस्वार्थ भाव से कार्यरत रहते हैं।" ऐसी विभूतियाँ विलक्षण होती हैं और उनकी संगति परमेश्वर के अपार अनुग्रह से ही प्राप्त होती है।

एक ऐसी ही सर्वतोमुखी प्रतिभा की विभूति पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल' का जन्म १६ जून १६१४ (ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वादशी) को हिमाच्छादित कश्मीर की सुरम्य घाटी के श्रीनगर शहर में हुआ था। इनके पितामह पंडित शिव कौल एक आत्मज्ञ, निष्ठावान तथा सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष थे जिन्होंने उन्नतीस वर्ष की अल्पायु तक ही व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ अध्यात्म की गूढानुभूतियाँ अनुभव कर एक महान तपस्वी का रूप धारण किया था। अपने समय के विज्ञ-जनों ने इन्हें 'वेदान्त मठ' की उपाधि से अलंकृत किया था। इसके साथ-साथ वे एक सिद्धहस्त मूर्तिकार, कलाकार तथा संस्कृत, कश्मीरी तथा फारसी के विद्वान भी थे।



पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल' (१६१४ - १६६७ ई.)

'कमल' जी को अल्पायु में ही अपनी माताजी श्रीमती सिद्धलक्ष्मी तदुपरान्त अपने पिता श्री जगन्नाथ कौल के असमय स्वर्गारोहण का वियोग सहना पड़ा। परन्तु अपने शुभ संस्कारों द्वारा उनका अपना अवरुद्ध तथा कुंठित जीवन रहस्यवाद तथा छायावाद दोनों से विशेष रूप से बेहद प्रभावित हुआ। स्वयं उन्होंने कहा - 'सीमित स्वत्व से उठकर जब भावुक मन असीम में अपने आपको खो बैठता है तब साधारण जीवन की झांकी ही बदल जाती है। विचित्र भावनाओं से अनुभावित होकर वह (साधारण) मानव विश्व-मानव बन जाता है, जो किसी असाधारण आनन्द की अनुभूति है। हृदय का प्याला जब इस अनुपम आनन्द से भर जाता है तब अवश्य इससे छलकन बाहर गिरने लगती है। इसी छलकन को लोक में 'कविता' का नाम मिला है। परन्तु यह मेरे निकट सुमधुर आनन्द के क्षण हैं।'

अध्ययन, अध्यापन, सम्पादन, अनुवाद तथा लेखन के क्षेत्रों में विशिष्ट कीर्तिमान के संस्थापक, लम्बे कद वाले उच्च व्यक्तित्व लिए, गम्भीर ध्वनि तथा मधुर वक्तव्य देने वाले पंडित जानकीनाथ कौल 'कमल' एक ऐसे मनीषी थे जिनकी कश्मीरी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेज़ी साहित्य के प्रति सेवा तथा समर्पण चिरस्मरणीय है। एकात्म शंकर वेदान्त एवं कश्मीर शैव (त्रिक) दर्शन के विशेषज्ञ एवं व्याख्याता के रूप मे उनपर सचमुच भगवद्कृपा थी जिससे बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों में वे एक विचारक तथा व्यावहारिक दृष्टि से एक बुद्धि कौशल तथा एक कुशल व्यक्तित्व सिद्ध हो चुके थे। यथार्थ में इस महान तपस्वी की साधना विशिष्ट थी। इस महान आध्यात्मिक व्यक्तित्व के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क में आकर आश्चर्यचकित रहना स्वाभाविक था कि किस प्रकार उनकी जिह्वा पर वेद, उपनिषद् वेदान्त, शैव एवं अन्य शास्त्रों तथा विभिन्न साहित्यिक रचनाओं से जुड़ी उक्तियाँ एवं उद्धरण सदा रहते थे जिन्हें वे व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक पग पर प्रयोग में लाते थे और समक्ष बैठे व्यक्ति को आनन्दित करते।

समस्त यौवन काल में गृहस्थ एवं सामाजिक विड़म्बनाओं से ऊब कर एक व्यक्ति सेवा-निवृत्त होना चाहता है। परन्तु 'कमल' जी सेवा-निवृत्ति के पश्चात् भी सेवा-रत रहे। उन्होंने आयु के इस पड़ाव पर भी एक नवीन चेतना को जागृत किया और पुनः साहित्यिक क्षेत्र में कार्यरत रहे। उनका सृजन धर्म, दर्शन और साहित्य के गूढ तत्त्वों से जुड़ा हुआ था जो प्रायः शोधपरक था।

अध्यात्म तथा अनुभूति को उन्होंने सर्वोपरि माना।

कश्मीरी, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में उन्होंने मौलिक, अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थों की सराहनीय प्रस्तुति द्वारा अपनी एक अलग पहचान बनाई। कश्मीर से विस्थापित होकर भी 'कमल' जी दुःस्थिति से मुकाबला करते हुए वृद्धावस्था में भी साहित्य-सेवा तथा शोध-कार्य में निरन्तर व्यस्त रहे। वास्तव में ऐसे महापुरुष देश का गौरव होते हैं।

युवावस्था में ही 'कमल' जी युग पुरुष स्वामी विवेकानन्द तथा युग सन्त स्वामी रामतीर्थ की महान तथा सर्वोत्तम कृतियों से विशेष प्रभावित रहे। तत्पश्चात् जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त-दर्शन तथा जगद्वन्द्य अभिनवगुप्तपादाचार्य के अद्वैत शैव-दर्शन से प्रभावित होकर उन्हें एक विशेष दिशा का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इस पारमार्थिक पथ पर उन्हें महान तथा उच्च्च गुरुजनों - वेदान्त सम्राट स्वामी नीलकण्ठानन्द सरस्वती (पूर्वाश्रमी पंडित नीलकण्ठ ज्योतिषी) तथा अद्वैत शैव मार्तण्ड श्री स्वामी लक्ष्मण जी महाराज जैसी आध्यात्मिक विभूतियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ । एक गृहस्थी सन्त वेदान्तदर्शी व शैव-दर्शन पारखी पण्डित सतराम जी का भी अपार अनुग्रह प्राप्त हुआ। आध्यात्मिक जगत की विख्यात विभूतियाँ श्रीरामकृष्ण परमहंस तथा रमण महर्षि के अध्यात्म दर्शन से प्रफुल्लित हुए। कान्हागढ़ के स्वामी रामदास तथा ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्द सरस्वती से आध्यात्मिक पत्राचार एक नियम बना था। धूपवन (कश्मीर) स्थित स्वामी राम के साथ आपस में कवितामय पत्राचार द्वारा पारमार्थिक संवाद होता रहता था। इस प्रकार उनके समक्ष सन्त-समागम का अपार आनन्द उमड़ता दिखाई देता था।

इनकी कृतियां, कविताएं, लेख एवं शोध-परक लेख संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी और कश्मीरी एवं उर्दू भाषाओं में असंख्य हैं जिनमें से अधिकांश सामग्री कश्मीर में आतंकवाद के कारण नष्ट हुईं । इनके द्वारा रचित विशेष ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :-

१. विक्षिप्त वीणा २. श्रद्धा पोश (Flower of faith) ३. मुकुन्दमाला एवं अन्य स्तोत्र-रत्न ४. शिव सूत्र विमर्श ५. अमरेश्वर महात्म्यम् ६. वेदान्त डिण्डिमह ७. पज़र पऽज़रावुन ८. The Awakening of Supreme Consciousness ९. भवानी नाम सहस्त्रस्तुति (अंग्रज़ी अनुवाद) १०. इन्द्राक्षी स्तोत्रम् (अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद) ११. पंचस्तवी (पांच स्तवों पर

आधारित कुण्डलिनी योग से सम्बन्धित शैव-शास्त्र की एक अमूल्य कृति) का अंग्रज़ी अनुवाद।

भारत भर के मनीषियों, विद्वानों तथा भगवद् भक्तों ने इन कृतियों को सराहा तथा इन पर सारगर्भित वक्तव्य भी लिखे हैं। देश तथा विदेश के आध्यात्मिक तथा उच्च कोटि के विद्वानों ने भी इन ग्रन्थों को सराहा तथा भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कमल जी की ये सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ एक अनमोल देन है जिनको सुरक्षित रखना हमारा परम कर्तव्य है।

घाटी में कई बार आपको सरस्वती पुत्र के रूप में सम्मानित किया गया । सन् १९९२ ई. में उत्तरप्रदेश सरकार हिन्दी संस्थान द्वारा आप सौहार्द्र सम्मान से मानित हुए । जून १९९७ में राष्ट्रपति भवन में भारत के राष्ट्रपति द्वारा संस्कृत वाङ्मय में प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु आप विशेष सम्मान से अलंकृत हुए । जम्मू लौट कर १५ अक्तूबर १९९७ को आपने नश्वर शरीर त्याग कर महाप्रयाण करके इस उक्ति को चरितार्थ किया –

" सन्त हृदय नवनीत समाना
कहा कविन पै कहत न जाना ।
निज परताप द्रवै सब पीडा
पर दुःख हरै सुसन्त पुनीता ।"

कश्मीर की सन्त परम्परा



श्री जानकीनाथ जी धर
{ पापाजी महाराज }

श्रीमान पापाजी महाराज का जन्म सफाकदल श्रीनगर में २८ अप्रैल सन् १९०२ ई. में हुआ। इनके पूज्य पिताजी का नाम श्री कंठजू धर एवं माताश्री का नाम कुदमाऽली था। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् पापाजी राजकीय कर्मचारी के रूप में विभिन्न स्थानों पर सेवारत रहे और इन्हीं दिनों में वे परमार्थ ज्ञान के प्रति आकृष्ट हुए। बहुत समय तक आप जम्मू में भी सेवारत रहे और यही पर कठोर साधना के बाद उन्हें दिव्य साक्षात्कार प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् वे आजीवन एक सिद्ध महापुरुष के रूप में अपना उत्तरदायित्व निबाहते रहे।

श्रीमान पापा जी का सम्बन्ध अलखेश्वरी रूपभवानी के वंश के साथ था। इन्हीं की इच्छा के फलस्वरूप उत्कृष्ट पारिजात आश्रम की स्थापना हुई। आजकल यह आश्रम ढोक वज़ीरा (नगरोटा) गाँव में स्थित है। पापा जी गृहस्थी सन्त थे। इनके गृहस्थ जीवन मे एक पुत्र और दो बेटियों ने जन्म लिया। अत्यन्त सरल स्वभाव के थे और जीवन को उसके स्वाभाविक रूप में जीने पर विश्वास रखते थे।

अपने साधनात्मक जीवन में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् वे एक गृहस्थी सन्त के रूप में पर्याप्त चर्चित रहे। ध्यानमग्न रहकर वे सदा आत्मचिन्तन में लीन रहते थे। भक्त जनों की शंकाओं का समाधान करने के हेतु वे सदा तत्पर रहते थे और उन्हें आत्म परिष्कार के पथ पर पूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा सदा देते रहे।

पापा जी महाराज का देहावसान ३० जुलाई सन् १९९० ई. में हुआ। हर वर्ष श्रीमान जी का जन्म दिन एवं निर्वाण दिवस पूरी श्रद्धा के साथ 'उत्कृष्ट पारिजात आश्रम' में मनाया जाता है।



श्री जानकीनाथ धर 'पापाजी' (१६०२ - १६६० ई.)



मास्टर ज़िन्द कौल
{ एक कर्मयोगी महापुरुष }

लल्लेश्वरी के समय (१४वीं शताब्दी) से वर्तमान समय तक अनेक प्रतिभा सम्पन्न सन्त कवियों ने भक्ति काव्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । मास्टर जी इसी परम्परा के अन्तिम उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं ।

पण्डित ज़िन्द कौल का जन्म १७ जुलाई सन् १८८४ ई. में एक निम्न-मध्यवर्गीय कश्मीरी पण्डित परिवार में हुआ था। इनके पिता स्वर्गीय लक्ष्मण जू कौल कस्बा शिहिलटेंग, हब्बाकदल-श्रीनगर में रहते थे। माँ का नाम था - पद्मावती। सन् १६०२ ई. में मास्टर जी ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और पुराने फ़तेहकदल के निकट गैर-सरकारी शिक्षा संस्था (हिन्दू स्कूल) में अध्यापक नियुक्त हुए । कालान्तर में राज्य के शिक्षा विभाग में उनकी नियुक्ति अध्यापक के रूप में हुई। सन् १६१५ ई. में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। सन् १६४० में सरकारी नौकरी से सेवा निवृत्त हुए।

पण्डित जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे। विशेषकर फ़ारसी और अंग्रेज़ी पर उन्हें असाधारण अधिकार प्राप्त था। इतिहास उनका प्रिय विषय रहा है। कश्मीर के प्राचीन इतिहास पर उनकी नज़र बहुत गहरी थी। मास्टर जी गृहस्थ थे। पत्नी का नाम था - स्यदलखिम। उनके दो पुत्र थे - जानकी नाथ और जगन्नाथ । ज्येष्ठ पुत्र जानकी नाथ युवावस्था में स्वर्ग सिधारे- यह मास्टर जी के जीवन की सब से बड़ी दुर्घटना है। मास्टर जी को अपने आप पर ज़बरदस्त नियन्त्रण था। वे शाकाहारी थे। कभी क्रोध नहीं करते और कभी बेकार नहीं बैठते। वे एक कर्मयोगी सन्त थे।



मास्टर जिन्द कौल (१८८४ - १९६६ ई.)

मास्टर जी की बहुचर्चित कश्मीरी कविताओं का संग्रह 'सुमरन' शीर्षक से अंग्रेज़ी अनुवाद सहित सन् १९५५ ई. में फ़ारसी लिपि में प्रकाशित हुआ। सन् १९५६ ई. में उन्हें साहित्य अकादमी के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मास्टर जी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत पहले कश्मीरी कवि हैं। मास्टर जी का स्वर्गवास 4 अप्रैल सन् १९६६ ई. को जम्मू में हुआ।

मास्टर जी ने सतत चिन्तन के आधार पर परम सत्ता को पहचानने तथा अनुभव करने का प्रयास किया। निर्गुण एवं सगुण, ज्ञान एवं भक्ति तथा लौकिक एवं अलौकिक का परस्पर समन्वय करके मास्टर जी अज्ञात सत्ता के रहस्य को समझने का प्रयास करते रहे। वर्षों का चिन्तन, मनन एवं गहन अध्ययन उनके भक्तिगीतों को वैचारिक गरिमा प्रदान करता है।

मास्टर जी सगुण से अधिक निर्गुण के प्रति आकृष्ट थे यहीं कारण है कि सूफियों के प्रेम मार्ग से प्रभावित रहे हैं।

मास्टर जी भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट थे। भारत का महिमामय अतीत ही उनका प्रेरणा स्रोत रहा है। गौतम बुद्ध का अहिंसात्मक दृष्टिकोण, शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धान्त एवं टैगोर का बहुआयामी व्यक्तित्व प्रकाशस्तम्भ बनकर उनके विचार-पथ को आलोकित करता है।

मास्टर जी की भक्ति में प्रेम की महिमा सर्वोपरि रही है। प्रेम ही ईश्वर का रूप है। उनके भक्ति काव्य में संसार त्याग का कोई महत्त्व नहीं। शैव दर्शन से प्रभावित कवि व्यक्त संसार को शिव की लीला समझ कर उसके प्रति प्रेमातिरेक से अधीर हो उठता है। जीवन और जगत के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वस्थ स्वीकारात्मक है, रुग्ण नकारात्मक नहीं।

मास्टर जी पर तसव्वुफ़ (सूफीमत, अध्यात्मवाद) का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से पड़ा है । यही कारण है कि उनके भक्ति काव्य में प्रेम की महत्ता सर्वोपरि है। सगुण भक्ति के क्षेत्र में मास्टर जी ने कृष्ण के प्रति तन्मय होकर अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये हैं। वे कृष्ण के उस रूप पर मोहित हैं जो अर्जुन के हृदय में नव-स्फूर्ति का संचार करता है। उन्हें गीता के कृष्ण ने मोहित किया है। मास्टर जी धार्मिक आडम्बर एवं रूढ़िवादी विचारधारा के कट्टर विरोधी थे।

कहीं-कहीं उन्होंने अपने भक्ति-काव्य में नाज़ुक स्थितियों की ओर भी संकेत किया हैं यहाँ भक्ति में दार्शनिक चिन्तन का मेल हुआ है। कुल मिला

कर मास्टर जी की रचनाओं में भक्ति, काव्य एवं दर्शन की त्रिवेणी प्रवाहित हो उठी है।

मास्टर जी इसी धरती पर स्वर्ग की सृष्टि करने के इच्छुक थे। वे ऐसे सौन्दर्य की तलाश में रहे जो सत्यम् और शिवम् से समन्वित हो तथा प्रकृति के कण-कण में व्याप्त हो।

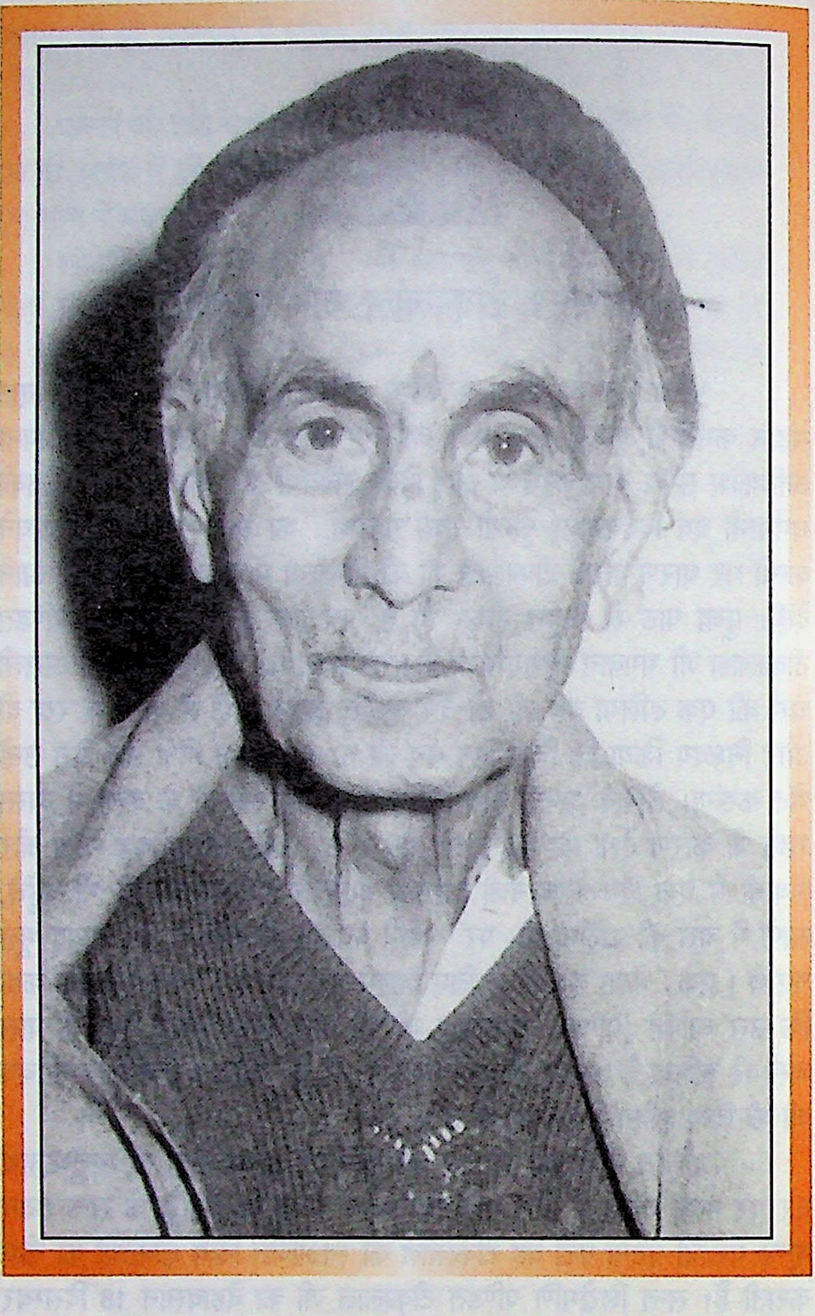
स्पष्ट है कि मास्टर जी ने २०वीं शताब्दी के पाँचवें दशक में भक्ति को श्रेष्ठ वैचारिक धरातल प्रदान किया। मास्टर जी को दृढ़ विश्वास था कि जीवन को सफल बनाने के लिये नीरस त्याग नहीं अपितु सरस अनुराग अपेक्षित है।



पण्डित टीकालाल जी खज़ांची

पण्डित मानजू गोजा के शिष्य पण्डित टीकालाल जी खज़ांची एक महान कर्मयोगी गृहस्थ सन्त थे । जप-तप और योग साधना में अपना अधिकांश समय व्यय करते थे और दिव्य शक्तियों के मालिक थे । उनकी धर्मपत्नी एवं विवेकशील गृहणी स्वयं गृहस्थी का सारा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर धारण करके टीकालाल जी की दिनचर्या में कोई अड़चन नहीं आने देती। पूजा पाठ से निवृत्त होकर ही वे अन्न जल ग्रहण करते थे। पण्डित टीकालाल जी भगवान गोपीनाथजी के परम भक्त थे। एक दिन उन्होंने असली चर्स की एक ढलिया बब जी को देने के हेतु अपने साफ़े में बान्ध के रख दी और निश्चय किया कि जिस दिन बब जी के पास जाना होगा उस दिन उन्हें भेंट करूंगा। लेकिन अपनी नित नियम पूजा और नौकरी के काम में व्यस्त रहने के कारण ऐसा वह कई दिनों तक न कर सके। सौभाग्यवश माता क्षीर भवानी में एक दिन भगवानजी दर्शनार्थ आये थे । टीकालाल जी भी पहुँचे, साफे में चर्स की ढलिया थी। पर अभी बब जी को नही दी थी, शायद् भूल गए थे । एक भक्त बब जी के लिए चिलम भर रहा था । बब जी ने उसे कहा कि उस व्यक्ति (पण्डित टीकालाल जी की ओर संकेत करते हुए) के पास चर्स की ढलिया है उससे लेकर चिलम में भर दो। पण्डित टीकालाल जी बब जी की दिव्य शक्ति से गद् गद् हो उठे।

पण्डित टीकालाल जी हर वर्ष विधिवत शक्ति माता के सन्तुष्टनार्थ घर पर हवन करते थे और एक बार हवन के प्रमुख पुजारी के साथ हवन कुण्ड पर जो घटना घटी वह टीकालाल की स्वअर्जित दिव्य शक्तियों का बोध कराती हैं। सन्त शिरोमणि पण्डित टीकालाल जी का देहावसान 18 दिसम्बर सन् १९८२ ई. के दिन हुआ ।



पण्डित टीकालालजी खज़ांची (१८८२ - १९८२ ई.)



G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No... 6949 ....
Dated..10-9-2006

पण्डित ठाकुरजू मनवटी

{ महान सन्त, कवि और अध्यापक }

कश्मीर के महान सन्त कवि पण्डित ठाकुरजू मनवटी जिन्हें श्रद्धालु भक्त ‘ बॉयजिगुॅर’ कहते थे १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुण्ड अलमहर, श्रीनगर में जन्मे थे। मुंशी फाज़िल की परीक्षा पास करके वे सरकारी शिक्षा विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए और नौकरी के दौरान कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में सेवारत रहे। अध्यापन के साथ-साथ वे अध्ययन में भी लीन रहे और संस्कृत, फारसी और अरबी भाषाओं की सम्यक् जानकारी प्राप्त की। वेद, कुरान, और बाईबल का गहन अध्ययन किया और इसके पश्चात् दिव्य-साधना में लीन हुए।

पण्डित ठाकुरजू मनवटी एक गृहस्थ सन्त थे। इनके दो पुत्र सर्वानन्द जी और व्यदलाल जी अपने पूज्य पिता के समान ही दिव्य गुणों के मालिक थे।

निरन्तर साधनारत रहने के पश्चात् उन्हें दिव्य दर्शन प्राप्त हुए और जन कल्याण कार्यक्रमों में उन्हांने अपना पूरा जीवन समर्पित किया।

शिक्षा विभाग से सेवानिवृत्त होने के बाद वे दीवानबाग कर्णनगर-श्रीनगर में रोज़ शाम को सत्संग का आयोजन करते थे जिसमें सैंकड़ों भक्त जन सम्मिलित हो कर आनन्द विभोर हो उठते थे। स्वामी जी के अनमोल प्रवचन गीता-रहस्य पर आधारित होते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि परमेश्वर प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान है, उन्हें बाहर ढूँढना व्यर्थ है।

कहा जाता है कि उनकी २०० भक्ति रचनाओं का संग्रह ‘अमृत सागर’ शीर्षक के अन्तर्गत तैयार किया गया था जिसमें उन्होंने अपने निजी अनुभवों के आधार पर परम् ब्रह्म, दिव्य ज्ञान तथा परम सत्य की विशद् व्याख्या की थी लेकिन आज इस संग्रह की पांडुलिपि कहीं उपलब्ध नहीं है।



पण्डित ठाकुरजू मनवटी (- १६२६ ई.)

पण्डित ठाकुरजू मनवटी को शास्त्रीय संगीत की भी सम्यक् जानकारी थी। मास्टर जी के निवास पर रोज़ भजन कीर्तन होता था। सन्तों, महात्माओं, विद्वानों, धर्म शास्त्र के पण्डितों का आना जाना प्रायः लगा रहता था। बनारस और दक्षिण भारत से भी जिज्ञासु भक्त उनके पास पहुँचते थे। पण्डित जगन्नाथ 'गाश' मनवटी ने लिखा है कि मास्टर जी के घर पर उनके कमरे के पास मिट्टी का एक कलसा रखा रहता था । हर रविवार के दिन इस कलसे को ताज़ा पानी से भर दिया जाता था। मास्टर जी मंत्रोच्चार के साथ इसमें अपना हाथ डाल देते थे। यही पानी रोगोपचार के लिए भक्तजन अपने साथ लेते थे। ये भक्त जन दूर दूर इलाकों से यहाँ तक कि बारामुला और मुज़फ्फ़राबाद से भी यहाँ पहुँचते थे । पण्डित जी के यहाँ रविवार को 'औषधि दिवस' कहा जाता था।

महासमाधि लेने से छः मास पूर्व उन्होंने अपनी प्रिय गाय पार्वती को सोपुर वापस भेज दिया जहाँ से उसको कई वर्ष पूर्व लाया गया था। घर में सब दुखी हुए तब उन्होंने कहा था 'पार्वती अपने घर गई है और जल्दी ही मैं अपने घर चला जाऊँगा, अतः दुःख काहे का ।'

मास्टर जी ने सन् १९२६ ई. के अश्विन मास में निर्वाण प्राप्त किया और इस प्रकार एक महान सन्त, गुरु और अध्यापक अपने पीछे ज्ञानामृत की पूंजी छोड़ कर स्वर्ग सिधारे।

श्री जगन्नाथ 'गाश' मनवटी ने ठाकुरजू मनवटी का एक जीवन चरित 'कोशुर समाचार' के लिय लिखा है जो अप्रैल सन् १९९९ ई. में प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत परिचय पत्र लिखते समय उस लेख से सहायता ली गई है।



स्वामी नन्दलाल कौल 'साहिब'

{ नन्द बब }

नन्दलाल कौल साहिब सुपुत्र शंकर कौल साहिब नुनर निवासी का जन्म पौष शुक्ल दशमी ३० दिसम्बर सन् १८६६ ई. को पुरुषयार, हब्बाकदल-श्रीनगर में हुआ था। आप उर्दू तथा फ़ारसी भाषाएँ अच्छी तरह जानते थे। बचपन से ही आपका झुकाव ईश भक्ति की ओर था। हालांकि शुरु-शुरु में आपने नौकरी भी की पर प्रभु ने आपको अपनी भक्ति की ऐसी सुरा पिला दी कि आप आजन्म उसी में मस्त रहे। आपके ज्ञान चक्षु खुले और आप त्रिकालज्ञ हो गए। आध्यात्मिक मधु की मस्ती से आप इतने सराबोर थे कि आप हाथ में एक डंडा लेकर तथा कमर में एक तलवार व कुल्हाड़ी खोंस कर घूमा करते थे। आप प्रायः सिर पर हैट तथा एक हाथ में क़लम-दवात भी रखते थे। आप किसी के लिए भी अच्छा या बुरा हुकुम नामा लिखते थे और यह अक्षरशः सच निकलता था। बख़्शी गुलाम मुहम्मद को शैख़ अब्दुल्ला साहब की कुर्सी पर बैठने का हुकुमनामा आपने दो महीने पहले लिखा था तथा बाद में बख्शी साहब को कुर्सी से उतारने का आज्ञा-पत्र भी आपने ही लिखा। कश्मीर पर क़बाइली हमले के समय आपने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से शत्रु सेना को परास्त किया।

नन्द बब के हृदय में सब के प्रति सद्भाव एवं सहानुभूति थी। उनके सम्मुख हिन्दू मुसलमान का भेद बेमानी था। वे न अमीरों के लिये विशेष आग्रह रखते थे और ग़रीबों के प्रति उपेक्षा भाव। वे सदा हँसते रहते थे, क्षीण मुद्रा में नहीं रहते थे। निस्सन्देह वे अध्यात्म की ऊँचाइयों को छूते हुए परमानन्द में लीन रहते थे और लयावस्था में भौतिक बन्धनों की चिन्ता किये बिना क्रमहीन क्रियाकर्म में व्यस्त रहते थे।



स्वामी नन्दलाल कौल (साहिब) 'नन्द बब' (१८६६ - १९७३ ई.)

मानव को उसके प्रकृत रूप में देखना चाहते थे। प्रायः व्यक्ति को देखते ही लिख कर कागज़ का टुकड़ा उसके हाथ में थमा देते थे। लिखित शब्दों में एक नहीं, कई अर्थ निहित रहते थे। सन् १९४७ के कबाइली आक्रमण के समय और सन् १९६५ ई. में भारत-पाक युद्ध के समय नन्द बब अन्धकार की गहन छटा को मिटाने के हेतु प्रकाश के शक्ति स्रोत के रूप में प्रकट हुए और शत्रु विनाश की अग्रिम सूचना देते रहे। मस्तमौला नन्द बब क्रुद्ध मुद्रा में शत्रु सत्ता के विनाश हेतु हुकुमनामे जारी करते रहे। नन्द बब की भविष्यवाणियाँ वर्षों बाद भी यथार्थ की सान पर चढ़ कर खरी उतरी हैं।

सन् १९६५ ई. में जब भारत पाक युद्ध हुआ 'नन्द बब' पं० बलकाक धर के घर पर श्रीनगर में थे और रात भर वे जागते रहे। कभी आग जलाते थे कभी रोते रहे, कभी हंसते थे और कभी ज़ोर ज़ोर से चिल्लाते थे। दूसरे दिन उन्होंने स्वयं कहा कि कल रात संकट की रात थी। कल रात वे हवाई अड्डे पर आक्रमण करना चाहते थे और मैं पूरी रात उनसे लड़ता रहा और रास्ता रोक के रखा। बाद में पता चला उस रात शत्रु दल ने श्रीनगर के हवाई अड्डे पर आक्रमण करके कई योजनाएँ बनाई थी और सब विफल हो गईं। नन्द बब अपने घर से मोटर गाड़ी या टैक्सी में निकलते थे और ड्राइवर को चलने का आदेश देकर कई दिन एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करते रहते थे। यह पहले से तय नहीं होता था कि कहाँ जाना होगा और कहाँ रात के लिये ठहरना होगा।

आप वैसे तो घुमक्कड़ स्वभाव के थे पर आप पं० बलकाक धर तथा पं० शम्भूनाथ वकील के घर अधिकतर रहा करते थे। हर धर्मावलम्बी आपका आदर करता था और आपके आशीर्वाद से सबके मन की मुराद पूरी होती थी। आप १० अक्तूबर सन् १९७३ ई. में स्वर्ग सिधारे। देह त्याग के समय आप दिल्ली में थे। वहाँ से आपका पार्थिव शरीर श्रीनगर लाया गया तथा शिवालय मन्दिर (कन्याकदल) में जनता के दर्शनों के लिए रखा गया। आपके अन्तिम संस्कार में हज़ारों हिन्दू-मुसलमान शामिल हो गए।

पण्डित गोपीकृष्ण के शब्दों में - " वे प्रकाश की दुनिया में रहते थे और उनके मानस की भीतरी ज्योति उन्हें अद्भुत आभा से भर देती थी। प्रकाश भीतर और बाह्य, तथा कानों में ध्वनित अद्भुत संगीत - यही तो उनके अध्यात्म जीवन की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। "

- 'कोशुर समाचार' फरवरी १९९६ ई., पृ० ४३

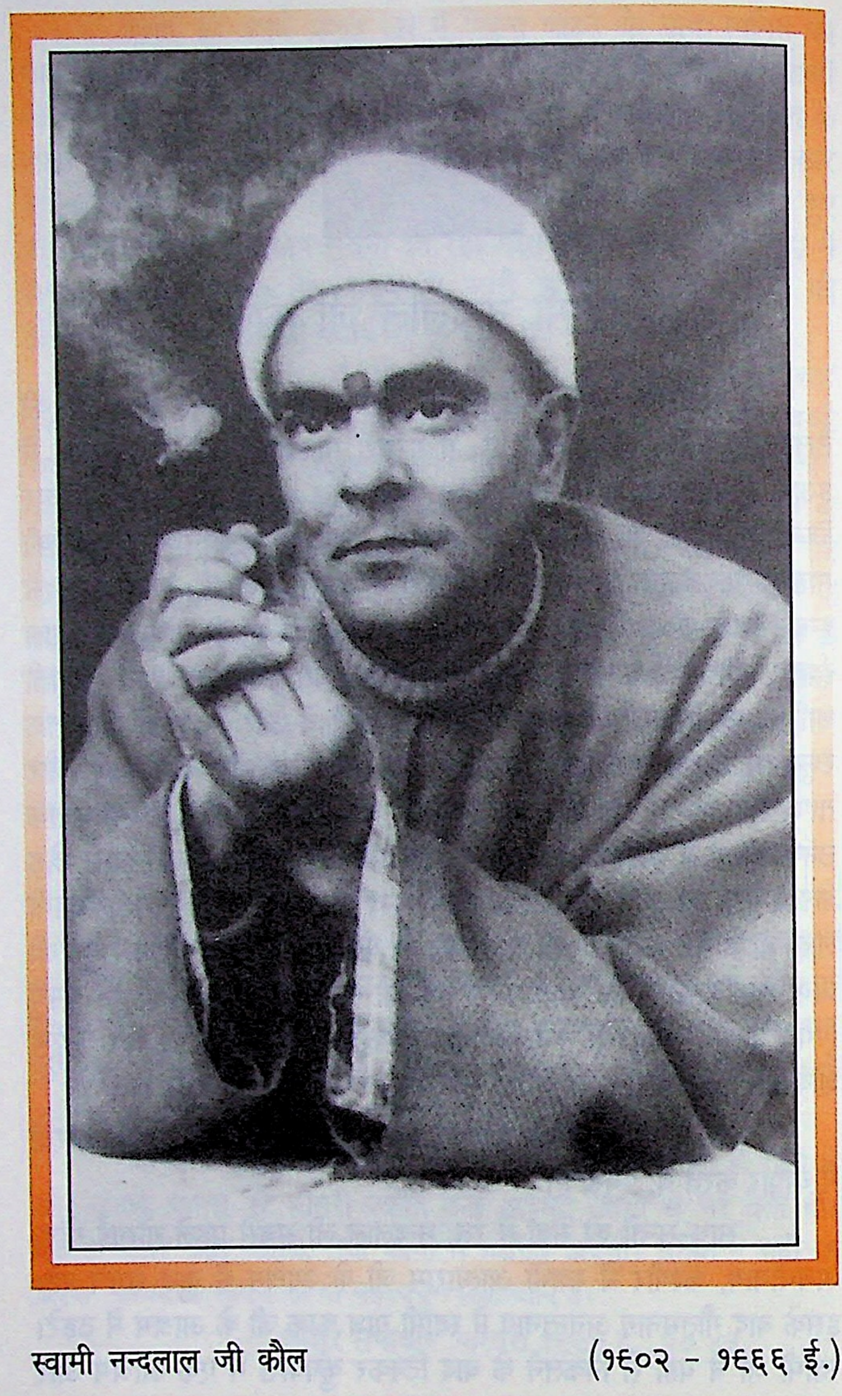


स्वामी नन्दलाल जी कौल

योगीराज स्वामी नन्दलाल जी कौल का जन्म फाल्गुन शुक्ल पक्ष की तैलाष्टमी के दिन सन् १६०२ ई. में गुरगुरी मुहल्ला ज़ैनाकदल, श्रीनगर में हुआ। आपके पिताजी का नाम पंडित सहज़ कौल था। वे एक सम्पन्न परिवार जिन्हें 'कोठदार' भी कहते हैं, से सम्बन्ध रखते थे। बचपन में ही आपकी माताजी का देहान्त हुआ। इनके पिताजी ने दूसरी शादी की। माता-पिता ने इनकी शिक्षा-दीक्षा में कोई रुचि न दिखाई । छुटपन से ही बालक नन्दलाल ईश्वर भक्ति की तरफ आकर्षित हुए। हारी पर्वत (श्रीनगर में माँ भगवती शारिका का निवास) की परिक्रमा प्रतिदिन करते थे और आठवीं कक्षा तक स्कूल में शिक्षा प्राप्त करके एक-डेढ़ साल तक व्यवसाय करने लगे और तत्पश्चात् १७-१८ वर्ष की अल्पायु में ही गृह-त्याग किया। बहुत समय तक उनके विषय में कोई जानकारी ही न थी। एक बार अपना पैतृक निवास छोड़ कर वे पुनः घर लौट नहीं आये। स्वामी नन्द लाल जी ने बनारस के स्वामी लाल जी से गुरु दीक्षा ली थी। नन्द लाल की योग्यता एवं सिद्धि देखकर गुरु जी प्रायः कहा करते थे कि 'बात बनेगी वही जो नन्दलाल की इच्छा हो '। बुमर्यु (स्यद माल्युन) सोपुर में नन्दलाल जी अधिकांश समय साधनारत रहे। वे पूर्ण शाकाहारी ब्रह्मचारी सन्त थे तथा सूफियाना संगीत सुनने में रुचि रखते थे।

स्वामी जी के शिष्यों में टिकर (कुपवारा) के मूल निवासी जो शारदा में व्यपार करते थे, प्रमुख हैं।

साधु-सन्तों की सेवा में रत, नन्दलाल जी सबसे पहले गोसाई गोंड, अनन्तनाग, कश्मीर में स्वामी आत्माराम जी के आश्रम में कुछ समय रहे। इसके बाद गौतमनाग अनन्तनाग में स्वामी गाश काक जी के आश्रम में ठहरे। स्वामी जी ने यहाँ से निकलने के बाद टिक्कर कुपवारा में एक आश्रम और



स्वामी नन्दलाल जी कौल (१९०२ - १९९९ ई.)

धर्मशाला का निर्माण किया। यहीं पर आपने चौदह वर्ष तक तपस्या की और एक परम-सिद्ध सन्त के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आप की आत्मिक शक्ति की चर्चा सारे इलाके में फैल गई। आपसे जुड़े अनेक चमत्कारों की प्रसिद्धि फैलने लगी।

सन् १९४५ से सन् १९४७ तक आप शारदादेवी के तीर्थस्थल (आज पाक अधिकृत क्षेत्र) में एक बार फिर तपस्या-लीन हुए। पाकिस्तानी हमलावरों ने जब आप के आश्रम में घुसने की कोशिश की तो उन्हें आप के कमरे में दहाड़ता हुआ एक शेर दिखाई दिया। आप की इस आध्यात्मिक शक्ति-प्रदर्शन से प्रभावित होकर आपके मुसलमान भक्तों ने न केवल आपको, अपितु शारदा तीर्थस्थल के सभी हिन्दुओं को सुरक्षित ढंग से कुपवारा पहुँचाया। आपने बाद में गौरीपुरा - बुमई- सोपोर, कश्मीर में पुनः एक आश्रम बनाया। हुषुर बड़गाम में भी एक आश्रम की स्थापना की। आश्रमों के निर्माण हेतु विशिष्ट निर्माण स्थानों का चयन आप अपनी इच्छा से करते थे।

स्वामी नन्दलाल ने यह भविष्यवाणी की थी कि कश्मीरी पण्डितों को देश-त्याग करना होगा, जैसा कि सन् १९८९ में सिद्ध हुआ, किन्तु आपने यह भी कहा है कि कश्मीरी पण्डित फिर से कश्मीर वापिस जाएँगे। स्वामी जी का व्यवहार अपने शिष्यों और भक्तों के प्रति पुत्रवत् होता था। उनके जीवन से जुड़ी आश्चर्य चकित घटनाओं का वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं। केवल एक घटना का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। उन दिनों स्वामी जी बुमई सोपुर में निवास करते थे। एक मुसलमान भक्त उनके पास आया और कहा कि उनकी गाय ने अकस्मात् दूध देना बन्द कर दिया है। सुन के स्वामी जी ने कहा - जाओ बरतन ले कर गाय के पास जाओ और कहो कि नन्द लाल ने दूध मंगाया है, उनके लिये कुछ दूध दो। भक्त घर लौटा, बरतन लेकर गाय के पास आया और कहा कि स्वामी नन्दलाल के लिये दूध दो, कहते हैं कि गाय के स्तनों से तुरन्त दूध की धार फूट पड़ी।

स्वामी नन्द लाल ने यह भविष्यवाणी की है कि कश्मीरी पण्डितों को अपना भविष्य बचाने के हेतु बड़ी कुर्बानी देनी होगी। स्वामी जी ने स्वयं श्री विभीषण जी, क्राल बब महाराज और मस्तराम जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। स्वामी जी ने श्री व्यदलाल (स्यद्मोल) जी को स्वयं गुरु दीक्षा दी थी। उन्होंने ही उसे 'स्यदमोल' नाम दिया। दूसरे प्रिय शिष्यों में स्वामी

श्यामलाल जी सप्रू जिन्हें 'बोय टोठ' कहते थे, स्वामी जी के कृपा पात्र रहे हैं।

श्री एस० के० कौल टी.-४८, स्यकटर-१२, नोइड़ा निवासी, का स्वामी जी के साथ १० वर्ष (१६५८-६८) निकट सम्पर्क रहा है अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर उन्होंने स्वामी नन्दलाल शीर्षक से एक परिचय लेख लिखा है जो 'कोशुर समाचार' - मार्च १६६६ ई. में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत परिचय लिखते समय उससे सहायता ली गई है।

स्वामी जी किसी भी भक्त से एक पैसा भी स्वीकार नहीं करते थे। नेताओं और प्रतिष्ठित लोगां का उनके पास आना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उन्हें प्रकृति के प्रति अपार स्नेह था। स्वच्छ जीवन और सरल व्यवहार यही तो उनकी योग सिद्धि की चरम सीमा है।

स्वामी नन्दलाल जी का स्वर्गवास सन् १६६६ ई. के जनवरी मास में गौरी तृतीया के दिन (माघ शुक्ल पक्ष तृतीया) नई दिल्ली के मालवीय नगर में पण्डित प्रेमनाथ साधु के निवास पर हुआ। श्री प्रेमनाथ साधु स्वामी जी के प्रिय भक्तजनों में एक थे। स्वामी जी आज भी भक्तों पर अपनी अनुकम्पा बनाए हुए हैं।

आपके मुख्य शिष्यों में स्वामी मस्तराम जी, स्वामी विभीषण जी तथा स्वामी क्राल बब जी माने जाते हैं। क्रालबब जी का स्वर्गवास हो गया है। स्वामी मस्तराम जी ने पटोली जम्मू में आप का एक आश्रम बनवाया है - जहाँ हर वर्ष आप का जन्म दिवस और अन्तर्धान दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।



सन्त निदान जी

कश्मीर में साधु, सन्तों और ऋषियों की एक लम्बी परम्परा है। इसी परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी ' न्यदें' - (निदान) नामक प्रसिद्ध सन्त हैं। पुलवामा-अनन्तनाग, कश्मीर से कोई चार किलोमीटर की दूरी पर मुरन नाम का एक गाँव है। यहाँ कश्मीरी पण्डित काफ़ी संख्या में रहते थे। सुम्बल - बारामूला, कश्मीर से एक भट्ट परिवार इस मुरन गाँव में रहने के लिए आया था - इसी परिवार के एक वंशज श्री तोतॉ भट्ट आध्यात्मिक चेतना से परिपूर्ण एक ज्ञानी पण्डित थे। इन्हीं के घर में ' न्यद ' (निदान) नामक एक नौकर था। तोतराम भट्ट ने एक दिन अपने इस नौकर को किसी कारणवश डाँटा। नौकर 'न्यदें' डर के मारे कहीं छिप गया। तोतॉराम की बहू 'न्यदें' के प्रति काफी स्नेह रखती थी, उसने 'न्यद' को काफी ढूँढा पर कहीं नहीं मिला। प्रातः जब वह पूजागृह (ठोकुर कुँठ) में पूजा करने गई तो वहाँ उसने एक चमत्कार देखा। 'न्यदें' ध्यान-लीन था और उसके चारों ओर प्रकाश मण्डल दीप्तिमान था। घबरा कर वह चीख पड़ी, उसके पतिदेव भागे-भागे आए और दोनों हाथ जोड़ कर निदानजी के चरणों मे गिर पड़े। उन्हें क्षोभ इस बात का था कि इस प्रकार के उच्च कोटि के पहुँचे हुए महान सन्त उनके यहाँ नौकर का काम कर रहा था।

निदान जी अब अपनी वास्तविकता छिपते न देख तत्काल भट्ट परिवार को छोड़ कर पास के जंगल में तपस्या करने के लिए निकल पड़े । निदान जी इस वन में वर्षों तपस्या करते रहे, किसी को यह पता नहीं था कि वे कहाँ हैं - एक दिन वन में एक चरवाहे ने उन्हें देखा - पूरा शरीर मिट्टी से ढक चुका था । चरवाहे ने मिट्टी हटाई, श्रद्धापूर्वक पैर धोये और गाँव में जाकर



सन्त निदानजी की पादुका

इस रहस्य को सुनाया। इन्हीं दिनों तत्कालीन महाराजा प्रतापसिंह इस स्थान से कुछ कोस दूर 'रोहमू' गाँव गए थे - वापिसी पर महाराजा के क़ाफिले के घोड़े अचानक रुक गए और आगे बढ़ने से इनकार करने लगे। महाराजा प्रतापसिंह समझ गए कि यहां कहीं आसपास कोई दैवी-शक्ति या किसी महान आध्यात्मिक व्यक्ति का निवास स्थान है। ढूँढने पर राजा को स्वामी निदान जी के दर्शन प्राप्त हुए। राजा प्रतापसिंह ने स्वामी जी से कुछ माँगने को कहा तो उन्होंने कहा कि इस स्थान में हर वर्ग के लोगों के बसाने का प्रबन्ध किया जाए । राजा ने ऐसा ही करवाया। यह स्थान हारपोरा नाम से आज भी प्रसिद्ध है। इस स्थान पर स्वामी निदान जी समाधिस्थ हुए।

यहाँ पर उनके नाम से एक मन्दिर भी है। मन्दिर में पवित्र अवशेष के रूप में उनकी खड़ाऊ रखी गयी है। यहाँ ' हरनाग ' नाम का एक चश्मा भी है। कहते हैं कि यह चश्मा उसी दिन प्रकट हुआ जिस दिन स्वामी जी ने शरीर त्याग दिया ।

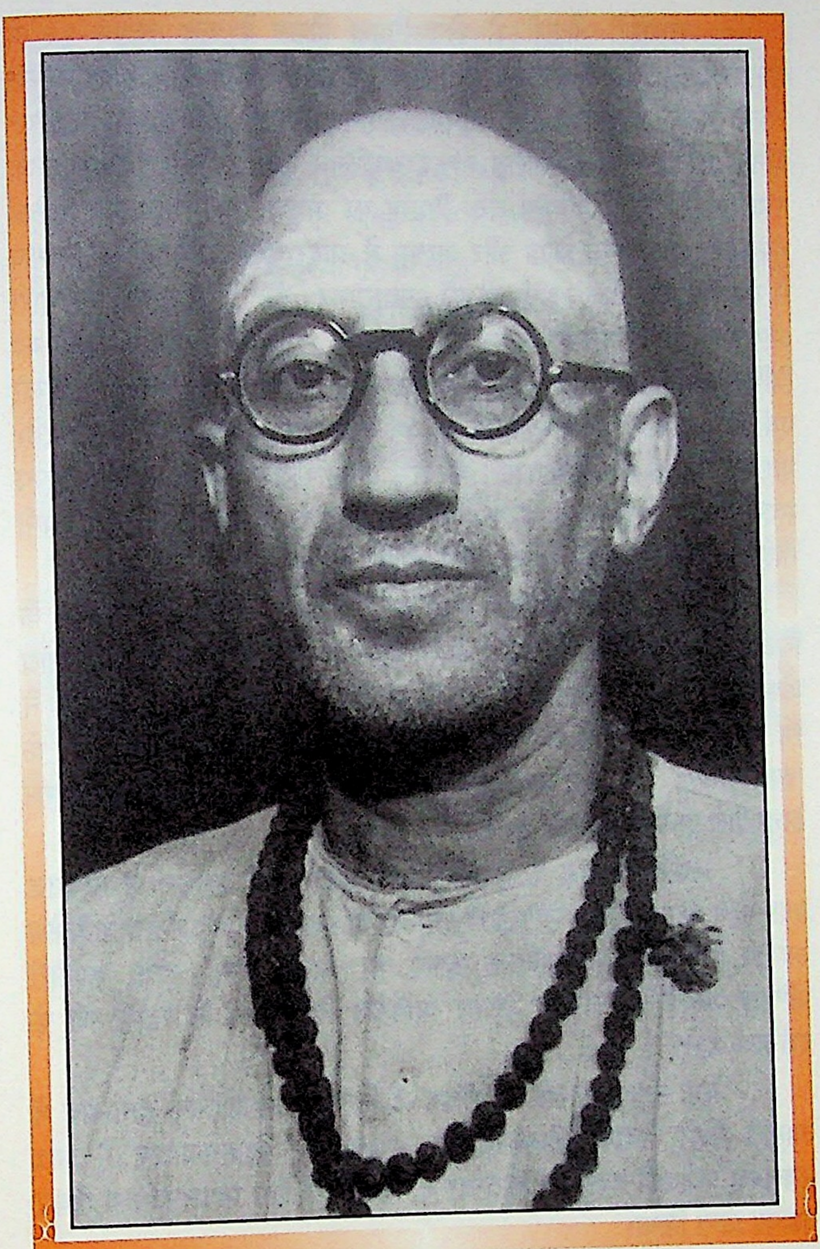


ब्रह्मचारी श्री नीलकण्ठानन्द सरस्वती

श्रीनगर शहर में हब्बाकदल के निकट द्राबीयार मुहल्ले के एक सुसंस्कृत परिवार में सन् १८६६ में स्वामी नीलकण्ठानन्द जी सरस्वती ने जन्म लिया था। इनका नाम श्री नीलकण्ठ ज्योतिषी था। उनके पिता पंडित लक्ष्मण जी ज्योतिषी एक सुसम्पन्न व्यक्ति थे तथा माता श्रीमती पार्वती एक धर्मप्रिय तथा यशस्वी स्त्री थी।

बाल्यकाल से ही वे आध्यात्मिक रस पाकर आद्य शंकराचार्य के अद्वैत-वेदान्त से विशेषतया प्रभावित रहे। एक विशिष्ट कश्मीरी ब्राह्मण पण्डित परकाक जी से दीक्षा प्राप्त कर 'प्रस्थानत्रयी' (श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र) का शांकर भाष्य सहित गहन विचार कर परमार्थिक आनन्द का अनुभव प्राप्त किया। तत्पश्चात् अपने मित्रवर्य सुहृद् कश्मीर के धुरन्धर शैवाचार्य श्रीमत् स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के सम्पर्क में आकर वेदान्त तथा त्रिक्-दर्शन का गहन अभ्यास कर उस परम सत्ता के तात्विक स्वरूप को पहचानने का अभ्यास किया। एक ओर उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र का स्वाध्याय तथा दूसरी ओर उत्पलस्तोत्रावलि का निरन्तर अभ्यास इन्हें आनन्द मग्न करता रहा तथा इन तीन विभूतियों में शंकर वेदान्त एवं कश्मीर त्रिक् दर्शन का समन्वय पाकर उस चैतन्य सत्ता की अनुभूति प्राप्त करते रहे।

एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा वीरव्रतधारी होकर वे ज्ञान पिपासुओं तथा भक्तों के मार्गदर्शन हेतु एक सफल गुरु बने। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए वे इच्छुक जनता को योग सम्बन्धी कसरतें (Yogic Exercises) सिखा कर अपने सामने प्रदर्शित करवाते तथा अध्यात्म सम्बन्धी जान-पहचान भी प्रदान करते। उनकी संगति में बैठकर अनन्य मुमुक्षुओं का उपकार हुआ।



ब्रह्माचारी श्री नीलकण्ठानन्द सरस्वती (१८६६ - १६८८ ई.)

सरकारी नौकरी से सेवा-निवृत्त होकर वे सन् १९५७-५८ में हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए। टिहरी गढ़वाल के ऋषिकेश में महामनस्वी स्वामी शिवानन्द सरस्वती के प्रसिद्ध शिवानन्दाश्रम में प्रवेश किया। यहां पर दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित होकर प्रफुल्लित हुए। स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उनकी दिव्यता तथा विद्वता का अनुभव कर नीलकण्ठ जी का मुक्तकण्ठ से स्वागत किया और आश्रम में आदर पूर्वक रहने की सुचारु रूप से व्यवस्था की। अब स्वामी जी की आज्ञानुसार ही नीलकण्ठ ब्रह्मचारी आश्रम के सुन्दर सत्संग-भवन में पूर्वी तथा पश्चिमी साधक-भक्तों को विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का विधि-पूर्वक पठन-पाठन कराते रहे। संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी भाषा में आध्यात्मिक प्रवचन तथा सौम्य उपदेश देने में रत रहे। फरवरी १९६१ में महाशिवरात्रि के परम पावन मंगलमय दिन को परम पूज्य स्वामी शिवानन्द सरस्वती से सन्यास-दीक्षा प्राप्त कर नीलकण्ठ जी अब स्वामी नीलकण्ठानन्द सरस्वती के नाम से अभिहित हुए।

ऋषिकेश के एक प्रसिद्धतम पुरातन संस्थान श्री कैलास आश्रम के विद्यार्थी होने का श्रेय भी स्वामी नीलकण्ठानन्द को प्राप्त हुआ था जहां आद्य शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ जैसी महान विभूतियों ने भी शास्त्र अध्ययन किया था। विशेषकर स्वामी जी स्वयं ही उस समय के 'ज्ञान मार्तण्ड' कहलाने वाले श्रीमत् स्वामी हरिहर तीर्थ जी महाराज से परम अनुग्रहीत होकर आनन्दित हुए थे।

कश्मीर मण्डल के शैवयोगी परम पूज्य स्वामी लक्ष्मण जू महाराज यदा-कदा अपनी शिष्य-मण्डली लेकर स्वयं ही स्वामी जी के दर्शनार्थ ऋषिकेश आश्रम पर जाकर आध्यात्मिक सत्संग कर आनन्द विभोर होते। कश्मीरी पण्डित जनता भी हरिद्वार जाकर ऋषिकेश विशेष रूप से स्वामी जी के दर्शनार्थ जाते।

एक महान् तपस्वी का जीवन जीकर तथा आध्यात्मिक ज्ञान-यज्ञ में आहुति देकर, स्वामी नीलकण्ठानन्द सरस्वती ने शिवानन्दाश्रम में भाद्र शुक्लपक्ष त्रयोदशी तदनुसार सितम्बर ८, १९८८ के दिन महासमाधिस्थ होकर ब्रह्मपद प्राप्त किया।

उनके ही एक महान भक्त पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल' ने संस्कृत श्लोकों में उनकी अलौकिक स्तुति 'दैशिकेन्द-पन्चदशी' के रूप में की है जिसका प्रथम श्लोक इस महान आत्मा के प्रति नमस्कार है –

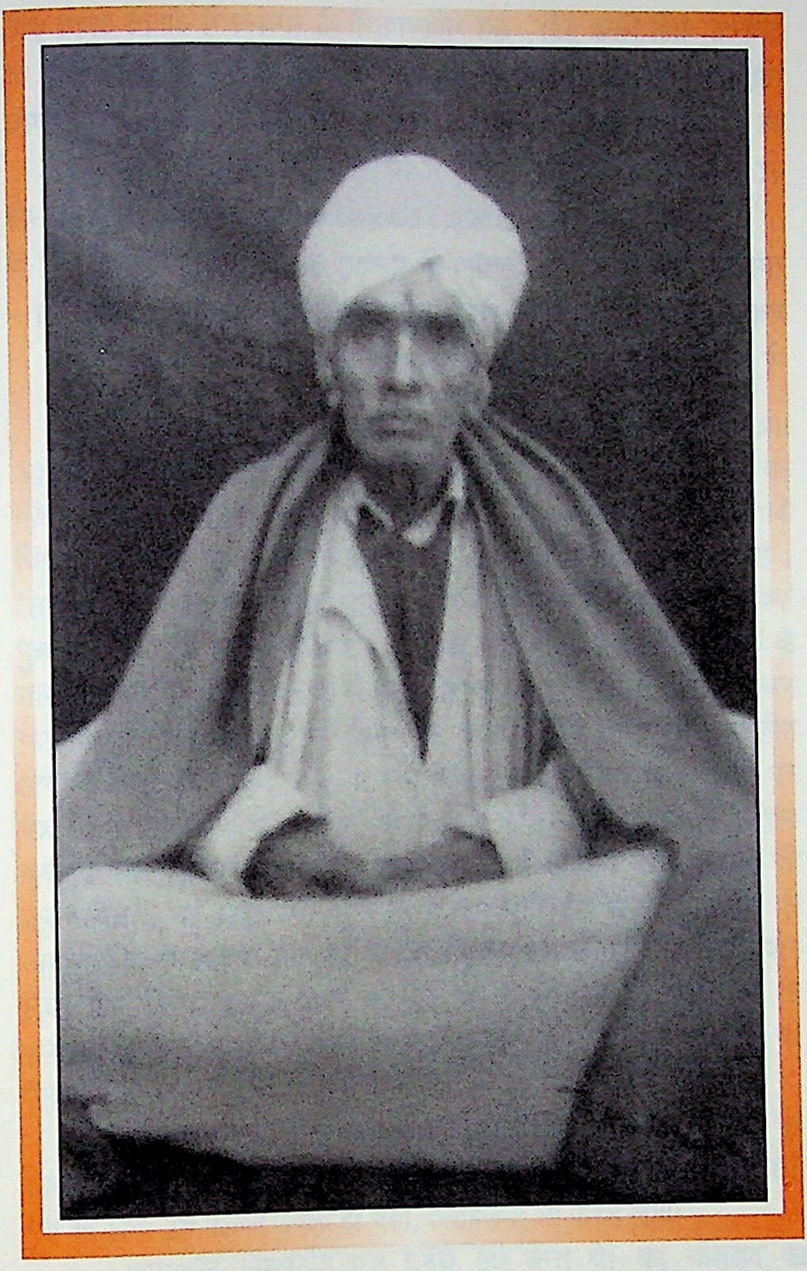
या काचिद् वै क्वचिदपि दशा
किन्चिदभ्यासपूरा-
दानन्दाख्या गुरुकरुणया
यस्य कस्य भवेन्नः।
सिद्धिस्सैषा सुरपितृनृणां
यस्य भक्त्या भवेत् तत्
तं स्वात्मानं विभववपुषं
साध्यसिद्धं प्रपद्ये।।

"कहीं किसी दीर्घकाल तक निरन्तर चलने वाले धारावाहिक अभ्यास से किसी श्रेष्ठ भक्त को जो तत्काल कोई अनिर्वचनीय भवभयहारिणी आनन्दावस्था प्राप्त हो जाती है, वही उसकी सिद्धि है। देवताओं, पितरों तथा मनुष्यों को यह उत्कृष्ट सिद्धि, जिनकी भक्ति (सेवा-पूजा) से उपलब्ध होती है, उन ज्ञानादि ऐश्वर्यमय शरीर वाले निजात्म-स्वरूप सद्गुरु की मैं शरण लेता हूँ।"



पण्डित नीलकण्ठ शर्मा

सुविख्यात गृहस्थी साधु, यशस्वी सन्त कवि पण्डित नीलकंठ जी शर्मा का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी (निर्जला एकादशी) २१ जून सन् १८८८ ई० को पण्डित शंकरनाथ शर्मा के यहाँ हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। आप संस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी तथा उर्दू आदि भाषाओं के अधिकारी विद्वान थे। बचपन से ही आपका रुझान अध्यात्म की ओर था। आपने अपना पूरा जीवन साधना एवं ईश-स्तुति में ही बिताया। आपके समकालीन सन्त आपके पास आते रहे तथा आपको आदर-सम्मान देते रहे। सिद्ध बब जी आपको गुरु तुल्य ही मानते थे। स्वामी नन्दलाल जी (लालजी के शिष्य) को आपका काव्य काफी भाता था। इनके निवेदन पर आपने अनेक लीलाओं (कश्मीरी भक्ति-गीत) और भजनों की रचना की। इससे लोगों में यह भ्रम फैल गया कि नन्दलाल जी आपके गुरु हैं। वास्तव में आप स्वयं ही अपने गुरु थे। आप प्रत्येक देवी देवता एवं अवतार को एक ही परंब्रह्म का रूप मानते थे अतः सब की स्तुति समान आदर एवं श्रद्धा से करते थे, पर परंब्रह्म का सगुण राम रूप आपको विशेष आकर्षक एवं प्रिय लगता था। कश्मीरी भक्ति काव्य का अनमोल रत्न ' शर्मा रामायण' आपकी बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित कृति है। इस महाकाव्य के अतिरिक्त आपने लगभग तीन-चार सौ लीलाएँ, श्रीमद्भगवद्गीता का कश्मीरी पद्यानुवाद तथा महाकवि भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का कश्मीरी गद्य-पद्य में अनुवाद इत्यादि किया है। आप अत्यन्त शान्त एवं सौम्य स्वभाव के व्यक्ति थे। आपके आशीर्वादों से अनेक लोगों का भाग्य सुधर गया। अपने देहत्याग के बारे में आपने जो भविष्यवाणी की थी वह



पण्डित नीलकण्ठ शर्मा (१८८८ - १९७१ ई.)

अक्षरशः सही सिद्ध हुई। इस भविष्यवाणी के सम्बन्ध में आपने अपने छोटे भाई पं० गोपीनाथ जी शर्मा से कहा था और साथ ही यह भी आदेश दिया था कि इस बारे में आपके ज्येष्ठ पुत्र (प्रो० जानकीनाथ शर्मा) को उचित समय पर ही कहा जाए क्योंकि पहले कहने से काफ़ी घबरा जायेंगे।

आप २२ जनवरी सन् १६७१ ई० (माघ कृष्णपक्ष एकादशी) को रामधाम सिधारे। आपके देहत्याग के पश्चात् आपके अगले जन्म के बारे में जब अनेक सन्त महात्माओं से मालूम किया गया तो सबका जवाब था - 'वे श्रीरामचन्द्र के साथ हैं और जन्म-मरण से परे हैं।'

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



स्वामी परमानन्द जी

{ नन्द राम }

परमानन्द जी का जन्म सन् १७६१ ई० में मट्टन (मार्तण्ड) में हुआ। आपके पिताजी मूलतः सीर (कानिल गोंड) अनन्तनाग के मूल निवासी थे। यह गाँव पहलगाम पथ पर मट्टन से लगभग चार किलोमीटर दूर है। आपके पिताजी का नाम कृष्ण पण्डित और माता का नाम श्रीमती सरस्वती था। 'सरस्वती' पुत्र परमानन्द संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी भाषाओं में परांगत थे। 'कृष्ण' पुत्र होने के नाते भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त। कृष्ण पण्डित इलाके के नामवर पटवारी थे। सन् १८१६ में इनके देहान्त के बाद नन्द राम पटवारी बन गए और कुछ वर्ष सेवारत रहे किन्तु मन भर गया और कृष्ण-भक्ति में लीन होने के लिए नौकरी त्याग दी। आरम्भ में फ़ारसी में कविता करने लगे, पर बाद में कश्मीरी, हिन्दी, उर्दू में भी लिखने लगे। आप ने अपनी प्रतिभा कृष्ण-लीलाएँ लिखने में लगा दी। परमानन्द जी में भगवान कृष्ण के प्रति जो प्रेम-भक्ति है वह मीरा और सूरदास से कम नही थी। श्रद्धा और प्रेम की अनुभूति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उनके आराध्य कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए। प्रेम की पराकाष्ठा इतनी बढ़ गई कि वे कृष्णमय हो गए। तभी तो उनकी कृष्ण लीलाओं में आध्यात्मिक अनुभूति के छवि-चित्र देखने को मिलते हैं।

परमानन्द का विवाह भी एक पटवारी की पुत्री मालद्यद से हुआ पर दोनों में परस्पर बनती नहीं थी। उनकी नज़र में नन्दराम एक निकम्मा पटवारी पुत्र था अतः वह उसकी उपेक्षा ही नहीं, अवहेलना भी करने लगी।

परमानन्द निस्सन्देह एक पहुँचे हुए सन्त थे। यह मालद्यद का दुर्भाग्य था कि वह कांचन को कांच समझ बैठी। परमानन्द के तीन कथात्मक



स्वामी परमानन्द जी (१७६१ - १८७६ ई.)

काव्य उल्लेखनीय हैं :-

१. सुदामाचरित जिसमें २५० छन्द हैं।

२. राधा स्वयंवर जिसमें १४०० छन्द हैं।

३. शिवलग्न जिसमें ३८० छन्द हैं।

तीनों कथात्मक काव्य हैं और अध्यात्म, भक्ति दर्शन और गहन चिन्तन पर आधारित हैं।

इसके अतिरिक्त परमानन्द ने कई स्वतन्त्र लीलाएँ एवं भक्तिगीत भी लिखे हैं जिनमें गहन रहस्यानुभूति मधुमिश्रित काव्यानन्द के साथ व्यक्त हुई है। इनमें उल्लेखनीय रचनाएँ हैं :-

१. कर्मभूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल, सन्तोष ब्यालि बॅवि आनन्द फल;

२. सहज़ व्यचार करुन;

३. कासि यमॅु भय चोन प्रेयम तु लोलो;

४. हच़रु भाव कास्तम ही शम्भू;

५. त्राविथ छु गछुन वानगॅुजवोर;

६. वर दया कर दया ही दया सागर ;

७. युस प्रावि मरे सहज़ भाव;

८. अमर नाथ (यात्रा) लीला (60 छन्द)।

इनकी लीलाओं में निम्नलिखित पाँच तत्त्वों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है :-

१. विवेक,

२. भक्ति,

३. उपदेश,

४. आत्मानुभूति,

५. आराधना।

'सुदामाचरित' के 'गटि मंज़ गाश आव चाने ज़्यनय जय जय जय देवकी नन्दनय' 'शिवलग्न' के 'सत् च्य़थ आनन्द विज्ञान रवै' तथा ' राधा स्वयंवर' के 'गोकुल हृदय म्योन तति चोन गूरय़वान च़्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो'

कथात्मक भक्ति गीतों की अनुगूँज आज भी भक्त जनों को आत्म चिन्तन और आत्म विश्लेषण के हेतु प्ररित करती है।

'कर्म भूमिका' भी इनकी एक चर्चित रचना है जिसमें कृषि कर्म के अन्तर्गत मानव की सम्पूर्ण जीवन क्रिया को सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना में ज़मींदारी से जुड़े आंचलिक शब्दों का प्रयोग अनुपम है।

निस्सन्देह स्वामी परमानन्द हमारी सांस्कृतिक विरासत के आकाश पर जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान दीप्त हैं।

'राधा स्वयंवर' और 'सुदामा चरित' जैसी रचनाओं ने आप को देश के अन्य प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवियों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। प्रसिद्ध कवि और लेखक मास्टर ज़िन्दा कौल ने अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक 'ज्ञान प्रकाश' मे इन कविताओं पर विस्तार से लिखा। पण्डित परमानन्द जी के शिष्य पण्डित लक्ष्मण जू राज़दान ने भी पूर्ण श्रद्धा और भक्ति से इनकी रचनाओं का वर्णन किया। आप की कृष्ण लीलाओं में प्रभु कृष्ण के पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूप का चित्रण अत्यन्त आत्मिक गहराई के साथ हुआ है। जीवन के अन्तिम वर्ष पण्डित परमानन्द जी ने मट्टन अनन्तनाग, कश्मीर में तपस्या और ईश्वर भक्ति में गुज़ारे। यहाँ आपके शिष्यों ने जिनमें ज़ैलदार सालेह गनाई का नाम उल्लेखनीय है, आपके नाम से एक जागीर रखी और यहीं पर सन् 1879 ई० भाद्र शुक्ल पक्ष पंचमी के दिन आप का स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्यों ने मट्टन में आपके नाम पर एक संस्था की स्थापना की। इसे सरकार भी अनुदान देती थी। आप की कृष्ण लीलाएँ कश्मीरी पण्डितों में आज भी प्रचलित हैं।

गूकल हृदय म्योन तति च्योन गूरच्वान,
च्यथ व्यमर्श दीप्तिमान भगवानो।



पण्डित प्रसादजू कौल 'ग्रटमो'त

{ ग्रटुं बब }

प्रसादजू उपनाम ग्रटमो'त, शुपियान कश्मीर के नानजू राज़दान के सुपुत्र थे । आपका जन्म शुपियान में सन् १८६० ई० के आसपास हुआ । बानमोहल्ला श्रीनगर के पण्डित ज़न कौल ने उन्हें दत्तक लिया था । यहीं पर पण्डित रामचन्द सराफ़ से फ़ारसी और पण्डित सूरज राम बागवान से संस्कृत भाषा की शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय के बाद वे शूपियान अपने पिता के पास वापिस चले गए और लगभग तीन वर्ष उनके साथ रहे लेकिन रात रात भर जाग कर वे साधना में रत रहते थे। यद्यपि वे सब को यह आभास देते थे कि वे सो रहे हैं पर मूलतः वे रात्रि जागरण कर अध्यात्म-साधना में रत रहते थे। कुछ समय पश्चात् इनके मन में वैराग्य की भावना जागी और घर छोड़ कर अच्छाबल के पास एक चक्की के पास आकर रहने लगे । यहाँ वे तीन दशाब्दी तक रहे । यही पर लोगों का ध्यान इनके प्रति आकर्षित हुआ और भक्त-जन इनकी दिव्य शक्तियों से प्रभावित होने लगे। वे सबके लिये उपलब्ध रहते थे और हर जाति के लोग उनके पास रोज़ आते रहे। पन- चक्की के पास वर्षो स्थायी रूप से रहने के कारण लोग उन्हें ' ग्रटुंमो'त' कहते थे। 'ग्रटुं ' कश्मीरी में पन-चक्की का भी वाचक शब्द है। बाल बढ़े हुए, फिरन पहने, विचित्र ढंग की बातें करने वाले इस व्यक्ति ने अपने प्रति लोगों की नफ़रत पानी चाही। वे हर समय दीवार की ओर मुँह किये दीवार पर थूकते रहते थे । उनका उद्देश्य यह था कि लोग उन्हें नफ़रत करने लगे और उनसे दूर रहे। ग्रटुं बब अपने शिष्यों के अतिरिक्त किसी से मिलने के इच्छुक नहीं थे। वे सर्दी गरमी में लगातार कांगडी तापते थे। कांगडी इतनी तेज़ होती थी कि कोई दूसरा व्यक्ति



पण्डित प्रसादजू कौल 'ग्रट मो'त' (१८९० - १९६२ ई.)

उसके ताप को बरदाश्त ही नहीं कर सकता। पूरे वर्ष 'फिरन' पहनते थे। 'क्षीर भवानी टाइम्स' जम्मू के प्रमुख समन्वयी श्री एच० एन० तिक्कू ने हमें ग्रटॅ बब के विषय में कुछ उपयोगी जानकरी लिख भेजी है। प्रस्तुत परिचय लिखते समय उससे सहायता ली गई है। श्री प्रसादजू कमरे में बैठते तो दीवार की तरफ मुँह करके, फिर भी लोग आप को घेरे रहते, क्योंकि इनकी कृपा से उनकी अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता।

अपने जीवन के अन्तिम चरण में आप श्रीनगर पधारे - अधिकांश जीवन इन्होंने चक्की के पास रहकर बिताया। इसीलिए इनका नाम कश्मीरी में 'ग्रटुँ मो'त' पड़ा। श्रीनगर में आप पण्डित श्रीधरजू धर और अन्य भक्तजनों के यहाँ ठहरे। कुछ दिनों के लिए पण्डित प्रेमनाथ सराफ़ के घर पर भी रहे।

आपने अनेक चमत्कार भी किए। एक दिन एक भक्त के घर में आग लग गई। उस भक्त ने पण्डित प्रसादजू को स्मरण किया - घर की आग बुझ गई - उसे लगा कि स्वामी प्रसादजू स्वयं आग बुझा रहे हैं। पण्डित श्रीधरजू धर पर इनकी विशेष कृपा थी। वे कंसरवेटर आफ फॉरेस्टस की उच्च पदवी पर पहुँच गए। अन्तिम समय में आपने अपने भक्तजनों को शरीर त्यागने का संकेत भी दिया और ७२ वर्ष की आयु में पण्डित जियालाल कौल जलाली के घर पर आपने सन १९६२ ई० में निर्वाण प्राप्त किया।



पण्डित प्रेमनाथ नेहरू

पण्डित प्रेमनाथ नेहरू भटयार, आलीकदल, श्रीनगर के मूल निवासी थे। आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सरकारी अध्यापक नियुक्त हुए और गृहस्थ जीवन का निर्वाह यथोचित रूप से करते रहे। इसी बीच उनकी रुचि शैव-शास्त्रों के प्रति बढ़ने लगी। कुछ ही समय में यह जिज्ञासा उन्हें व्याकुल करने लगी और वे गुरु की तलाश में निकल पड़े । सौभाग्यवश उन्हें उस युग के महान सन्त और शैव-शास्त्र विशेषज्ञ स्वामी गोविन्द कौल जलाली का सान्निध्य प्राप्त हुआ। वे तुरन्त उनकी शरण में आये। स्वामी जी उनकी तीव्र बुद्धि, ग्रहण करने की शक्ति एवं सहज स्वच्छ स्वभाव से प्रभवित हो उठे और उन्हें अपनी छत्रछाया में शिष्य रूप में ग्रहण किया। गुरुदेव ने ही उन्हें 'शैव-स्पन्द' का आभास कराया । जितने भी हस्तलिखित एवं मुद्रित शैव ग्रन्थ उपलब्ध थे उनकी सम्यक् जानकारी प्रदान करने के साथ-साथ स्वामी जी ने प्रेमनाथ नेहरू के मानस में साधना-पक्ष के गाम्भीर्य की चेतना भी जगायी। गुरु-मुख से निकले प्रत्येक वचन को अनमोल समझ कर उन्होंने उसे अपनी स्मृति की माला में पिरो दिया और ज्ञान साधना के साथ-साथ अद्भुत के रहस्य को पहचानने और समझने के लिये संकल्पबद्ध रहे। स्वयं स्वामी गोविन्द कौल शैवशास्त्री होने के साथ-साथ एक सिद्ध योगी भी थे। उन्हीं की अपार अनुकम्पा से पण्डित प्रेमनाथ नेहरू के मानस में दिव्य प्रकाश की ज्योति जगमगा उठी और वे इस गुरु-शिष्य परम्परा को आगे बढ़ाने के हेतु वचनबद्ध हुए। वे स्थायी रूप से शैवाश्रम फ़तेह कदल श्रीनगर के साथ जुड़ गये और गुरु देव के अन्तर्धान होने के बाद प्रेमनाथ जी ने गुरु पदवी सम्भाली और शैवानुयायिओं का मार्ग निर्देश करने लगे। उनके प्रवचन सुनकर ऐसा लगता



पण्डित प्रेमनाथजी नेहरु (- १९८२ ई.)

था कि स्वयं महामहेश्वराचार्य स्वामी रामजी या स्वामी गोविन्द कौल जलाली पुनर्जीवित हो उठे हैं और अपने शिष्यों के साथ शैव शास्त्रों का पठन पाठन कर रहे हैं। प्रेमनाथ जी के व्याख्यान सुनते-सुनते श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

शैवाश्रम फ़तेह कदल के शिव अनुरागियों का संकल्प था कि शैवमत से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण रचनाओं का प्रकाशन हो । इस कार्य को निबाहने में पं० प्रेमनाथ नेहरू का योगदान अविस्मरणीय है। इसके फलस्वरूप 'पंचस्तवी' 'कुलार्णवः तन्त्र' 'साम्बपंचाशिका' 'गायत्री निर्णय' 'शैव शास्त्र संग्रह' आदि ग्रन्थ आश्रम की ओर से प्रकाश में आये।

वे एक महान शिक्षक, शैवशास्त्री, ज्ञानी पण्डित होने के साथ-साथ एक सिद्धहस्थ सन्त और योग साधक थे। उन्होंने अपने पीछे एक प्रबुद्ध शिष्य परम्परा छोड़ दी। विस्थापन के बाद जम्मू में इस परम्परा को आगे बढ़ाने में श्री बंसीलाल रैणा (वाड्गन्यू) और स्वर्गीय नाथजी द्राल का योगदान प्रशंसनीय है। पण्डित प्रेमनाथ नेहरू दिसम्बर सन् १९८२ ई० में स्वर्ग सिधारे ।



स्वामी प्रेमानन्द जी 'मौनी बाबा'

आपका जन्म गुड़ियातम - तमिलनाडू में हुआ किन्तु बंगलोर - कर्नाटक के एक धार्मिक मेले में पाँच वर्ष की आयु में अपने माता पिता से बिछुड़ गये। प्रारम्भ से ही साधु-सन्तों की संगत प्राप्त हुई और उन्हीं के साथ अमृतसर (पंजाब) पहुँचे। यहाँ से लाहौर, सिन्ध, कराची, पेशावर, कोयटा, मुज़फराबाद होते हुए श्रीनगर-कश्मीर पहुँचे। यहाँ इनकी भेंट कन्याकदल के शिवालय में ब्रह्मलीन स्वामी नमः शिवाय पुरीजी महाराज से हुई। उन्होंने इन्हें ब्रह्मचर्यत्व की दीक्षा दी और कुछ समय पश्चात् गुरु महाराज की आज्ञा से मौन धारण कर लिया। १८ वर्ष, ५ महीने और १२ दिन के बाद स्वामी प्रेमानन्द जी ने, अपने गुरु महाराज की आज्ञा से सन् १९५९ में हरिद्वार जाकर सप्तसरोवर वसिष्ठ कुटिया में यह मौन व्रत तोड़ा। इसी कारण ' मौनी बाबा ' उपनाम प्राप्त हुआ।

स्वामी जी अपने इस मौन व्रत के बीच श्रीनगर से पैदल चल कर खारपोरा (बाँडीपोरा) कश्मीर के मान भट्ट जी के घर पहुँचे। मान भट्ट साधु-सन्तों की सेवा के लिए प्रसिद्ध थे - इन्हें भी पूरा सम्मान मिला। यहाँ पर आपने एक आश्रम भी बनवाया - किन्तु आश्रम के संचालन का भार अपने एक शिष्य ब्रह्मचारी सच्चिदानन्द जी को सौंप कर स्वयं भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा करते रहे। स्वामी सच्चिदानन्द जी ने मौनी बाबा की जीवन भर सेवा की।

आतंकावादी गतिविधियों के बढ़ते ही स्वामी जी ने कश्मीर त्याग दिया और दिल्ली में आकर रहे। दिल्ली में सोपोर के शुकदेव परिवार के सौजन्य से कश्मीरी कालोनी हिरनकी में 'मौनी बाबा सन्यास आश्रम' की स्थापना की



स्वामी प्रेमानन्द जी 'मोनी बाबा' (- २००० ई.)

गई और इन्होंने यहीं पर वास किया।

१७ जनवरी सन् २००० को मौनी बाबा ने इस आश्रम की व्यवस्था अपने शिष्य स्वामी सच्चिदानन्द पुरी जी को सौंप कर शरीर त्याग किया।



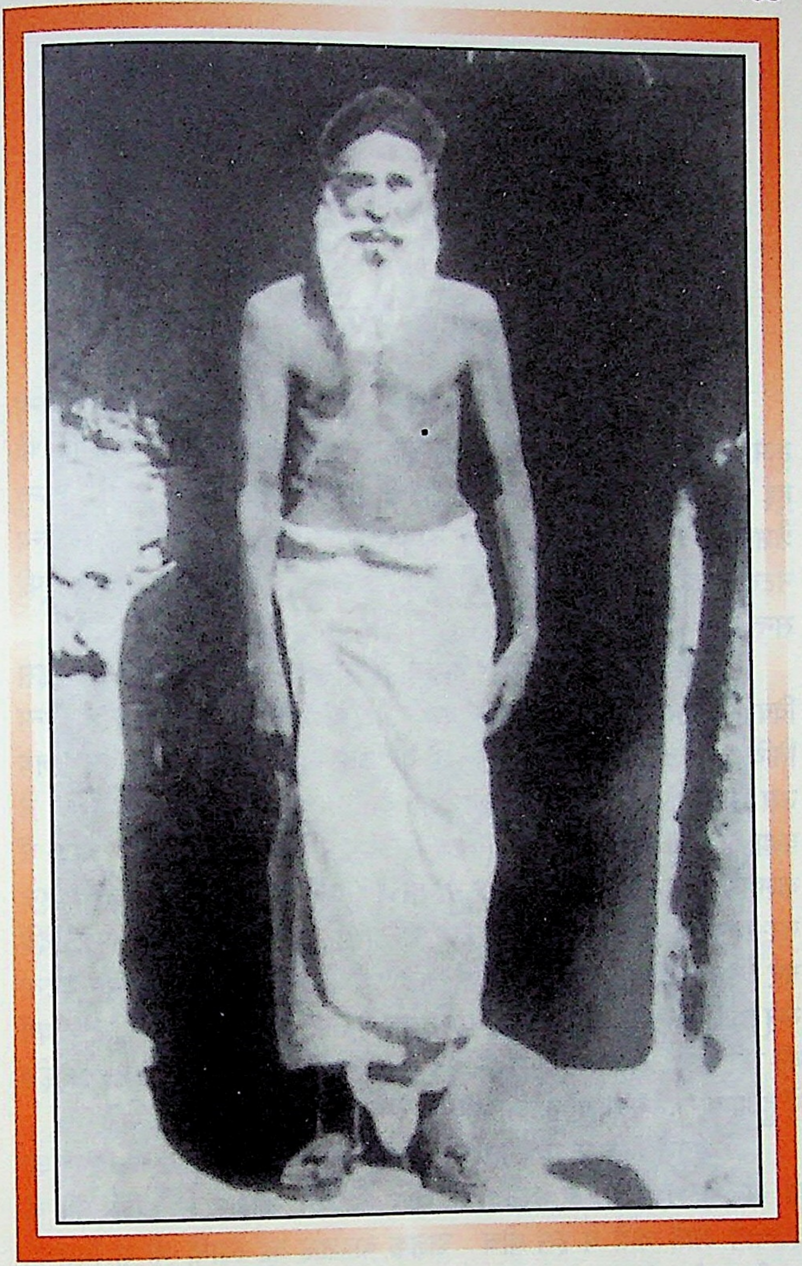
बाबा जी - त्रिहगाम

बाबा जी वाराणसी से कश्मीर आए थे और लगभग साठ साल तक त्रिहगाम में रहे। यहाँ पर इन्होंने एक आश्रम बनाया और फिर एक धर्मशाला भी बनवाई । आप अल्पाहारी थे। चाय मे काली मिर्च और लौंग डालते थे। तत्कालीन सरकार से आश्रम और धर्मशाला के लिए ज़मीन हासिल की और यहाँ पर लंगर चलता था।

आप कई-कई दिनों ज़मीन के अन्दर बैठकर समाधि लगाते थे जिससे इनकी आत्मिक शक्ति का विकास निरन्तर होने लगा। अनेक लोग इनके दर्शन को आते थे। एक अंग्रेज़ अफ़सर ने इन्हें लंगर के लिए मिलने वाली लकड़ी पर रोक लगा दी। कुछ दिनों के बाद जंगल में एक शेर ने उस अंग्रेज़ की पत्नी पर हमला किया । अंग्रेज़ अफ़सर ने अपनी भूल स्वीकारी , बाबा से क्षमा याचना की और लंगर के लिए लकड़ी मिलने के आदेश को फिर से चालू कर दिया।

त्रिहगाम के बाबा ने अन्तिम बार सन् १९७६ में भूमि समाधि लेकर इस संसार से विदा ली। अनेक लोग सामधि पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाने के लिए आए। इनके शिष्यों में लाला मेलाराम और पण्डित सोनुँ भट्ट बारसू का नाम विशेष उल्लेखनीय है । ये दोनों उनका स्मृति दिवस धूम-धाम से मनाते रहे।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



बाबा जी - त्रिहगाम (- १९७६ ई.)

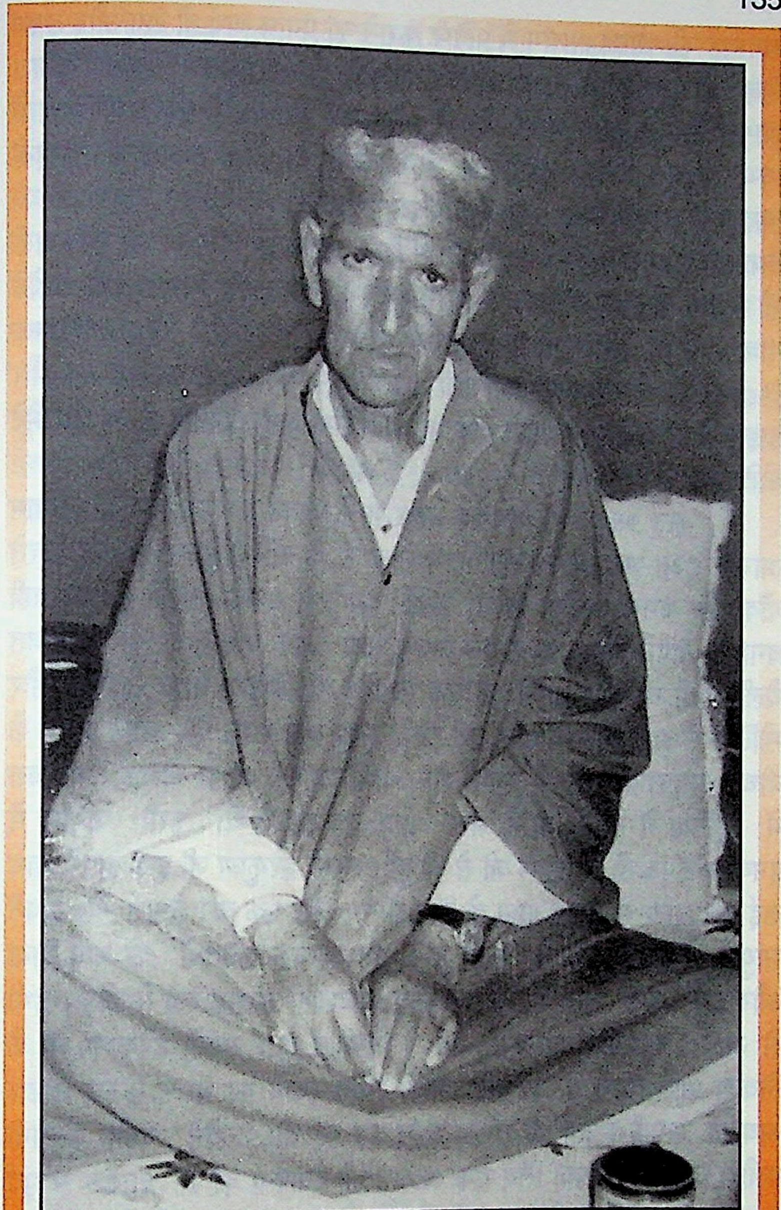


बादशाह कलन्दर

कश्मीर घाटी के बड़गाम ज़िले के शीलपोरा गांव में आपका जन्म हुआ। जन्म लेते समय कुछ विचित्र शंकुन प्रकट हुए और यह भविष्यवाणी भी हुई कि आप एक असाधारण प्रतिभा के धनी मनीषी सिद्ध होंगे। किन्तु शैशव काल में किसी विशेष प्रतिभा का प्रदर्शन न कर आपने एक बड़े सामान्य नटखट बच्चे का जैसा व्यवहार ही किया। अन्ततः एक बहुत ही प्रसिद्ध सूफी सन्त के रूप में विख्यात हुए।

आपका जन्म पण्डित नाथजी के परिवार में सन् १६१७ ई० (इस विषय में सन्देह है) मे हुआ। एक बार जब बादशाह कलन्दर से उनकी जन्म तिथि/वर्ष के विषय में पूछा गया तो वह ठीक से नहीं बता पाये थे फिर जब उस समय के आस-पास हुई धटना के बारे में पूछा तो बादशाह महाराज ने कहा था कि जब 'कन्यकूटी' (आज के बड़गाम ज़िले में स्थित एक गांव) में कश्मीरी हिन्दुओं का नरसंहार हुआ तो वे ७वीं कक्षा में पढ़ रहे थे। इस नर-संहार में मात्र एक बच्चे को छोड़ परिवार के सभी सदस्य ज़िन्दा जला दिये गए थे। बच्चे की रक्षा किस ने की, यह एक अद्‌भुत चमत्कार है। यह धटना सन् १६३१ ई० की है और उस समय इनकी आयु अनुमानतः १३ या १४ वर्ष की रही होगी। अतः यह अनुमान कि बादशाह महाराज का जन्म १६१७ ई० में हुआ होगा, किसी सीमा तक ठीक है।

इनके पिताश्री पं० नाथ जी टिक्कर कुपवाड़ा के स्वामी नन्दलाल जी के अनन्य भक्त थे। पं० नाथ जी प्रायः टिक्कर आश्रम में स्वामी जी के दर्शनार्थ आते जाते थे इस बीच बालक बादशाह का स्वामी जी से मिलना, उनसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करना स्वाभाविक ही था। माता पिता का बालक



बादशाह कलन्दर (१६१७ - १६६७ ई.)

बादशाह को गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट कराने का प्रयत्न व्यर्थ ही रहा और समय मिलते ही बादशाह ने स्वामी जी के आश्रम में स्थायी तौर पर प्रवेश किया। आश्रम में वह अन्य भक्तों/शिष्यों के समक्ष साधना में प्रकृति के विषय में स्वयं अनुभूत विचित्र दृश्यों को प्रकट करते थे। अतः स्वामी जी ने इन्हें 'कलन्दर' नाम दे दिया। आश्रम में उस समय करीब ४२ शिष्य स्वामी जी की छत्रछाया में वास करते थे। साधना में ऐसी अवस्था प्राप्त करने पर भी स्वामी जी ने इन्हें रोज़गार के लिए प्रयत्नरत रहने का आदेश दिया और तभी उन्होंने मात्र ५ रूपये प्रति मास के वेतन पर पण्डित काशीनाथ भट्ट अधिवक्ता (Advocate) के पास काम सम्भाला। बादशाह उनके फीस का हिसाब और डाइरी में तारीखों का व्योरा रखने के अतिरिक्त वकील साहब के घर पर छोटे मोटे काम भी करते थे।

सन् १९७० से बादशाह महाराज के जीवन का एक नया ही आयाम आरम्भ हुआ जब उन्होंने स्वामी नन्दलाल जी के आदेशानुसार चलते फिरते गाँव-गाँव भ्रमण आरम्भ किया। उन्होंने कहीं भी अपना स्थायी आश्रम नही बनाया। अपने भ्रमण के दौरान अपने साथ केवल एक छोटी सी सुसज्जित थैली रहती थी और उसमें वह एक सिगरेट की डिबिया थोड़ा सा चर्स और मोतियों से झड़ी चिल्लम और एक टार्च साथ रखा करते थे। अपने भ्रमण के बीच अनन्तनाग गाँव में उनकी भेंट स्वामी देवगिरी जी से भी हुई। नागबल में कुटिया में स्वामी जी के साथ प्रायः वह ठहरते थे। इसी परिसर में इनकी भेंट स्वामी हरे कृष्ण जी से भी हुई। स्वामी हरेकृष्ण जी इन्हें अपने साथ कई बार घाटी से बाहर यात्रा के लिए ले गए और एक बार नेपाल भी। अपने सायुज्य में स्वामी जी ने इनमें गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को भांप लिया और तभी इन्हें कलन्दर नाम के साथ 'बादशाह' उपसर्ग रूप में जोड़ा। तभी से आप ' बादशाह कलन्दर' नाम से विख्यात हुए। स्वामी हरेकृष्ण जी के निर्वाण प्राप्त करने के उपरान्त आपने स्थान-स्थान का भ्रमण करना छोडा। अब तो आपके भक्तों की संख्या बहुत बड़ गई थी। उन्होंने पंडोह कॉलोनी पलौरा जम्मू में आपके लिए एक आश्रम की स्थापना की। १९९० से पूर्व आप सिर्फ सर्दियों के कुछ महीनों में यहाँ आकर रहा करते थे अधिकांश समय घाटी में व्यतीत करते थे। किन्तु विस्थापन होने पर आपने अपना स्थायी निवास पलोरा आश्रम में रखा। आप छोटी-छोटी बातों में भी रुचि लेते थे जैसे

बाग-बगीचे की देख-भाल, छोटी वस्तुओं जैसे टोपी, पेन इत्यादि का संग्रह कर उन्हें संजो कर रखना, अतिथि स्वागत आदि। भक्तजन दूर-दूर से उनके आश्रम में हाज़िरी देने पहुँचते थे। वे नवागत का स्वागत, 'आओ, बड़े प्यार से' कहा करते थे।

सन् १९९७ ई० में अस्वस्थ रहने लगे और कुछ महीने इस अवस्था में व्यतीत कर २५ मई सन् १९९७ ई० के दिन ब्रह्मलीन हुए। आज भी उनके आश्रम में विधिवत पूजा पाठ और भजन कीर्तन चलता रहता है। वर्ष में दो बार 'नवरात्र' के दिनों में यहाँ पूजा का विशेष आयोजन होता है।

आश्रम में अब एक सुन्दर आकर्षक शिव मन्दिर का निर्माण भी हो चुका है। श्री मनमोहन थपलू जी ने बादशाह कलन्दर के विषय में जो जानकारी लिख कर भेजी है उसी के आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार किया गया है।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



श्री बालेन्द्र भट्ट

{ मॅच़ि बालुक }

बालेन्द्र भट्ट रैणावारी श्रीनगर निवासी पण्डित सुन्दर्शन और श्रीमती रुँच़माल के पुत्र थे । माता नित्य हारीपर्वत जगदम्बा शारिका की परिक्रमा करने सूर्योदय से पूर्व जाती थी। परिक्रमा से लौट कर जब वह घर पहुँचती तो घर के काम-काज में परिवार के सदस्यों - देवरानियों, बहुओं के साथ अगाध स्नेह के कारण बावली/बावरी जैसा व्यवहार करती थीं - जैसे किसी भी बात पर यह कहना 'मैं तुम पर वारी हो जाऊँ,' 'मेरी आयु तुम्हें लगे' इत्यादि । इस कारण रुँच़माल जैसी धर्म परायणा माता को पड़ोस के लोग प्रेम पूर्वक मॉच़ (बावली/बावरी) कहते थे और इनके पुत्र बालक को मच़ि हुन्द बालुक अर्थात् बावली का बेटा । मॅच़ि बालुक (बालेन्द्र) ने अध्ययन किया और शास्त्रोक्त निर्देशों का पालन करते हुए प्रौढ़ावस्था में पहुँचे।

प्रकाश और ज्ञान छिपाये तो छिपता नहीं । इसलिए जानकार लोगों ने इनके पास आकर शिक्षा ग्रहण करने का क्रम शुरु किया। इनके शिष्यों में कुछेक के नाम इस प्रकार हैं - पं० श्रीकण्ठ जी रम्बाल, श्री कण्ठ कौल 'वफा' पं० दीनाथ नाथ रैणा, श्रीमती तीज़माल, श्रीमती बोनिमाल, श्रीमती पोश कुज इत्यादि। ये सभी इनकी पुण्य तिथि - चैत्र कृष्ण पंचमी के दिन इन्हें सादर श्रद्धाँजलि भेंट करते हैं।

रैणावारी के प्रसद्धि हकीम लसकाक ने जब एक बार बालेन्द्र भट्ट (गुरु जी) के अस्वस्थ होने पर अपने बेटे को गुरु जी का नाड़ी परीक्षण करने भेजा तो हकीम साहिब को एक अजीब अनुभव हुआ। नाड़ी पकड़े हुए हकीम जी को जब बालेन्द्र ने यह पूछा कि क्या अनुभव कर रहे हैं तो हकीम का उत्तर था - ' नाडी से लगता है कि आप जीवित ही नहीं है परन्तु आँखों के सामने



श्री बालेन्द्र भटट् 'मॅचि़ बालुक'

आप प्रत्यक्ष सजीव दिखते हैं।' बालेन्द्र ने अपने सराहने के नीचे से 40 दिन के लिए हकीम की दी हुई दवाई की पुडिया निकाल कर हकीम जी को दे दी और कहा कि आप इसे वापिस लीजिये किसी और के काम आयेगी। अगले दिन जब हकीम पुनः आए तो देखा बालेन्द्र इस लोक से प्रयाण कर चुके हैं।

एक बार बालेन्द्र के घर के आस-पास रात के समय लगातार ६ महीने से एक चोर मौके की तलाश मे रोज़ आता था। मध्य रात्रि को बालेन्द्र अन्य परिवार जनों के साथ अपने कक्ष में सोये थे किन्तु बीच में वह बाहर वाले को सुनाने हेतु ज़ोर से कह उठे 'आओ, बाहर क्या रखा है अन्दर आकर देखो।' यह सुनकर चोर को आश्चर्य हुआ कि बन्द कमरे में बैठे आदमी को बाहर की कैसे खबर ? उस यह शब्द सूचनात्मक और प्रेरणात्मक लगे और उसने अपना चोरी का विचार तर्क कर दिया।

इसी प्रकार उनके जीवन से जुड़े कई दृष्टान्त हैं जो उनकी विशिष्ट प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



स्वामी भगवानदास जी

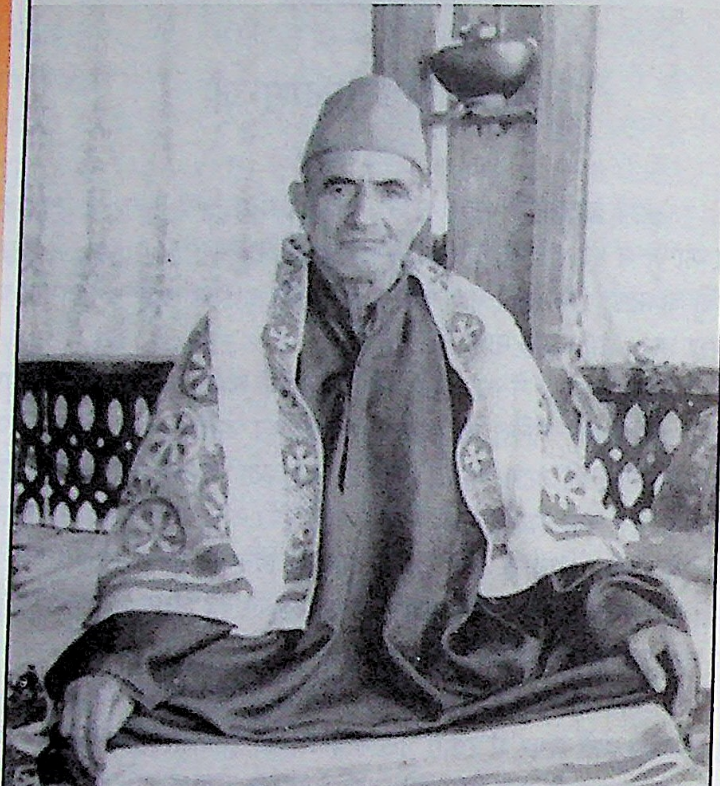
{ क्रॉलबब }

आप क्रालगोन्डॅ हंदवारा के पण्डित संसारचन्द कण्ठ के सुपुत्र थे। आप का जन्म फाल्गुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमासी के दिन सन् १६२० ई० में हुआ। आपके दो भाई थे। आप बाल ब्रह्मचारी थे और प्रारम्भ से ही भगवद्मार्ग पर अग्रसर हुए । आप एक मातृभक्त पुत्र थे।

सन् १६५७ में आप की भेंट टिक्कर के स्वामी नन्दलाल जी से हुई। उन्हांने इन्हें ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलने का आदेश दिया, किन्तु अपने आश्रम में आने की आज्ञा न दी। उन्होंने इनसे कहा कि जब तक आपकी माता जीवित है तब तक आप उनकी सेवा में लगे रहें। सन् १६६४ ई० में इनकी माता जी स्वर्ग सिधारी और उनके ग्यारहवें दिन की क्रिया समाप्त होते ही स्वामी भगवानदास जी सीधे स्वामी नन्दलाल जी की शरण में टिक्कर पहुँचे और इस प्रकार पूर्ण सन्यासी हो गए।

आप अपने गुरु महाराज की सेवा में पूरी तरह डूब गए। स्वामी जी ने प्रारम्भ में इन्हें लंगर में रखा। गुरु महाराज की कृपा से इनमें नम्रता, सादगी और सद्व्यवहार के गुण समा गये। चुप-चाप गुरु सेवा में लगे रहे और इनके उपदेशों को आत्मसात कर, उनके दिखाए गए मार्ग पर चलते रहे। यहाँ तक कि स्वामी नन्दलाल जी को विश्वास हो गया कि ये आश्रम सम्भालने योग्य हो गए हैं।

सन् १६६७ ई० में स्वामी नन्दलाल जी ने अचानक टिक्कर छोड़ने का निर्णय किया और वे श्रीनगर चले गए - भक्तजनों को उन्होंने कहा कि वे अब लौटेंगे नहीं, उनकी रक्षा अब क्रालबल जी करेंगे जो उनके बाद आश्रम को चलाएंगे।



स्वामी भगवानदास जी - क्रॉलबब' (१६२० - १६६० ई.)

स्वामी क्रालबब जी ने ठीक वैसा ही किया और सन् १६८६ ई० तक वहीं रहे। सन् १६८४ ई० में इनके एक भक्त ने इन्हें अपने नए मकान की नींव का पत्थर रखने की प्रार्थना की। किन्तु इन्होंने यह कहकर मनाही कर दी कि कश्मीरी पण्डितों को शीघ्र ही अपना देश छोड़ कर जाना होगा और ठीक वैसा ही हुआ।

सन् १६८६ ई० में इन्होंने टिक्कर छोड़ा और उधमपुर में आकर गढ़ी के पास एक आश्रम स्थापित किया। यही पर आश्विन कृष्णपक्ष चतुर्दशी सन् १६६० ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

स्वामी कुमार जी का कहना है कि बहुत समय पहले जब सन् १६७६ ई६ में स्वामी क्राल बब जी महाराज से पूछा गया कि गढ़ी में आश्रम बनाने की क्या आवश्यकता थी तो वे झट से बोले, " जल्द ही कश्मीरी पण्डित घाटी से निकल कर आयेंगे तो उनका यह पहला पड़ाव होगा ।" भगवद् करनी देखिये जब १६८६-६० में कश्मीरी पण्डित घाटी छोड़ने पर विवश हुए तो यही आश्रम उनके ठहरने का पहला पड़ाव बना। उनकी परेशानियों को देखकर स्वामी क्राल बब जी ने उन्हें आत्मज्ञान की ओर लेकर माया के भंवर से निकाला। श्री स्वामी क्राल बब आश्रम गढ़ी ऊधमपुर द्वारा प्रकाशित एक आरती पुस्तिका में क्राल बब जी के अनमोल वचन प्रथम पृष्ठ पर दिये गये हैं जिनमें प्रमुख वचन इस प्रकार हैं :-

१. 'कर्म प्रधान है, ध्यान धारणा बाद में ।'
२. 'ब्रह्म विद्या सब विद्याओं से बढ़ कर है।"
३. 'तन धोने से शुद्ध होता है पर मन और इन्द्रियाँ भगवत् नाम से शुद्ध होती हैं।
४. 'क्रोध सब दुखों की जड़ है।'
५. 'जो दूसरों का बुरा चाहता है वह खुद अपना नुक़सान करता है।'
६. 'सांसारिक प्रेम जन्म-मरण पर समाप्त होता है, पर भगवत् प्रेम आध्यात्मिक और सांसारिक कल्याण की ओर ले जाता है।'
७. 'सुख और शान्ति चाहते हो तो इच्छाओं का त्याग करो।'
८. 'वह मानव पशु के समान है जो अपने दायित्व से मुँह मोड़े।'
६. 'साधक को चाहिए वह हर समय होशियार रहे ताकि कोई शत्रु (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) उस पर आक्रमण न करे ।'



भवानी 'भाग्यवान' पण्डित

भवानी पण्डित वर्तमान कालीन सन्त परम्परा में महिला समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह नाम उनको माता पिता का दिया हुआ था। ससुराल का नाम तारावती था पर सब लोग उनको भवानी के नाम से जानते हैं। भवानी द्र्यद का विवाह मुरन (पुलवामा) में श्री तिलकचन्द पण्डित के साथ हुआ था। पिता का निवास चौगाम (काज़ीगुण्ड) में था।

बाल्यकाल से ही भवानी कृष्ण के प्रति आकृष्ट थीं और पूजा अस्तुति में अपना अधिकांश समय व्यतीत करती थी। उनकी भेंट शुपयान के श्री आनन्द जी महाराज से हुई । आनन्द जी ने भविष्यवाणी की कि भवानी कृष्ण के प्रति आकृष्ट है जिन्हें गोविन्द भी कहते हैं अतः गोविन्द ही भवानी के गुरु हांगे जो उन्हें सद्गति-प्राप्ति में पथ प्रदर्शक के रूप में सहयोग दंगे।

सौभाग्य से कुछ समय के बाद वह वनपोह निवासी पूर्ण पुरुष स्वामी गोविन्द कौल के सम्पर्क में आईं । स्वामी जी ने भवानी को गुरु दीक्षा दी । वह अपने गुरु के रंग में रंग गई । गुरु महाराज ने उनको नाम दिया - 'भाग्यवान' ।

भवानी 'भाग्यवान' पण्डित पढ़ी लिखी नहीं थी पर उसमें वह सब कुछ था जो एक ज्ञानी में होना चाहिए क्योंकि उसके ज्ञान चक्षु खुले थे। वह ज्ञान और भक्ति की सजीव मूर्ति थी । वह सदा ब्रह्म मुहूर्त में उठकर ध्यान मग्न हो जाती थी। अपने गुरु महाराज के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी और स्वामी गोविन्द कौल जी की कृपा से ही भवानी अद्भुत अज्ञात के रहस्य से परिचित हुई । वह जीवन पर्यन्त साधना रत रही। गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के साथ-साथ वह अध्यात्म साधना में लीन रही



भवानी 'भाग्यवान' पण्डित (१८६७ - १६७२ ई.)

और दो-दो भूमिकाएँ अत्यन्त सफलता के साथ निबाही।

भवानी 'भाग्यवान' द्यद ने अपने रहस्यानुभवों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। ऐसे भजनों की संख्या १५० से ऊपर है। उन्होंने अपने अधिकांश भजनों में गुरु महाराज का उल्लेख किया है। ' ये सारे भजन ज्ञान तथा भक्ति रस से भरपूर हैं। ' ऐसा उनके सुपुत्र मुम्बई निवासी श्री सोमनाथ पण्डित ने लिखा है। उनका कहना है कि ' माँ को कभी-कभी आने वाली घटना का आभास बहुत पहले से ही हो जाता था। मुम्बई आने के कई साल पहले ही उन्होंने कहा था कि हमें यहाँ (कश्मीर में) नहीं रहना है। हमारा परिवार वहाँ बसेगा जहाँ सागर होगा ।

लगभग ७५ वर्ष की आयु में भवानी 'भाग्यवान' पण्डित सन् १९७२ ई० में ब्रह्मलीन हुईं। इनके नाम पर मुम्बई में "श्रीमती भाग्यवान पण्डित ट्रस्ट" चल रहा है। इनके भजनों एवं लीलाओं का संग्रह 'मन-पम्पोश' शीर्षक से सन् १९९८ ई० में मुम्बई से प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में १४५ भजन संगृहीत हैं। ये भजन इन्टरनेट पर भी देखे और पढ़े जा सकते हैं।

इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्री पृथ्वीनाथ पण्डित है। वे भी पूर्ण पुरुष स्वामी गोविन्द कौल के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त दो और लड़के श्री निरंजन नाथ पण्डित एवं श्री सोमनाथ पण्डित हैं।

'मन पम्पोश' काव्य संग्रह का प्रकाशन नस्तालीक एवं देवनागरी दोनों लिपियों में हुआ है। इस पुस्तक के प्रकाशक सर्वश्री पृथ्वीनाथ पण्डित, निरंजन नाथ पण्डित, एवं सोमनाथ पण्डित हैं।

कुछ लीलाएँ इस प्रकार हैं :-

१. होशि आयस चानि सोगंधि लो लो।
सत-ग्वर म्यानि पम्पोशि ग्वँधि लो लो ।'

– मन पम्पोश' पृ० ३

२. सुय छुय ईश्वर सुय अमरेश्वर, सुय छुय सतग्वर म्योनुये।
तसकुन वुछिथ मन रूदुम थ्यर, सुय दिल तुँ दिलबर म्योनुये।।

–'मन पम्पोश' पृ० २८

३. अनू खबराह लोलॅकि वावय लो
कन दारय दिल फ्वल्लुॅनाव म्योनुय ।।

– मन पम्पोश पृ० ३३

४. चाऽन्य लोलन करऽस बाँबरे, गरि गरे सू हम सू।
पान नॉविथ सॉविथ च़्य लरे, गरि गरे सू हम सू ।।

–'मन पम्पोश' पृ० १०६

५. सहस्रुॅह दलुॅह वजुॅहमलॅ तति द्युत म्य दम हय
वुछ म्य शम हय पर्नेनुई पान ।।

– मन पम्पोश' पृ० १२८

६. म्य ज्ञानुॅह रव उदय गोम, सु दयगोम दयाये
नव बा नव निशानुॅह प्योम, सु दय गोम दयाये।।

–'मन पम्पोश' पृ०१७७

७. रामन होवुम नूरि अनवारय, लॉखमन द्राव गमखारुॅई म्यॅ
आमन कॉरनस दस्तबरदारुई लॉखमन द्राव गमखारुॅई म्यॅ ।।

– 'मन पम्पोश' पृ० १८५



मथुरा देवी

कश्यप की पावन धरती पर जिन सन्तों ने जन्म लिया उनमें से एक विशिष्ट नाम प्रातःस्मरणीय मथुरा देवी जी का है। स्वर्गीय पण्डित सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' के शब्दों में 'मथुरा लल्लेश्वरी का पुनर्जन्म ' था। वेरीनाग ज़िला अनन्तनाग - कश्मीर में एक कश्मीरी पण्डित श्री हरि कौल के घर मथुरा जी का जन्म श्रावण शुक्ल पक्ष अष्टमी संवत् १९३५ तदनुसार सन् १८७८ ई० में हुआ। कहा जाता है कि मथुरा जी का जन्म शव-दाह-गृह के समीप हुआ था। अल्पायु में ही वह अज्ञात सत्ता की खोज में भटकती रही। १४-१५ वर्ष की आयु में उनका विवाह अनन्तनाग निवासी श्री भगवानदास कान्दरू (भगलाल) के साथ हुआ लेकिन वैवाहिक जीवन केवल तीन वर्ष का ही रहा जब भगलाल अत्यन्त अल्पायु में ही अकस्मात् चल बसे।

मथुरा जी अपने मायके लौट आईं और दिव्य साधना में/ईश्वर भक्ति/ तथ्यान्वेषण में रुचि लेने लगी। धीरे-धीरे वह गहन साधना में लीन हुई। उनके भाई पण्डित गोविन्द कौल अपनी बहन से प्रभावित होने लगे और उन्होंने भी ईश्वर-साधना का संकल्प ले लिया। इन्हीं दिनों वह अपने अध्यात्म गुरु श्रीनगर निवासी पण्डित श्रीधर जू शराबी के सम्पर्क में आ गईं और मथुरा ने मथुरा देवी का रूप ग्रहण किया। यहाँ रहते हुए आप जनता में आध्यात्मिक ज्ञान वितरती रहीं। ज्ञान पिपासु दूर-दूर से आपके पास आया करते थे तथा आप से ज्ञान की बातें तथा आशीर्वाद पाकर कृतकृत्य हो जाते थे।

मथुरा के भाई पण्डित गोविन्द कौल ने वेरीनाग में घर के समीप ही बहन के लिये साधना हेतु एक कुटिया का निर्माण कर दिया और यहाँ मथुरा



मथुरा देवी (१८७८ - १९८५ ई.)

देवी जी ने तीन वर्ष निरन्तर घोर तपस्या की । दैव कृपा से उन्हें सिद्धि मिली और अद्भुत रूप, तेज और लावण्य से उनका चेहरा दमक उठा। भक्त जन देवी के दर्शनार्थ हज़ारों की संख्या में आने लगे। सन् १९४०-४१ में दशहरा (विजयदशमी) के पावन पर्व पर मथुरा देवी ने वेरीनाग से शादीपुर के लिए प्रस्थान किया। वहाँ कुछ समय रह कर वह श्रीनगर आईं और कन्याकदल (हब्बाकदल श्रीनगर) के निकट स्थित शिवालय मन्दिर की एक कुटिया में अपना निवास बनाया।

शिवालय मन्दिर से ही देवी ने अपने बहुमूल्य उपदेशों के द्वारा भक्तजनों में नव-चेतना का संचार किया और उन्हें परमसत्य को जानने, समझने और ग्रहण करने की प्रेरणा दी। दुर्गानाग श्रीनगर के स्वामी शिवरत्नगिरि के व्यक्तिगत निवेदन पर देवी ने दुर्गानाग श्रीनगर स्थित एक कुटिया में रहने के हेतु प्रस्थान किया। यहाँ देवी कुछ समय रही और यहीं से उनके भाई पण्डित गोविन्द कौल तथा उनके सुपुत्र पण्डित पृथ्वीनाथ कौल ने देवी को २७ वर्ष के बाद सन् १९६७ ई० में वेरीनागर अपने पैतृक निवास पर पहुँचाया। यहाँ वह १७ वर्ष तक ईशोपदेश देती रही और भक्तजनों का मार्गदर्शन करती रहीं। यहीं पौष शुक्ल पक्ष त्रयोदशी संवत् २०४१ तदनुसार जनवरी ५, १९८५ को मथुरा देवी ने प्राण त्याग किया और परमब्रह्म में विलीन हो गईं।

हज़ारों शोकाकुल हिन्दू-मुसलमान मथुरा देवी की शवयात्रा में सम्मिलित हुए और चिता को मुखाग्नि दी उनके ससुराल से एक मात्र बचे निकटस्थ प्रियजन पण्डित शम्भू नाथ कान्दरू ने। स्वर्गीय पण्डित सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' ने मथुरा देवी का जीवन चरित् २५ जनवरी १९८५ ई० को 'मार्तण्ड' में प्रकाशित करवाया। वही फरवरी १९९९ ई० में 'कोशुर समाचार' दिल्ली से पुनः प्रकाशित हुआ और प्रस्तुत परिचय पत्र को लिखने में उससे पर्याप्त सहायता ली गई है।

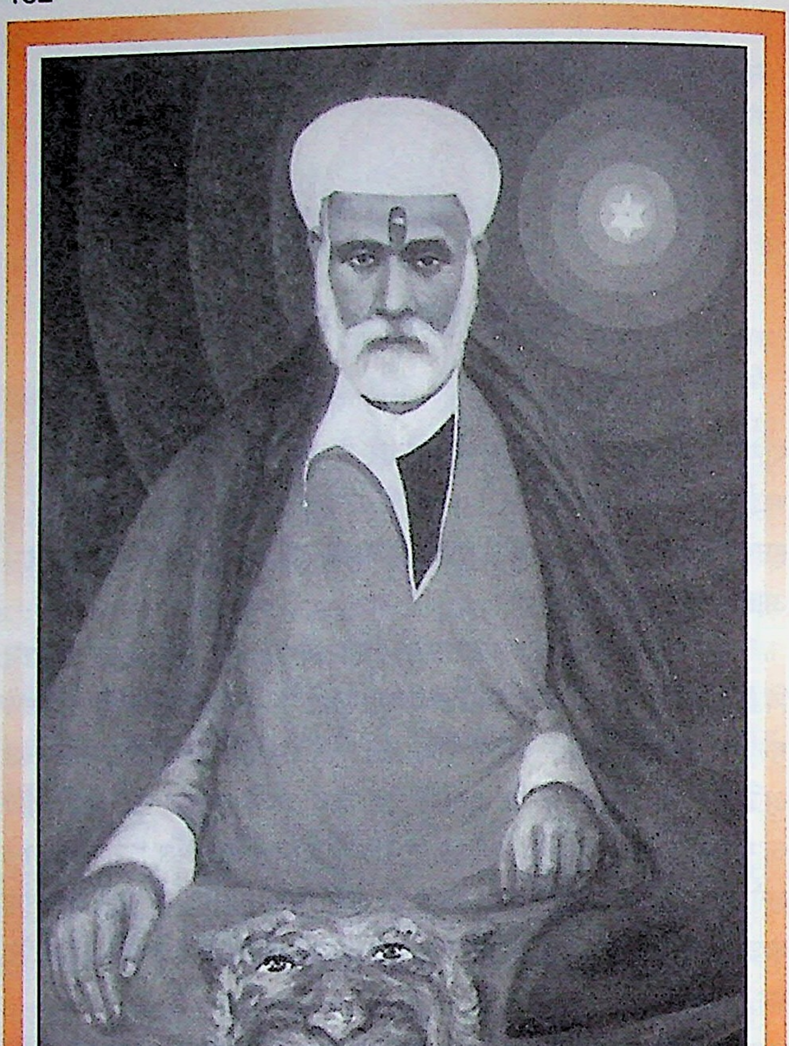


स्वामी महताब काक जी

स्वामी महताब काक जी अनन्तनाग ज़िले के क्रंडीगाम में श्री चन्द्र पण्डित के यहाँ जन्मे थे। इनके परिवार में चार भाई और एक बहन थी। दो भाई पं० जनार्दन काक और पं० बलजी काक इनसे बड़े थे और पं० प्रकाश जू इनसे छोटे थे। बहन 'तुतू' घराने में ब्याही गई थी और इनके पुत्र का नाम आनन्द जू 'तुतू' था।

स्वामी महताब काक साक्षात् शिव-स्वरूप और शैव-शास्त्र के परम विद्वान स्वामी रामजी के प्रथम शिष्य माने जाते हैं। महताब काक जी ने अपने गुरु की मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा की। गुरु महाराज के प्रति इनकी श्रद्धा अद्वितीय थी। कहते हैं कि इन्होंने एक बार अपने गुरुदेव को अपने गाँव आमन्त्रित किया। रात को जब स्वामी रामजी को खट्मल और पिसू तंग करने लगे तो यह बात उन्होंने अपने शिष्य को कही। गुरु महाराज को कहीं शारीरिक कष्ट न पहुँचे इस उद्देश्य से प्रेरित होकर महताब काक जी ने उनको अपने पेट पर सुलाया।

स्वामी रामजी से ही महताब काक जी ने शैवमत की दीक्षा ली और शैव शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। हिकमत (हकीमी, चिकित्सा कार्य) भी करते थे, अन्ततः उनका देहान्त मार्च सन् १९४२ ई९ में फाल्गुण शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन हुआ



स्वामी महताब काक जी (- १९४२ ई.)



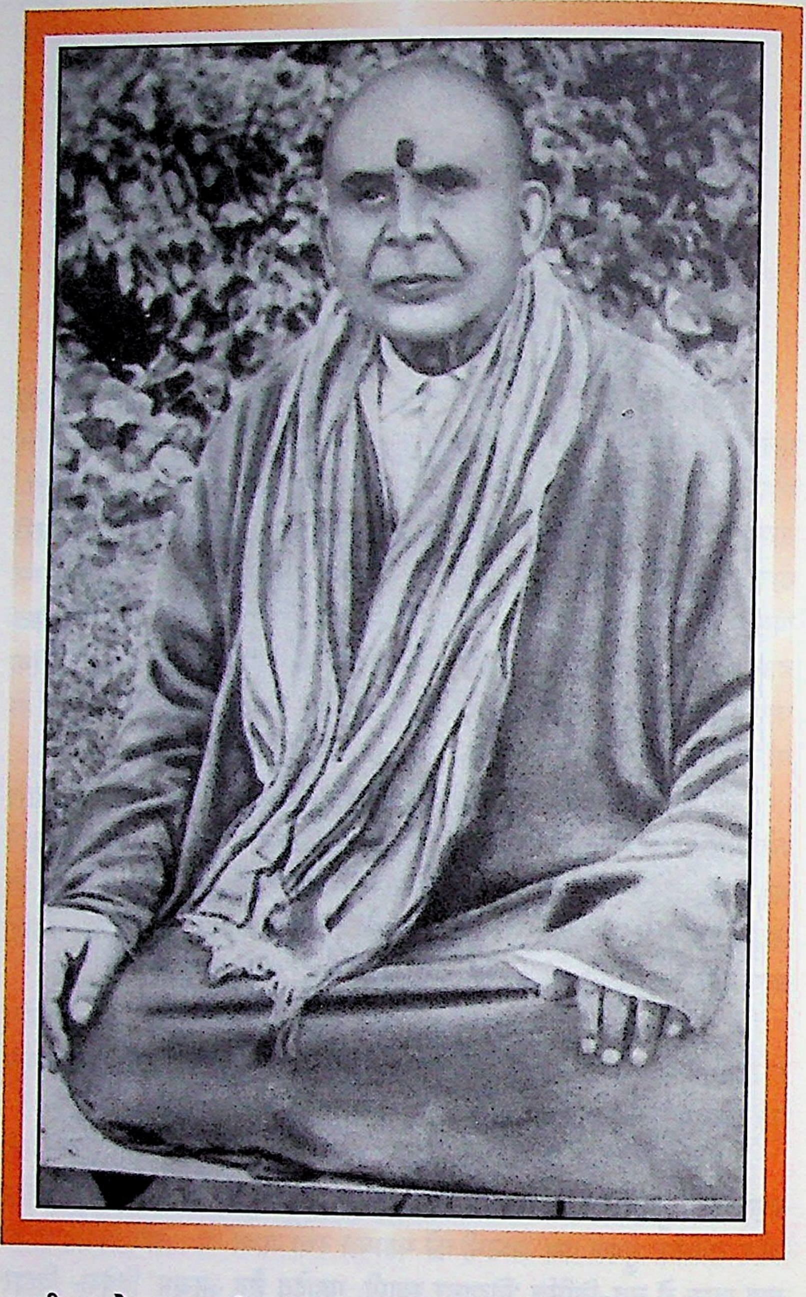
स्वामी महादेवकाक जी

स्वामी महादेवकाक का जन्म २९ ज्येष्ठ विक्रमी संवत् १९४९ को पुलवामा ज़िले में रत्नीपोरा गाँव में हुआ था। आरम्भिक शिक्षा उर्दू और फारसी भाषाओं में प्राप्त हुई थी तत्पश्चात् हिन्दी और संस्कृत भी सीख ली। अभ्यास रत रहने के परिणामस्वरूप उन्हें संस्कृत भाषा की सम्यक् जानकारी प्राप्त हुई और कश्मीर शैव दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया । सौभाग्यवश महादेव काक को स्वामी विद्याधर जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ जिनके आशीर्वाद से आपने त्रिक दर्शन के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष को आत्मसात किया। स्वामी विद्याधर आपके गुरु थे जिन्होंने साधना के पथ पर आप का मार्गदर्शन किया।

आपने रत्नीपोरा में अपना आश्रम बनाया । आजीवन ब्रह्मचारी रहे । उन्हें एकान्तवास प्रिय था और किसी प्राकर के प्रचार के पक्ष में नहीं थे। अधिकांश समय आश्रम में साधना रत रहते थे। आगन्तुक भक्तजनों को शैव सिद्धान्त एवं दर्शन की बारीकियों से परिचित कराते थे और इस प्रकार ज्ञान दान देकर दिव्यानन्द प्राप्त करते थे।

अपने अध्यात्मिक अनुभवों को स्वामी जी कश्मीरी कविता के माध्यम से वाणी प्रदान करते थे। ये कवितायें स्वामी जी की 'अमर वाणी' शीर्षक भजन पुस्तिका में प्रकाशित हो चुकी हैं।

३ नवम्बर सन् १९७३ ई० कार्तिक अष्टमी के दिन स्वामी जी ब्रह्मलीन हुए ।रत्नीपोरा आश्रम में विस्थापन से पूर्व हर वर्ष ज्येष्ठ पूर्णिमा और कार्तिक शुक्ल पक्ष अष्टमी को महायज्ञ रचा जाता था । अब विस्थापन के बाद जम्मू में नव-निर्मित 'विद्याधर स्वामी, महादेव शैव आश्रम' विवेक- विहार पुलोरा जम्मू में यह कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं ।



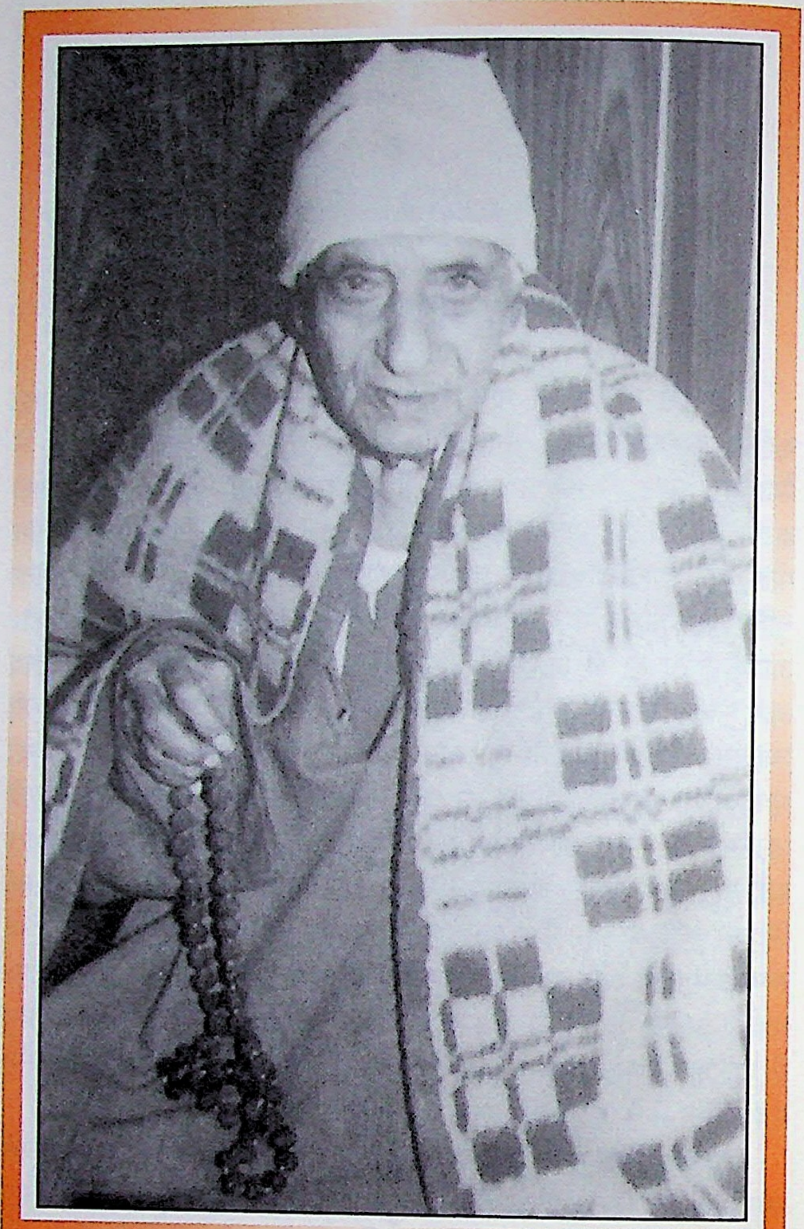
स्वामी महादेव काक जी (१८६१ - १६७३ ई.)



पण्डित महादेव जी भान

पण्डित महादेव जी भान, सुपुत्र श्रीमती तथा श्री कैलाश काक भान, कार्तिक कृष्णपक्ष नवमी सन् १९०५ ई० में बुधमुला (तहसील बारामुला) में पैदा हुए। माता श्री का नाम 'दयमाली' (दिवमाल) था। मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद आप एक अध्यापक बन गए और अपने गाँव से तीन मील दूर 'मलपोरा' गाँव में प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने लगे। । आपके पिता चूंकि एक अध्यात्म-मार्गी व्यक्ति थे अतः उनकी छाप आप पर भी पड़ी। आपके पिता जी ही आपके प्रेरणास्रोत बने। पिता जी के देह-त्याग के बाद आप सपरिवार ख़्वाजा बाग़, बारामुला आ गए और यहीं रहने लगे। स्वामी जी ज़्यादातर अपनी साधना में लीन रहते थे। आप कृष्ण भक्त थे तथा भगवद्गीता का नित्य नियम से पाठ करते थे। सन् १९४७ के कबाइली आक्रमण के समय आपका परिवार गाँव छोड़ कर शहर आया। यहाँ नेशनल हाई स्कूल करणनगर, श्रीनगर में आप १८ रुपये मासिक वेतन पर अध्यापक नियुक्त हुए। श्रीनगर में वे कई वर्ष रहे, इशबर-निशात में स्वामी लक्ष्मणजू के सम्पर्क में आये और दुर्गानाग श्रीनगर में मथुरा देवी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। यहाँ वे अपनी पत्नी गौरी के साथ देवी प्रवचन सुनने के हेतु आते थे। बचपन से ही आप कृष्ण भक्ति में लीन रहते थे तथा अधिकांश समय भजन कीर्तन एवं सत्संग में बैठकर कृष्ण स्मरण किया करते थे।

जब हालात सुधर गये तो महादेव जी भान पुनः अपने गाँव लौट चले और मलपोरा में अध्यापक का कार्य पुनः आरम्भ किया। सन् १९५५ में आप की नियुक्ति सरकारी अध्यापक के रूप में हुई । शिक्षा विभाग से सेवानिव्रत हो कर वे फतेहपोरा में पढ़ाते थे । पैतृक गाँव बुधमुला छोड़ कर अब वे बारामूला



पण्डित महादेव जी भान (१६०५ - १६६१ ई.)

में रहते थे जहाँ उन्होनें नये घर का निर्माण करवाया । यहीं मन्दिर निर्माण का कार्य आपने अपने कन्धों पर लिया। अपनी संचित पूंजी का अधिकांश भाग उन्होंने मन्दिर निर्माण कार्य में खर्च किया।

स्वामी महादेवी जी भान के व्यक्तित्व में हमें अद्भुत गुणों का मेल देखने को मिलता है। उनमें सहन करने की शक्ति अद्भुत थी। १९४५-४६ में उनकी २२ वर्षीय अविवाहित पुत्री पिट्टी और १६ वर्षीय पुत्र सोमनाथ एक ही दिन क्रमशः प्रातः और सायम्काल को ईश्वर के प्यारे हुए। इसके वर्षों बाद उनके एक और पुत्र का भी अकस्मात् देहान्त हुआ।

३ मार्च सन् १९७४ ई० में इनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हुआ। स्वामी जी तनिक भी विचलित नहीं हुए। अत्यन्त शान्त रहकर उन्होंने अपनी अद्भुत मानसिक शक्ति (दिव्य शक्ति) का परिचय दिया।

ख्वजबाग बारामूला में नव-निर्मित मन्दिर का नाम उन्हीं के नाम पर 'महादेव मन्दिर' रखा गया है। पत्नी के देहान्त के बाद वे श्रीनगर चले आये और स्तथू श्रीनगर में श्री बन्सीलाल कौल के घर रहने लगे। समाज में अब वे एक सन्त की प्रतिष्ठा पा चुके थे और असंख्य भक्तजन पूरी श्रद्धा और निष्ठा के साथ उनके साथ जुड़ गये। आपने अपने अनेक शिष्यों को दीक्षा दी। एक मन्दिर, एक धर्मशाला तथा गीता-भवन का निर्माण करवाया। आपने शीर-बारामुला के स्वामी आनन्द जी से दीक्षा ली थी। आप जगद्गुरु गोपीनाथ जी महाराज का अत्यन्त आदर करते थे तथा इनके दर्शन पाने के लिए प्रायः श्रीनगर आते रहते थे। आप बेसहारों तथा दरिद्रों की ख़ूब सेवा करते थे।

विस्थापन के विषय में उन्होंने अपने भक्त-जनों को पहले ही सचेत किया था। विस्थापन के बाद कुछ समय तक व तोपशेरखानिया में नव-निर्मित आश्रम में रहने लगे और यहीं वैशाख कृष्ण पक्ष सप्तमी ६ मई १९९१ ई० को आप ब्रह्म ज्योति में लीन हुए । आपके शिष्य तोपशेरखानिया आश्रम में आपका जन्म दिवस तथा सांवत्सरिक श्राद्ध बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। दोनों दिवसों पर श्रद्धा, भक्ति एवं शुचिता पूर्वक शास्त्र विहित विधि से यज्ञ रचाये जाते हैं।

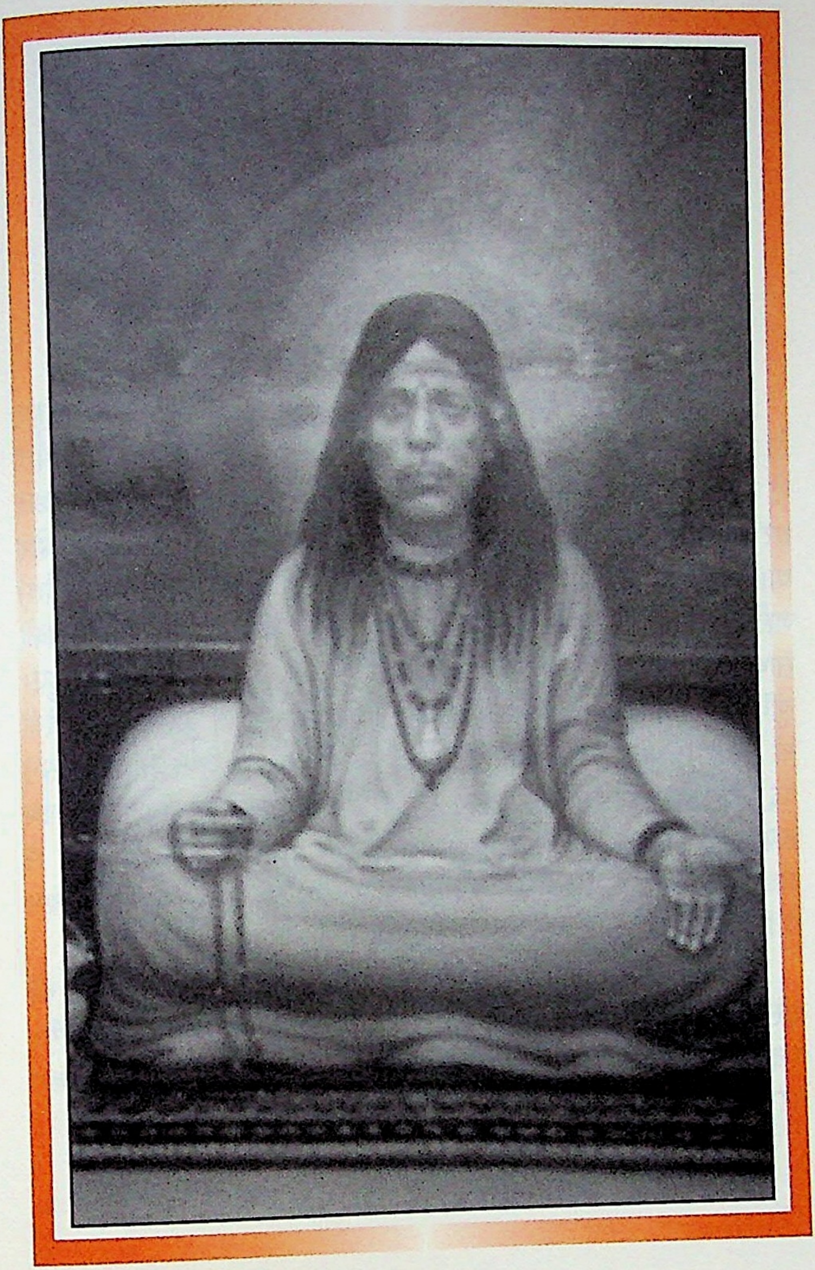
उनके सुपुत्र श्री मोतीलाल भान ने सन्त महादेव जी के विषय में जानकारी लिखित रूप में भेजी और प्रस्तुत परिचय लिखते समय उससे पर्याप्त सहायता ली गई है।



स्वामी महेश्वरनाथ जी मल्ला

स्वामी महेश्वरनाथ मल्ला उस समय के प्रसिद्ध डॉक्टर पण्डित कश्मीरी लाल मल्ला के सुपुत्र थे। इन का जन्म सन् १८८५ ई० में हुआ। आप बचपन ही से अध्यात्म की ओर आकृष्ट थे अतः भरसक प्रयत्न करने पर भी आपके पिता जी आपको स्कूली शिक्षा दिलाने में असमर्थ रहे। आपको विवाह-बन्धन में बन्धना भी स्वीकार न हुआ। आप घर पर ही साधना-रत रहे। आप एक शान्त एवं एकान्त प्रिय व्यक्ति थे। आप छुटपन से ही नंगे पाँव, गर्मी हो या सर्दी, प्रातः तीन बजे हारीपर्वत की परिक्रमा को जाते। आप कई बार अमरनाथ जी की यात्रा कर आए थे। अपनी साधना के दौरान एक बार आपने पूरे तीन महीने अन्न त्याग किया। इस अवधि में आप शाम को केवल शहद की तीन बूंदे पानी के एक गिलास में डाल कर पीते रहे। आप की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान का कोई फ़र्क न था। सभी धर्मावलम्बी आपका आदर करते थे। आपके आशीर्वाद से बहुतों के कष्ट दूर हुए। पूरे बारह वर्ष तक आप अपनी कुटिया के अन्दर ही रहे। न किसी को मुँह दिखाया न किसी का मुँह देखा। इस दौरान अग्नि प्रज्वलित कर आप उसमें आहुतियाँ डालते रहे। आपने अपने भतीजों को पहले से ही अपनी मरणतिथि के बारे में कह रखा था।

आपका स्वर्गवास २१ अप्रैल सन् १६५५ ई० में हुआ। आपके भतीजे हर साल आपका सांवत्सरिक श्राद्ध बड़ी धूमधाम से मनाते हैं।



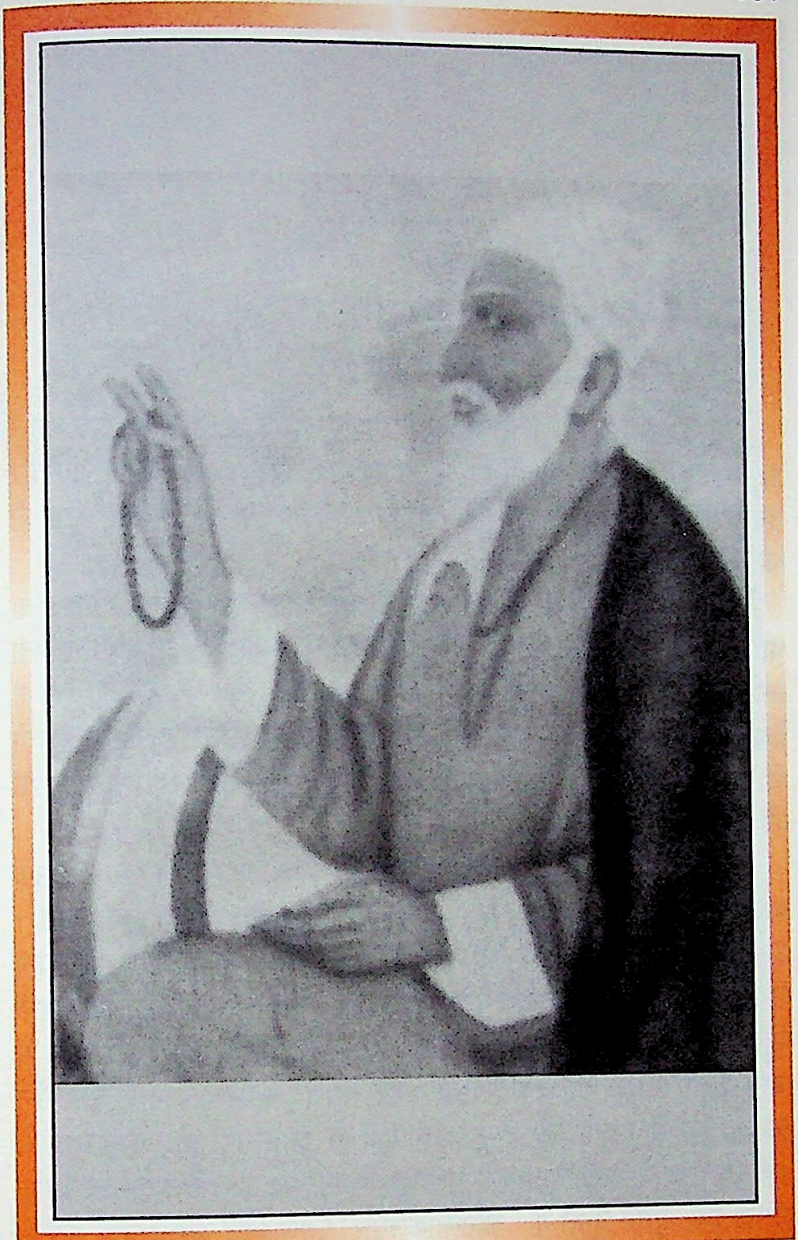
स्वामी महेश्वरनाथ जी मल्ला (१८८५ - १९५५ ई.)



पण्डित माधवजू धर

पण्डित माधवजू धर कश्मीर के एक प्रसिद्ध साधक एवं भक्त हुए हैं। आपके पिता का नाम पण्डित श्रीकंठ धर था। पण्डित श्रीकंठ धर के और दो सुपुत्र थे जिनका नाम पण्डित राज पण्डित धर तथा पण्डित महेश पण्डित धर था। पण्डित माधव जू धर का झुकाव आरम्भ से ही अध्यात्म की ओर था। आप देवी माँ की आराधना करने के लिए नित्य पोखरीबल (हारी पर्वत) जाते तथा नियम से हारीपर्वत की परिक्रमा करते । कहा जाता है कि आपकी साधना फल लाई और आपको पोखरीबल में ही साक्षात् देवी माँ के दर्शन हुए। चूंकि विवाह के बाद बहुत देर तक आपकी कोई सन्तान न हुई थी अतः देवी माँ ने आपसे कहा कि मैं स्वयं आपकी कन्या के रूप में जन्म ले लूँगी। सन् १६२१ ई० के ज्येष्ठ मास में आपके यहाँ एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम रूपा रखा गया। बड़ी होने पर इस देवी स्वरूपा पुत्री को अपने ही पिता से दीक्षा मिली। आगे चल कर यही सुप्रसिद्ध सन्त कवयित्री 'रो'प भवानी' के नाम से विख्यात हुई।

देवी माँ की दया से पण्डित माधवजू धर की आध्यात्मिक महानता की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। इन्होंने धर्म और जाति का विचार किये बग़ैर जन-जन के मन में सद्विचार भर दिए । जिनकी कोई सन्तान न थी पण्डित धर के आशीर्वाद से वे भी सन्तान सुख पाने में समर्थ हुए ।



पण्डित माधवजू धर



स्वामी मानसराम राजानक
{ धूनी साहब }

स्वामी मानसराम राजानक (राज़दान) बानमुहल्ला श्रीनगर में सवंत् १८०२ तदनुसार सन् १७४५ ई० में आषाढ़ शुक्ल पक्ष पंचमी के दिन जन्मे हैं। उनके पूज्य पिताश्री का नाम श्री जगन्नाथ राजानक (राज़दान) तथा माता जी का नाम जया देवी था।

बाल्यकाल से ही अज्ञात सत्ता के प्रति आकृष्ट थे । ऐसा प्रतीत होता था कि उनमें दैवी शक्तियाँ निहित हैं। एक दिन मट्टन तीर्थ में उनके माता पिता उन्हें साथ लेकर गये। बालक ने कहीं से मिट्टी उठाकर मुँह में डाल दी । माँ ने देख लिया, डांट पिटी । मुँह खोलने के लिये माँ ने चिला कर कहा लेकिन ज्यों ही बालक ने मुँह खोला माँ देखकर अवाक् रह गई । माँ ने सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड को बालक के मुँह में देखा।

पन्द्रह वर्ष की आयु तक वे विधिवत शिक्षा ग्रहण करते रहे। इसके पश्चात् इनका विवाह हुआ पर पत्नी दो वर्ष जीवित रहकर चल बसी । उनको पुनः विवाह करने के लिये विवश किया गया पर शीघ्र ही वे गृह त्याग करके ब्रह्म की खोज में निकल पड़े । बानिहाल, रामबन से होते हुए किश्तवाड पहुँचे वहाँ कुछ समय रहकर अन्त में सुध महादेव पहुँचे और यहाँ पास में गहन वन में चौदह वर्षों तक तपस्या करते रहे। दिव्य साक्षात्कार के बाद सन् १७६६ ई० में स्वामी जी जम्मू पहुँचे वहां से अमृतसर और अमृतसर से वज़ीराबाद आये यहाँ चिनाब के तट पर साधना रत रहे। तब तक वे काफ़ी प्रसिद्ध हुए। घूमते घूमते वे ' कोटलाकिलेधार' पहुँचे और यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे । उन्हें यहां शासक की ओर से जागीर मिली । यहीं उन्होंने सन् १८०१ ई० में अद्भुत चमत्कार कर दिखाया । अपने सामर्थ्य और



स्वामी मानसराम राजानक 'धूनी साहब' (१७४५ - १८२६ ई.)

अध्यात्मिक शक्ति से योगाग्नि प्रज्वलित की जो सन् १९४७ ई० में देश विभाजन के समय तक निरन्तर जलती हुई देखी गई थी। इस अलौकिक अद्भुत चमत्कारी कृत्य के कारण वे सारे इलाके में स्वामी 'धूनी साहब' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कहते हैं कि एक वर्ष ज़बरदस्त सूखा पड़ा और ब्रिटिश साम्रज्य का एक अधिकारी किसी साधु सन्त की तलाश में निकल पड़ा ताकि उसकी साधाना से इन्द्रदेव को मनाया जा सके। अधिकारी मानस राज़दान के पास पहुँचा, विनती की और उसके प्रयास से इन्द्रदेव सन्तुष्ट हुए और पंजाब में खूब वर्षा हुई। सरकार ने मानसराम राज़दान को पंजाब में जागीर दे दी।

एक दिन नौकर ने उनको सूचित किया कि आज उसके पुत्र का यज्ञोपवीत हो रहा है। सुनकर वह मौन हो गये। दिन में कुछ समय के लिये निद्रामग्न हो गये और कई घण्टों तक उसी अवस्था में रहे। जब जाग गए तो सबने उनके माथे पर सिन्दूर का टीका लगा देखा। नौकर ने पूछा - "महाराज आपके मस्तक पर यह तिलक कैसा ?" मानसराम राज़दान ने उत्तर दिया कि आप ही ने मुझे सूचित किया था कि आज श्रीनगर में मेरे पुत्र का यज्ञोपवीत हो रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि वे सूक्ष्म शरीर धारण करके दिन में श्रीनगर गये और अपने पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार में सम्मिलित हुए।

बानामुहल्ल, श्रीनगर में उनका निवास जिसे लोग 'धूनी भवन' भी कहते थे भक्त जनों के लिये तीर्थ स्थल बन गया था। कहते हैं कि श्रीनगर में एक भयंकर अग्नि-कांड में हब्बाकदल से लेकर फ़तेह कदल तक सैंकड़ों मकान जल कर राख हो गये लेकिन इस भीषण अग्निकांड में दो मकान नहीं जले; एक धूनी भवन - सन्त मानसराम जी का घर और दूसरा महान सन्त पण्डित चन्द्र काक बिन्दरू का घर। शेष सब निवास-स्थान जल कर नष्ट हो गये।

मानसराम जी एक ब्रह्मज्ञानी सन्त थे और एक दक्षिण भारतीय भक्त पर कृपा करके उन्होंने उसे एक अद्भृत दृश्य का आभास कराया था। स्वामी जी ने अपने अन्तिम समय की भविष्यवाणी की थी और ठीक उसी दिन फाल्गुण कृष्ण पक्ष दशमी (शिवरात्रि से तीन दिन पूर्व) सन् १८२६ ई० में उन्होंने देह त्याग कर परलोक प्रस्थान किया।

'धूनी भवन' बानामुहल्ला, हब्बाकदल, श्रीनगर में आज भी विद्यमान है । विस्थापन से पूर्व प्रति वर्ष राज़दान परिवार के लोग यहाँ यज्ञ रचाते थे। इसी भवन के परिसर में आज 'टाइनी टॉर्टस हाई स्कूल' स्थित है।

श्री पी० एन० खज़ानची तथा एक और बन्धु (जिन्होंने अपना नाम नहीं लिखा है) ने सन्त मानस राज़दान (राजानक) के विषय में कुछ जानकारी लिख कर भेजी है, जिसके आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र लिखा गया है।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



पण्डित मार्नुकाक 'गोजा'

पण्डित मार्नुकाक जी का जन्म सन् १८४२ ई० में अनन्तनाग (कश्मीर) में हुआ। आपके पिता का नाम ताबॅु जू गोजा (सुपुत्र गुलाब जू गोजा) था। इनका देहान्त केवल बाईस वर्ष की अल्पायु में हुआ अतः मार्नुकाक जी का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा एवं विवाह इनके नाना जी ने करवाया। आप उर्दू फ़ारसी तथा संस्कृत भाषाएँ जानते थे। आपके यहाँ एक सन्तान ने भी जन्म लिया पर आपका मन गृहस्थ जीवन में न लगा। अन्त में आपने पण्डित ईश्वर जू राज़दान, जो श्रीनगर में चिंक्राल मुहल्ला में रहते थे, का शिष्यत्व स्वीकार किया। फिर आप गोतमनाग अनन्तनाग चले गए और अन्त समय तक वही रहे। अपनी साधना से आपने काफी सिद्धियाँ प्राप्त की। कहा जाता है कि आपकी शरण में जो भी आता था आप उसे आशीर्वाद देते और उसका काम बन जाता था।

पण्डित मार्नुकाक गोजा के विषय में उस युग के शासक महाराजा प्रताप सिंह ने कहा है – " मैं ने आज तक ऐसा तेजस्वी साधु नहीं देखा है।" महाराज ने जब पुत्र प्राप्ति की कामना उनके सामने की तो सन्त ने उत्तर दिया – " कश्मीर के सन्तों ने हरीसिंह को राजा बनाने का निर्णय लिया है।"

गौतमनाग में वर्षों साधानारत रहने के बाद उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। इन्हीं दिनों इनके पुत्र का निधन हुआ। पर इसका उनकी दिनचर्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सांसारिक माया मोह और बन्धन उनके लिये बेमानी थे।

कुछ दिनों वे हब्बाकदल में पण्डित टीकालाल खज़ांची के घर पर रहे।



पण्डित मार्नुकाक गोजा (१८४२ - १९२२ ई.)

एक दिन उन्होंने ख़ज़ांची जी से कहा " आपके एक मित्र माधव जू धर जम्मू में रहते हैं" और इतना कहकर खामोश हो गए। एक सप्ताह के बाद माधवजू धर का एक पोस्टकार्ड टीकालाल जी के पास आया जिसमें उन्होंने एक अभूतपूर्व घटना, जो उनके पुनर्जन्म से सम्बन्धित है, का वर्णन किया था। मस्ताना साधु इन्हें 'मानपादशाह' कहते थे। पण्डित मार्नुकाक गोजा पण्डित टीकालाल ख़ज़ांची के गुरु थे।

सन् १६२२ ई० में अस्सी वर्ष की आयु में आपने देहत्याग किया। जिस दिन आप ने भौतिक काया त्याग दी उस दिन फाल्गुन शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि थी। आपकी मृत काया के अन्तिम संस्कार में सभी धर्मों के मानने वाले लोगों ने अश्रुपूरित नयनों से भाग लिया।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



स्वामी माहेश्वरनाथ

श्रीनगर शहर से केवल चौदह मील की दूरी पर हरीश्वर (हर्षीश्वर, हर्षेश्वर) पर्वत के दामन में खोनमोह (क्षण मोह) गाँव स्थित है। इसी गाँव के निवासी पण्डित विश्वनाथ धर के परिवार में एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया। परिवार की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। बालक बहुत बुद्धिमान था लेकिन घर वाले उन्हें पाँच जमात से अधिक नहीं पढ़ा सके और दस वर्ष की अल्पायु में पुरुषयार-श्रीनगर में पण्डित नारायण जू पारिमू के घर पर नौकर के रूप में काम करने लगे। घर की मालिकन का व्यवहार नौकर के साथ अच्छा नहीं था पर श्रीनगर आते ही बालक शारिका माता के भक्ति आकर्षण में बन्ध गये और कुछ समय के बाद नौकरी छोड़ कर स्थायी रूप से माँ के चरणों में रहने लगे। वर्षों साधना रत रह कर अन्त में सिद्धि प्राप्त हुई और माँ ने गुरु पाने की योजना स्वप्न में प्रकट होकर बतायी। माँ के दर्शन पाकर वे वितस्ता घाट पर निश्चित् समय पर प्रातः गये और गुरु से भेंट हुई जो उनका अपना एक निकटस्थ सम्बन्धी था।

गुरु से दीक्षा प्राप्त कर माहेश्वर नाथ कर्म साधना में मग्न रहने लगे। उनके गुरुदेव के विषय में किसी को कोई जानकारी नहीं थी। वे एक गुप्त साधु एवं ईश्वर भक्त थे और किसी प्रकार के प्रचार अथवा लोक प्रशंसा में विश्वास नहीं रखते थे। वे पूर्णतः अज्ञात रहना ही पसन्द करते थे।

कुछ समय व्यतीत होने के बाद माहेश्वरनाथ जी को सिद्धि प्राप्त हुई और उसके करामाती जीवन व्यवहार से लोग प्रभावित हो उठे। उनके श्रद्धालु भक्त-जन उन्हें भगवान जी के नाम से पुकारने लगे और इसी नाम से वे अन्त समय तक चर्चित रहे।



स्वामी माहेश्वरनाथ (१९११ - १९९० ई.)

माता शारिका के दरबार से सिद्धि प्राप्त कर माहेश्वरनाथ अपने गाँव खोनमोह लौट आये और गाँव में सोमनाग जलाशय के पास 'शान्ति महेश आश्रम' की स्थापना की। स्वामी जी को दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य शान्ति प्राप्ति के हेतु ही प्रयत्नशील रहता है। शान्ति को तलाशना परमावश्यक है और यही मनुष्य का धर्म है।

स्वामी जी प्रारब्ध पर पूरा विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि भाग्य में जो लिखा हुआ है वह होकर रहेगा केवल ईशानुग्रह से ही स्थिति में परिवर्तन सम्भव है अन्यथा बिल्कुल नहीं। स्वामी जी अपने शिष्यों को भौतिक आकर्षणों से दूर रहने का परामर्श देते थे। वह यहाँ तक कहते थे – ' सिद्धि और मोक्ष को भी पीछे छोड़ कर आगे जाना होगा तब परम सौन्दर्य के दर्शन हो सकते हैं '।

स्वामी जी का मानना था कि साधना के पथ पर इन्द्रिय निग्रह का अपना विशेष महत्त्व है। उस युग के अन्य महात्मा और सन्त स्वामी माहेश्वर नाथ का पूरा सम्मान करते थे। स्वामी विद्याधर और गौतम नाग के स्वामी गाश काक उन्हें एक महान सिद्ध पुरुष मानते थे।

खोनमोह और इसके आस-पास के हिन्दू-मुसलमान सब स्वामी जी के आश्रम में पहुँच कर कष्ट निवारण के हेतु प्रार्थना रत रहते थे।

विस्थापन के तुरन्त बाद सन् १६६० ई० में स्वामी जी महा-समाधिस्थ हुए। उस समय उनकी आयु ७६ वर्ष थी। श्री उपेन्द्र भट्ट ने स्वामी माहेश्वर नाथ जी पर अंग्रेज़ी भाषा में एक लेख लिखा है जो कोशुर समाचार' के फरवरी १६६६ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार करते समय उस लेख से सहायता ली गई है।



स्वामी मिर्ज़ कॉक जी

स्वामी मिर्ज़ काक जी ज़िला अनन्तनाग के हांगलगोंड (कोकरनाग के निकट स्थित) गाँव के निवासी पं० लर्स कौल पण्डित के छोटे सुपुत्र थे। आपके बड़े भ्राताश्री का नाम भोला पण्डित (कश्मीरी में बुलॅ पण्डित) था जिनके पांच सन्तान थे। परिवार बड़ा सम्पन्न था। आप पतस्वामिन कौशिक गौत्र से थे। स्वामी जी का जन्म पौष शुक्ल पक्ष प्रतिपदा सन् १७४४ ई० में हुआ था। शैशव काल से ही उनमें विशेष लक्षण विद्यमान थे । वे सामान्य से हटकर थे। बचपन से ही वे सादगी और पवित्रता की ओर आकर्षित हुए तथा विशुद्ध धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रबल एवं परिपक्व प्रवृत्ति का आभास उनमें प्रकट हुआ । अपने जीवन के आरम्भिक दिन उन्होंने ज़िला पुलवामा के अच्छ़न गाँव में अपनी मासी के घर व्यतीत किए। मासी के स्वर्गवास होने के उपरान्त आप अपने गाँव लौट आए। अच्छ़न गाँव में आप जगद्म्बा देवस्थान और जगन्नाथ मन्दिर के रख-रखाव, खेतों की रखवाली और अन्य सेवा कार्य में दिन रात लगे रहते थे। इनके विषय में मान्यता है कि एक बार जब ये खेतों में काम कर रहे थे, तब इनकी मौसी इनके लिए खाना लेकर चली, किन्तु रास्ते में क्षणिक बाढ़ के कारण वे समय से इनके पास न पहुँच पाईं। इस बीच माँ जगद्म्बा ने इनकी मौसी का रूप धारण किया और एक थाली में खीर परोस कर इन्हें अपने हाथ से खिला दिया। तत्पश्चात् माँ जगद्म्बा अदृश्य हो गईं। बाद में मौसी के भोजन लाने पर यह रहस्य खुला। तभी से इनका मुखमण्डल तेजोमय हो उठा।

हांगलगोंड़ में आप अपने घर पर और कभी कोकरनाग के छल-छल बहते झरनों की ध्वनि में रम जाते और साधना में लीन रहते थे। श्रीनगर



स्वामी मिर्ज़ काक जी (१७४४ - १८३० ई.)

स्थित देवी दरबार माता शारिका के देवीआंगन परिसर में आपने देवी के एक अनन्य भक्त से दीक्षा पाई और हांगलगोड़ में गोओं को चराते-चराते साधना से अर्जित ज्ञान को अपनी वाख वाणी से प्रकाशित किया। इनकी आरम्भिक वाणी के कुछ अंश इस प्रकार हैं :-

देवी सरस्वती बॅड चाज्ञ वानिय
चोयशीथ लछन व्यॉपिथ पानय ।
युसुय ज़ानि तय सुय बोज़ माने
गूँ त्रावु यन्द्रो लय ह्यो म्यॉञी ।।

इसके उपरान्त उनकी वाणी वाक्य एवं शब्द संरचना की मुहताज न रहकर गम्भीर विषयों का वर्णन करते-करते निर्भीक रूप से चलती रही ।

सन् १७४० ई० से क्रूर पठान राजाओं के निर्दय व्यवहार से तंग आकर कश्मीरी पण्डित घर बार छोड़ कर देश के विभिन्न शहरों लखनऊ आदि रहने के लिए विवश हुए थे। इन क्रूर शासकों से जनता को मुक्त कराने के लिए पंजाब के सिखों ने सन् १८१७ में कई बार प्रयत्न किए किन्तु विफल रहे। दिसम्बर सन् १८१८ में स्वामी मिर्ज़ काक जी ने सिखों के सफल होने और सामान्य शान्त वातावरण की स्थापना की भविष्य वाणी की थी जो निम्नलिखित 'वाख' से स्पष्ट हो जाती है :-

नरसिंह भगवान शब्द तॅ नारान
शब्दय द्राव वाक् गव वाक्-गुरु।
गुरु नानक पंथ वाक्-गुरु,
सिंधीय अवतार छुय सूॅत्य सूॅतिय ।।

शाहजीमर्ग मे हुए घमासान युद्ध के पश्चात सिखों की विजय में जहाँ धर भ्राताओं (राज धर तथा बीरबल धर) का योगदान रहा वहीं स्वामी जी की शुभ आशिष भी रंग लायी । पुलवामा तहसील के भीतर शाजीमर्ग नाम की ढलान पर पठान सेना सिखों के द्वारा परास्त हो गई।

मिर्ज़काक के जीवन चरित के बारे में पर्याप्त मत भेद हैं । डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित अपने एक लेख ' मिर्ज़ काक' जो 'कोशुर समाचार' दिल्ली के फरवरी १६६६ ई० अंक में प्रकाशित हुआ है, में लिखते है कि हांगुल

गुंड के एक सिद्ध पण्डित अनुभवी महापुरुष श्री परकाक से जो बातें उन्होंने सुन रखी थी उनके आधार पर मिर्ज़ा काक जी के माता पिता पुलवामा के अच्छ़न गाँव में रहते थे। उनके दो पुत्र थे - भोला और मिर्ज़ा *। बड़ा लड़का भोला पढ़ा लिखा था और फारसी भाषा का ज्ञाता था। छोटा अशिक्षित किसान बालक था। अकस्मात् इनके पिताजी का देहान्त हुआ और हांगलगुंड में इनके मौसा और मौसी ने जो एक सम्पन्न ज़मींदार परिवार से सम्बन्ध रखते थे, पहले ज्येष्ठ पुत्र को अपने साथ हांगल गुंड लिया, उसे अपना दत्तक पुत्र बनाया जो बाद में भुल्लकाक हांगुल कहलाया और कुछ समय के बाद मिर्ज़ा और उसकी माँ को भी हांगुलगुंड बुलाया लेकिन तब मिर्ज़ा की दिव्य दृष्टि खुल चुकी थी। तनिक अक्षर ज्ञान प्राप्त करके वे स्वयं अपनी रचनाओं को शुद्ध-अशुद्ध भाषा में लिखते थे।

आरम्भिक काल से ही मिर्ज़ काक अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखते थे।

श्रीनगर से आये कारदार पण्डित श्रीधर जू की सेवा में मिर्ज़ा' ने कुछ समय व्यतीत किया। उन्होंने मिर्ज़ा काक को जीव, जगत, ईश्वर, सृष्टि, संहार, कर्म, फल, बन्धन, मोक्ष आदि समस्त आवश्यक दार्शनिक विषयों को समझा दिया। कारदारी का काम पूरा हो चुकने पर जब श्रीधर जू श्रीनगर गए तो मिर्ज़ा काक को भी साथ ले गए। कुछ समय बीत जाने पर वे पुनः हांगलगुंड आकर अपनी कुटिया में रहने लगे।

डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित का मानना है कि पण्डित श्रीधर जू एक निमित्त मात्र रूप में उनके गुरु बन गये। वास्तविक अनुग्रह तो उन पर पहले स्वयं जगदम्बा ने किया और बाद में दवी लल्लेश्वरी ने। श्रीनगर में मिर्ज़ा काक प्रायः श्री श्रीधर जू धर के यहाँ रहते थे। वे फ़तेहकदल के एक सम्पन्न व्यक्ति थे।

एक समय जब कालरा की बीमारी फैलने से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मचा था तो काक जी ने इस बीमारी को अपनी दिव्य शक्ति से अपन गाँव आने से रोक लिया।

---

* डॉ. बलजिन्नाथ पण्डित ने 'मिर्ज़ा काक' शब्द का प्रयोग अपने लेख में किया है जबकि हम 'मिंज़ काक' शब्द का व्यवहार बोलचाल में करते हैं।

उन्होंने कुछ धान के दाने सभी लोगों में बांटे जिसके कारण उनका गाँव इस महामारी से अछूता रहा।

स्वामी काक जी आश्चर्य चकित कर देने वाली घटनाओं से तथा करामात करने से बहुत परहेज़ करते थे उन्होंने एक वाख में कहा है :-

करामात खुँद नुमायी
यॅस कांसि खुँश आयी
दॉवा खुदायी
फायदा क्या, राम राम ।।

बनुमुहल्ला श्रीनगर के निवासी उनका एक परम भक्त जब अपने नव-विवाहित पुत्र की मृत्यु से तड़पता हुआ स्वामी जी के सम्मुख विलाप करने आया तो स्वामी जी को अपने भक्त को इस दुख से बाहर निकालने के लिए अपनी दिव्य शक्ति का प्रयोग करना ही पड़ा और शोक सन्तप्त परिवार को एक दिन पूर्व रचाए विवाह की खुशियां लौटानी पड़ी। भक्त के मृत पुत्र को जीवन दान देना ही पड़ा।

उनके जीवन के अनेक प्रसंग हैं जो उनकी दैवी शक्तियों की प्राप्ति और ईश्वरीय कृपा के धनी होने के ठोस प्रमाण हैं।

स्वामी जी इस धरती से वैकुण्ठ धाम के लिए ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वितीया सन् १८३० को प्रस्थान कर गए । कहते हैं उस समय उनकी आयु ८६ वर्ष थी। इनके समाधि स्थल पर कई विख्यात महापुरुषों ने साधना की है। जिनमें प्रमुख हैं डण्डी स्वामी, स्वामी लक्ष्मण जी, स्वामी नन्द लाल बब जी, स्वामी प्रसाद काक जी (ग्रट बब) आदि। आज कल स्वामी जी के नाम से एक ट्रस्ट की स्थापना की गई है जिसकी एक शाखा नगरोटा जम्मू में है।

हांगलगुंड कोकरनाग कश्मीर में काक साहिब की समाधि है।

अपनी अद्‌भुत अलौकिक शक्तियों के कारण मिर्ज़ काक अपने समय मे काफ़ी चर्चित रहे हैं। जीवन के अन्तिमकाल में वे हांगलगुंड में अपनी झोंपड़ी में ही रहे। मिर्ज़ काक ने अपने अन्तिम दिवस के संवाद-उपदेश में वेर्द काक को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। तदनंतर शिष्य मण्डली के तीसरे गुरु श्री तोर्त काक बने। श्री तोर्त काक के ही प्रधान शिष्य श्री परकाक थे।

मिर्ज़ काक जी कश्मीर में पठानों और सिखों के राज्यकाल में विद्यमान थे। डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित ने लिखा है कि पठानों ने १७५३ से १८१६ ई० तक कश्मीर में राज्य किया तो मिर्ज़ काक १७५० और १८५० के बीच में अवश्य विद्यमान रहे होंगे।

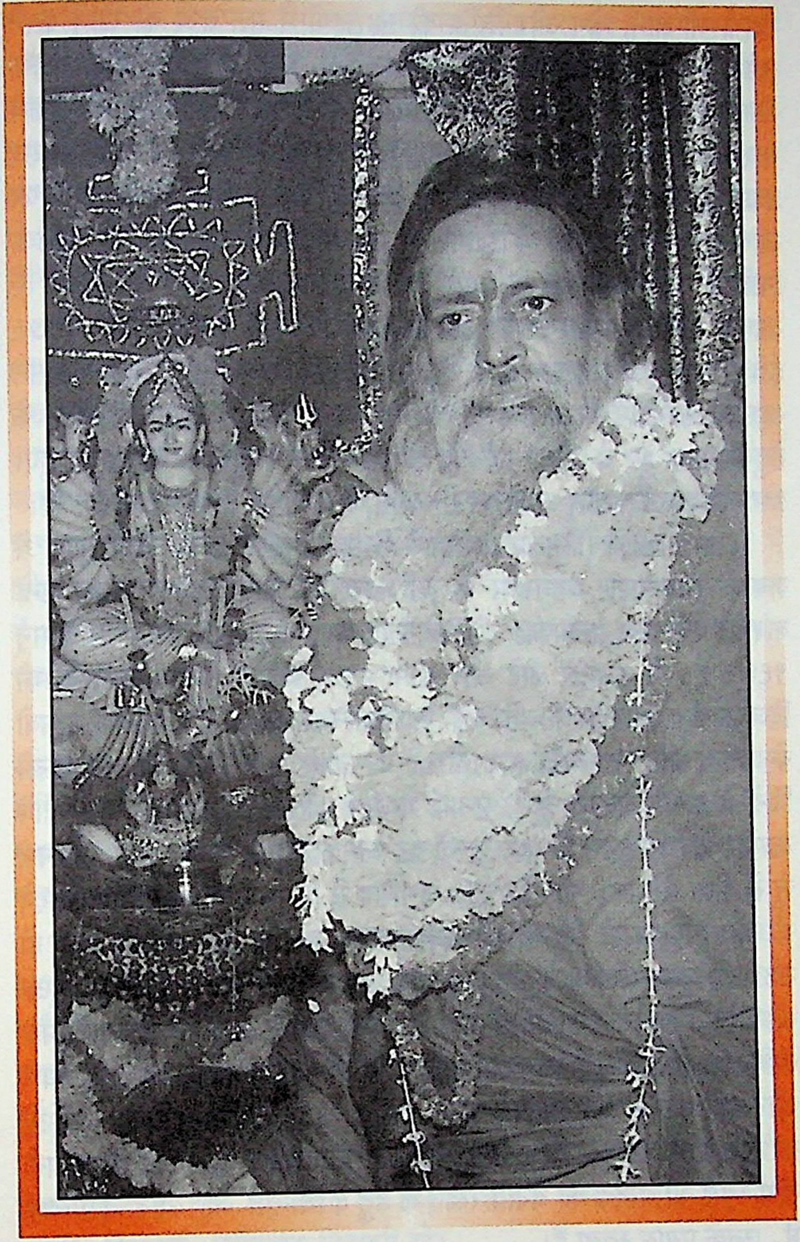
डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित द्वारा लिखित इस लेख से प्रस्तुत परिचय लिखने के हेतु पर्याप्त सहायता ली गई है हालांकि डॉ० साहब के विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।



स्वामी मोतीलाल ब्रह्मचारी
{ लालाजी }

स्वर्गीय मोतीलाल ब्रह्मचारी जी का जन्म भादों (भाद्रपद) शुक्लपक्ष पंचमी (ऋषि पंचमी/नाग पंचमी) सम्वत् ५००१ बृहस्पतिवार के दिन मध्यवर्गीय धर्मनिष्ठ कश्मीरी पण्डित परिवर में श्रीनगर के ज़ैनदार मुहल्ला में हुआ था। बाल्यकाल से ही वे दिव्य शक्ति के प्रति आकर्षित हुए और तीन वर्ष की अवस्था में ही अलौकिक शक्तियों के विषय में जिज्ञासा व्यक्त करने लगे। माता-पिता बालक की जिज्ञासा से प्रभावित हो उठे और उन्होंने अपने मेधावी पुत्र को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति के हेतु उत्साहित किया। इसमें उनकी माताश्री का विशेष सहयोग रहा है। वे उन्हें धर्मग्रन्थों की जानकारी प्रदान करती रहीं और पौराणिक कथा तत्त्वों ने उनको मोह लिया। बाल्यकाल में ही स्वामी जी कृष्ण प्रेम में रंग गये। छः वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ और महागायत्री मन्त्र के तथ्य और कथ्य से वे परिचित हुए।

स्वामी जी ने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की और तत्पश्चात् महान सन्तों, ज्ञानी जनों और योगीयों के सम्पर्क में आकर ब्रह्म, जीव, जगत और माया के आधारभूत सिद्धान्तों से परिचित होने लगे। साधानात्मक जीवन में स्वामी जी एक महान योगसाधक, टाठा जी जो उपनिषद्, पुराण और तंत्र शास्त्र के महापण्डित थे, से पर्याप्त प्रेरित और प्रभावित रहे जिन्होंने स्वामीजी को शक्ति के प्रति प्रेरित किया और चंडी उपासना तथा कुण्डलिनी योग की जानकारी प्रदान की। माँ शक्ति का स्वर्णिम वरदान स्वामी जी को प्राप्त हुआ और वे अध्यात्म की ऊँचाइयों को छूने लगे। भौतिक जीवन के गहन अन्धकार से ऊपर उठकर वे 'स्वयं प्रकाश ज्ञान' की आभा से सुशोभित हुए।



स्वामी मोतीलाल ब्रह्मचारी 'लाला जी' (१९२५ - २००४ ई.)

स्वामी जी ज्ञान, योग और सिद्धि की गहराइयों में मूल तत्त्व की खोज करने लगे। वे निरन्तर महावेदाचार्यों के सम्पर्क में आते रहे और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित धर्म सम्मेलनों में भाग लेने लगे। इस प्रकार भारत के महान सन्तों और ज्ञानी जनों के सम्पर्क में आने का उन्हें अवसर प्रदान हुआ। सन्तों और अध्यापकों के हेतु देश के भिन्न भिन्न स्थलों पर आयोजित कार्यशालाओं में स्वामी जी एक प्रतिष्ठित अध्यापक की भूमिका निबाहने लगे। ऋषिकेश में आयोजित अध्यात्मक पाठ्यक्रमों को पढ़ाने में आपका योगदान अविस्मरणीय रहा है। 'महर्षि आश्रम' नोएडा में सन् १६७६ ई० में चार हज़ार सन्तजनों के हेतु आयोजित साधना सिद्धि तथा योगासन अभ्यास कार्यक्रम में आपकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। 'महारुद्राभिषेक' के हेतु वे एकत्र हुए थे और स्वामी जी की ध्यान-ज्ञान साधना से लाभान्वित हुए। इस कार्यक्रम के सफल आयोजन से स्वामी जी सारे देश में पर्याप्त चर्चित रहे।

धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) में स्थित चामुंडा देवी की 'शिव गुफा' में जब वे साधानारत ध्यानमग्न थे उन्हें लगा कि अद्भुत दिव्य शक्ति उन्हें कश्मीर लौट कर ज्ञानप्रकाश की दिव्य जोत जगाने की आज्ञा दे रही है। वे सन् १६७६ ई० में काश्मीर लौटे और श्रीमद्भगवद्गीता के सन्देश, चंडी माँ की दिव्य प्रार्थना, महागायत्री जप, यज्ञों का वैज्ञानिक आधार और धार्मिक उत्सवों के महत्त्व और आध्यात्मिक तत्त्वों की जानकारी जनता को देने लगे। इन्हीं दिनों वे स्वामी लक्ष्मण जू के सम्पर्क में आये और ईश्वर आश्रम श्रीनगर में कश्मीर शैव सिद्धान्त के गहन तत्त्वों की जानकारी पाने के हेतु स्वामी लक्ष्मण जू से दीक्षा लेने लगे। माननीय डॉ० कर्णसिंह से मिलकर आश्रम स्थापित करने की जब व्यवस्था हो रही थी तो आतंकी हा-हा कार से सारा कश्मीर त्रस्त हो उठा था। अल्पसंख्यक समुदाय कश्मीर छोड़कर चले जाने को विवश हुआ और देखते ही देखते लाखों की संख्या में हिन्दू कश्मीर छोड़ कर चले गये और अधिकांश लोग जम्मू में अस्थायी आवासों में रहने लगे। स्वामी जी जम्मू पधारे और यहाँ एक आश्रम स्थापित करके कश्मीर की प्राचीन सांस्कृतिक मर्यादाओं की सुरक्षा एवं संस्कार बोध के हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहे। माता क्षीरभवानी तीर्थ स्थल की मर्यादा का बनाये रखने के हेतु वे चिन्तित थे और इस दिशा में उनके प्रयास स्तुत्य हैं।

अपने जीवन का अधिकतम समय स्वामी जी ने ऋषिकेश एवं कश्मीर

में व्यतीत किया। वे तपस्या, साधना, अध्यापन, धर्मप्रचार, एवं चिन्तन मनन में अपना समय व्यतीत करते थे। उन्हें कपालमोचन, (शोपयान), मंज़गाम, ख्रिव, खीरभवानी एवं अमरनाथ यात्रा से जुड़ी संस्थाओं के द्वारा धार्मिक विषयों पर व्याख्यान देने के लिये निमन्त्रण दिया जाता था और वे अपने अध्यात्म ज्ञान और संस्कृति बोध से सब को मोहित करते थे। जन जागरण के अभियान से प्रेरित वे धर्म प्रचार के हेतु कश्मीर में सतत प्रयत्नशील रहे। यहाँ तक कि सैनिक शिविरों में भी श्रीमद्भागवद् के दार्शनिक पहलू पर वे व्याख्यान देते थे।

विस्थापन के बाद तवी नदी के तट पर स्वामी जी ने 'अमर आध्यात्मिक शक्ति साधना आश्रम' नाम से एक आश्रम की स्थापना की। चन्द्रभागा नदी की एक क्षीण शाखा (कनाल) पास ही प्रवाहित हो रही है। इस आश्रम का उद्देश्य भक्तजन को वैदिक, तांत्रिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक जानकारी प्रदान करना है। लोगों को यहाँ भगवद्गीता, दुर्गासप्तशती, पंचस्तवी ॠग्वेद, सामवेद, भवानीसहस्रनाम एवं योग-साधना पर विधिवत कक्षाओं में प्रवेश कराकर स्वामी जी द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। यह सब जनमानस में शान्ति स्थापना के हेतु किया जाता है जिसके लिये योग, साधना एवं धर्म-चर्चा नितान्त आवश्यक होती है।

दैवी प्रेरणा पाकर आपने सहधर्मी कश्मीरी बन्धुओं में जागृति लाने के उद्देश्य से भगवद्गीता के महात्म्य, योगसाधना, महागायत्री जप तथा वेद-ज्ञान प्राप्ति हेतु व्याख्यानों का आयोजन किया तथा यज्ञों और उत्सवों को मनाने की महत्ता पर बल दिया। इस प्रकार जन कल्याण के हेतु महत्त्वपूर्ण धर्म प्रचार का कार्य करते रहे।

स्वामी जी के श्रद्धालु भक्त सहस्त्रों की संख्या में आश्रम में उपस्थित होकर आशीर्वचनों से लाभान्वित होते थे। आश्रम निर्माण में केवल स्वामीजी के श्रद्धालु भक्त-जनो का ही सहयोग रहा है। किसी सरकारी या गैरसरकारी संस्था से उन्हें आश्रम के लिए किसी प्रकार का अनुदान या सहायता प्राप्त नही हुई है।

सन् २००४ ई० के आरम्भ से ही स्वामी जी अस्वस्थ रहे । शरीर विकार-ग्रस्त हो चुका था, काया टूट रही थी लेकिन अस्वस्थ होते हुए भी वे अपनी दिनचर्या विधिपूर्वक निबाहते रहे।

२७ अप्रैल सन् २००४ ई० के दिन अकस्मात् अपने भक्तजनों से

अन्तिम विदा लेते हुए स्वामी जी दिल्ली में स्वर्ग सिधारे।

डॉ० रोशन रैणा, पुस्तकालय अध्यक्ष, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, लखनऊ (भारत) द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखे गये रेखाचित्र से प्रस्तुत परिचय पत्र बनाने में पर्याप्त सहायता ली गई है।

कश्मीर की सन्तपरम्परा

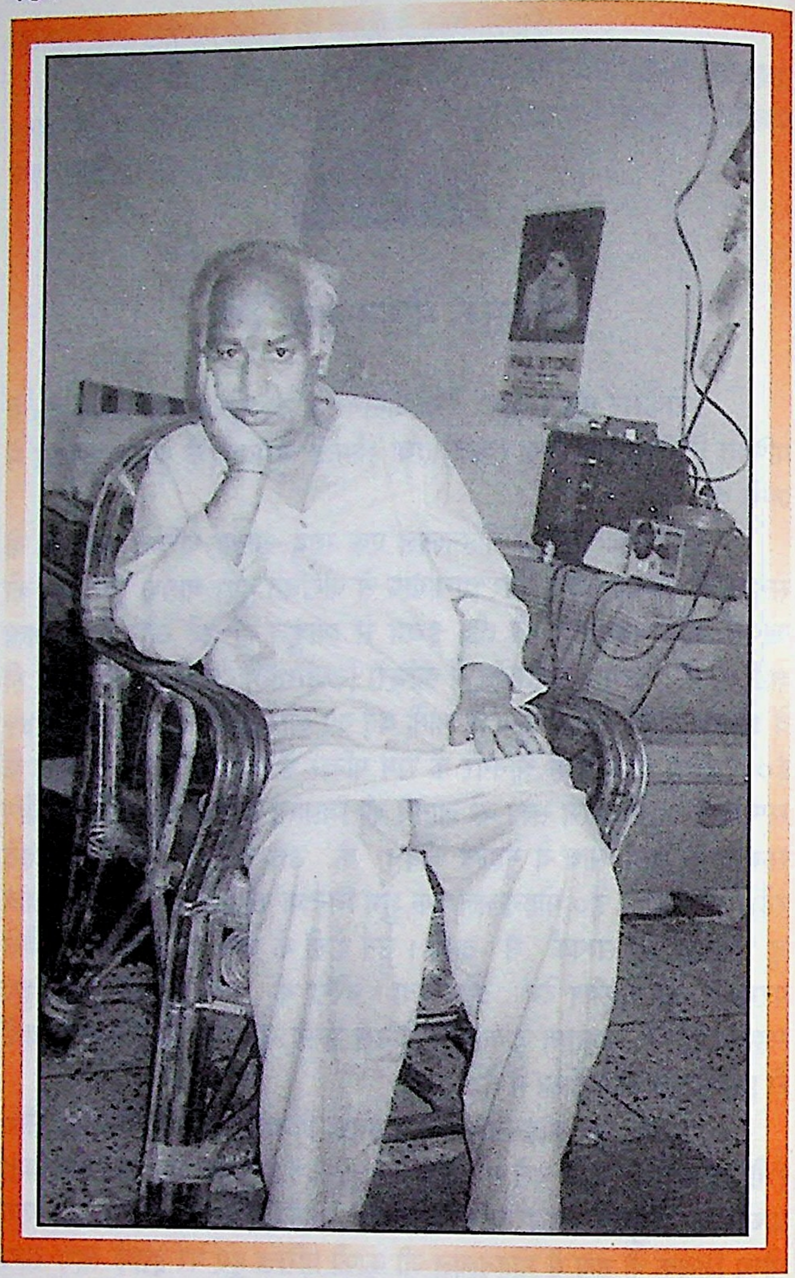


प्रोफ़ेसर मोहनलाल रैणा

प्रोफ़ेसर मोहन लाल रैणा श्रीनगर में २० जुलाई सन् १९२९ ई० में पण्डित निरंजन नाथ रैणा (काव) तथा श्रीमती तारावती के गृहस्थ परिवार में जन्मे थे।

बाल्यकाल में ही मोहनलाल एक साधु-आत्मा पण्डित ज़नकाक के सम्पर्क में आकर संध्या और प्राणायाम से परिचित हुए। बालक पूर्ण सत्य को जानने और पहचानने की तीव्र इच्छा से व्याकुल हो उठे और नित्य माता शारिका के दरबार हारीपर्वत में हाज़िरी (उपस्थिति) देने लगे। अल्पायु में ही वे शक्ति माँ की असीम कृपा के भागी बन गए और उसके पश्चात् सन् १९४५ ई० में स्तथू बरबरशाह श्रीनगर के राम मन्दिर में स्वामी हरेकृष्ण महाराज के सम्पर्क में आये। परम सत्य को जानने की जिज्ञासा अधिक तीव्र हो उठी। योग साधना के साथ-साथ वे गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व को भी निबाहते रहे। सन् १९५२ ई० मोहनलाल एक शुभ चिन्तक की कृपा से स्वामी आफ़्ताब जू 'भास्कर' के सम्पर्क में आये । उन दोनों के मध्य भेंट वैसी ही थी जैसे परमहंस श्रीरामकृष्ण देव और युवा नरेन्द्र के मध्य हुई थी। पहुँचे हुए महात्मा स्वामी आफ़्ताब जू भास्कर ने उस समय कहा था कि वे कई वर्षों से इस मिलन की प्रतीक्षा में थे।

इसके बाद मोहनलाल जी लखनऊ विश्वविद्यालय में एमएस० सी० (भौतिक शास्त्र) करने चले गये और १९५९-६१ ई० तक वहाँ रहे। तत्पश्चात् प्राध्यापक नियुक्त होकर विभिन्न सरकारी महाविद्यालयों में पढ़ाते रहे। एक योग्य शिक्षक के रूप में मोहनलाल जी काफ़ी प्रसिद्ध हुए पर इसके साथ-साथ वे अपनी अध्यात्म-साधना में भी लीन रहे। आत्मज्ञान की सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई



प्रोफ़ेसर मोहनलाल रैणा (१९२९ - १९९५ ई.)

और वे लोक कल्याण के पथ पर पूरी निष्ठा के साथ आगे बढ़ते रहे। उन्होंने आधुनिक भौतिक शास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर भारतीय चिन्तन एवं दर्शन की व्याख्या की है।

स्वयं अपने अन्त समय की भविष्यवाणी करके वे ३१ जुलाई सन् १९९५ ई० में स्वर्ग सिधारे । यद्यपि वे आज हमारे मध्य नहीं है तथापि ईश्वर साधना में लीन भक्तों का वे निरन्तर पथ प्रदर्शन करते चले आ रहे हैं।



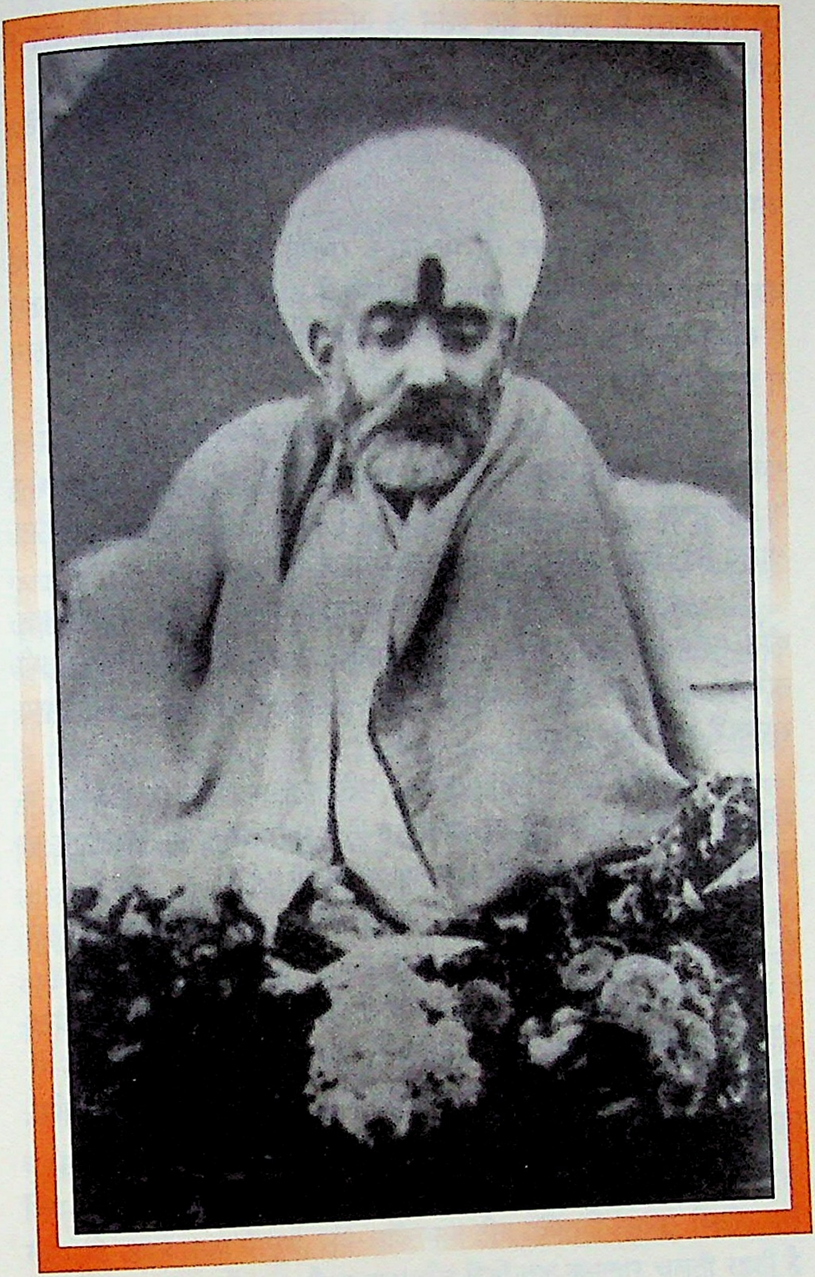
शैवाचार्य स्वामी रामजी

प्रसिद्ध शैवाचार्य स्वामी रामजी का जन्म काज़ीयार हब्बाकदल श्रीनगर में पण्डित सुखदेव हण्डू के घर १३ दिसम्बर सन् १८५३ में हुआ।

बालक को घर पर ही संस्कृत, कर्मकाण्ड एवं ज्यातिष विद्या की जानकारी प्रदान की गई। पण्डित सुखदेव के पिताजी वासुदेव हण्डू एक महान विद्वान थे। उनके भाई पण्डित ईश्वर साहब एक ब्रह्मचारी सन्त और योगी थे। पण्डित सुखदेव अपने पुत्र को शिक्षा प्राप्ति के हेतु उस युग के महान शैव पण्डित एवं सन्त स्वामी मंसाराम मोंगा (मनकाक नाम से प्रसिद्ध) के पास ले गये जहाँ रामजी योग, दर्शन, शैवमत एवं योगिक क्रियाओं से परिचित होने लगे।

रामजी का विवाह १५ वर्ष की अवस्था में सरस्वती देवी के साथ हुआ। एक पुत्र रत्न कृष्ण भी प्राप्त हुआ परन्तु ३ वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हुआ और एक वर्ष के भीतर पत्नी भी चल बसी। रामजी के जीवन में भयंकर स्थिति उत्पन्न हुई। वे बराबर साधना में लीन रहे और दिव्यानुभूति प्राप्त कर महान शैवाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए।

उनके एक वरिष्ठ शिष्य श्री सुदामा जी मिसकीन ने उन्हें अपने घर मलापोरा - हब्बाकदल में तीन वर्षों तक सम्मान सहित रखा और तत्पश्चात् श्री नारायण दास रैणा जो निशात इशबर के स्वामी पण्डित लक्ष्मण जू के पिताश्री थे, ने अपने घर फ़तेहकदल - श्रीनगर में रहने के लिये विनति की। स्वामी रामजी ने इसे स्वीकार किया और तीस वर्ष फ़तेहकदल में उस मकान में रहे जहाँ मई १८८४ ई० में उन्होंने 'श्रीराम शैव (त्रिक्) आश्रम' की स्थापना की। स्वामी रामजी के आशीर्वाद से ही श्री नारायणदास रैणा के यहाँ एक पुत्र रत्न ने ९ मई १९०७ ई० में जन्म लिया। जिस का नाम लक्ष्मण रखा गया और



शैवाचार्य स्वामी रामजी

(१८५३ - १९१५ ई.)

जो समयान्तर में कश्मीर शैव दर्शन के अन्तिम महान सन्ताचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए।

स्वामी रामजी इसी आश्रम में भक्त जनों का निरन्तर मार्ग निर्देश करते रहे। यहाँ विधिवत कश्मीरी शैवमत, शैव सिद्धान्तों एवं शैव ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था।

स्वामी विवेकानन्द जी भी स्वामी रामजी से मिले हैं और उन्हीं के कहने पर स्वामी विवेकानन्द माता क्षीरभवानी के दर्शनार्थ तुलामुला गए। कहते है स्वामी रामजी का आशीर्वाद पाकर ही स्वामी विवेकानन्द विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने विदेश (अमेरिका) चले गये।

स्वामी रामजी की प्रसिद्धि दिन प्रति दिन बढ़ने लगी और श्रद्धालु भक्त जन एवं इच्छुक पाठक उनके पास लगातार आने लगे। कश्मीर शैव दर्शन के आधारभूत तत्त्वों की सम्यक् जानकारी देने में स्वामी रामजी द्वारा स्थापित श्रीराम शैव (त्रिक्) आश्रम का अभूतपूर्व योगदान रहा है।

स्वामी रामजी के प्रसिद्ध शिष्यों में स्वामी माहताब काक, स्वामी गाश कौल (जलाली), स्वामी गोविन्द कौल जलाली, स्वामी विद्याधर तथा स्वामी ताराचन्द उल्लेखनीय हैं। स्वामी जी के देहावसान के बाद उनके शिष्य समाज में काफ़ी प्रसिद्ध हुए।

'श्रीराम शैव (त्रिक) आश्रम' फ़तेहकदल, श्रीनगर, कश्मीर में शैव-दर्शन के अध्ययन का एक प्रतिष्ठित केन्द्र माना जाता है। विस्थापन के बाद इस केन्द्र की एक शाखा की स्थापना जम्मू में भी हुई है।

कहते हैं कि स्वामी रामजी ने अपने अन्तिम समय के विषय में पहले ही भविष्यवाणी की थी जो अक्षरशः सत्य निकली। २३ जनवरी सन् १६१५ ई० में स्वामी रामजी ब्रह्मलीन हुए । स्वामी रामजी का एक परिचय लेख श्री उपेन्द्र अम्बारदार द्वारा लिखित 'कोशुर समाचार' जुलाई सन् १६६६ के अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत परिचय पत्र लिखते समय उस लेख से पर्याप्त सहायता ली गई है।

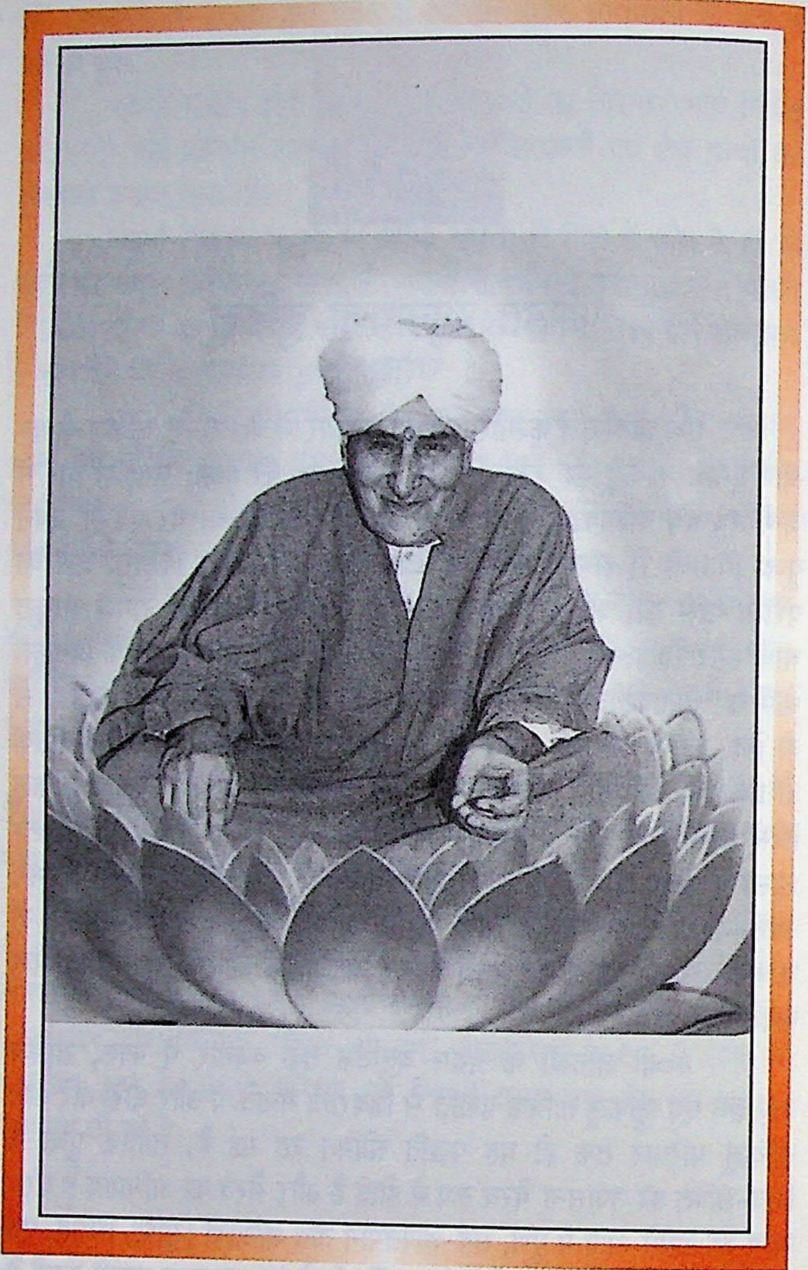


पण्डित रघुनाथजी कुकिलू

{ भॉईगाश }

एक प्रतिष्ठित कश्मीरी पण्डित परिवार में पं० रामजू कुकिलू के घर श्री रघुनाथ कुकिलू का जन्म १३ जून १६१० ई० को हुआ। सन्त परिवार में जन्मे रघुनाथ बाल्यकाल से ही बहुत तेज़ और मेधावी थे। घर पर ही अपने पूज्य पिताजी से संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया और विशारद तक की परीक्षा पास की। शक्ति उपासक होने के साथ-साथ पण्डित रामजू संस्कृत भाषा और साहित्य के जाने माने विद्वान थे अतः उनके पुत्र पर घर के अनुकूल धार्मिक वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उन्होंने अपने पिताश्री से ही वेद, पुराण एवं शैव-शास्त्र की सम्यक् जानकारी प्राप्त की। शाक्तोपासक दो प्रकार के होते हैं - दक्षिणाचारी और वामाचारी। पण्डित रघुनाथ कुकिलू जिन्हें लोग श्रद्धा और प्रेमवश 'भॉईगाश' भी कहते थे, वामाचारी थे। वे तन्त्र शास्त्र के ज्ञाता थे। पद्मासन में प्रतिदिन उनकी पूजा एवं जप-क्रिया लगभग आठ-नौ घण्टों तक चलती रहती थी। कुण्डलिनी जागरण के विशेषज्ञ होने के कारण ध्यान मुद्रा में वह घण्टों रहकर आलौकिक आनन्द लोक में विचरण करते थे।

२०वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश तक कश्मीर में काक, साहिब राज़दान एवं कुकिलू तांत्रिक पद्धति से शिवरात्रि मनाते थे और धीरे-धीरे अब कुकिलू परिवार तक ही यह पद्धति सीमित रह गई है। तांत्रिक पूजा ने शिव-शक्ति की उपासना भैरव रूप में होती है और भैरव का अभिप्राय है परम सत्य जो अपने आप में पूर्ण, सर्व-शक्तिमान तीन शक्तियों (सृष्टि, स्थिति, एवं संहार) से समन्वित है। यह भैरव पूजा पाँच दिनों तक लगातार चलती रहती है और प्रतिदिन पूजा १५-१६ घण्टों तक की जाती है। शाक्त दर्शन में माहिर



पण्डित रघुनाथजी कुकिलू 'भॉईगाश' (१६१० - १६६७ ई.)

विद्वान पण्डित ही इस प्रकार की पूजा का सफल आयोजन कर सकते हैं। स्वामी लक्ष्मण जी अपनी शिष्या योगिन् शारिका जी के साथ पूजा में सम्मिलित होने के लिये द्वादशी के दिन भॉईगाश के यहाँ आते थे। 'भॉईगाश' ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी के समकालीन थे । स्वामी जी उनका उचित सम्मान करते थे। उन्होंने एक दिन यहाँ तक कहा था कि 'भॉईगाश' को मुक्ति प्राप्त हुई है और केवल प्रारब्ध कर्म का निर्वाह कर रहे हैं।

शिवरात्रि पूजा के अतिरिक्त 'भॉईगाश' वर्ष में दो बार नव दुर्गा पूजा भी करते थे। नौ दिनों तक पूजा के बाद यज्ञ का आयोजन होता था जिसमें प्रमुख आहुति घी की दी जाती थी।

विस्थापन के बाद पीडित, वंचित एवं साधन हीन कश्मीरी पण्डित समाज को आत्मिक बल प्रदान करने के हेतु तथा उनमें आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित करने के लिये 'भॉईगाश' ने शास्त्रों का अध्ययन कराने के हेतु जम्मू में अपने निवास पर भक्तजनों को जानकारी देना शुरु किया। वैदिक, पौराणिक एवं शैव दर्शन की बारीकियों पर चर्चा होने लगी। भगवद्गीता, पंचस्तवी, भवानी सहस्रनाम, शिवस्तोत्राली, शिव महापुराण, सौन्दर्य लहरी, एवं शिवस्तोत्र पर 'भॉईगाश' की सारगर्भित व्याख्याएँ बेजोड़ हुआ करती थीं। आरम्भ में दो चार भक्तजनों से कक्षा शुरु हुई और देखते देखते संख्या पचास के ऊपर पहुँच गई जिनमें डॉक्टर, प्रोफ़ेसर, शासनाधिकारी एव व्यापारी जन उल्लेखनीय थे।

इसके बाद भक्तजनों की रुचि को ध्यान में रखते हुए 'भॉईगाश' ने कर्मकाण्ड पर भाषण देने शुरु किये और कर्मकाण्ड की विधियों से सामान्य भक्तजन को परिचित कराने लगे। धर्म शास्त्र के साथ-साथ वे कर्मकाण्ड के एक महान विशेषज्ञ पण्डित थे। न केवल देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से अपितु विदेशों से भी भक्त जन धर्म शास्त्र सम्बन्धी शंकाओं का समाधान कराने के हेतु उनके साथ पत्र-व्यवहार करते थे और 'भॉईगाश' सहर्ष उनकी शंकाओं का सामधान लिखित रूप में करते थे। 'भॉईगाश' न कश्मीरी पण्डित समुदाय के कल्याण हेतु अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पित किया था। वे भक्तजनों की पीड़ा से पीड़ित होते थे और पास आये किसी भी पीड़ित व्यक्ति के संकट निवारण के हेतु भरसक प्रयत्नशील दिखाई देते थे।

'भॉईगाश' शान्त प्रकृति के जीव थे। सदा प्रसन्न चित्त रहते थे और

कभी क्रुद्ध होकर आपे से बाहर नहीं होते थे। भॉईगाश ज्योतिष विद्या के माहिर विशेषज्ञ थे। प्रायः महिलायें जन्मपत्री लेकर उनके पास आती थीं और भाँति भाँति की शंकाओं को व्यक्त करते हुए समाधान पाने के हतु उत्सुक दिखाई देती थीं; 'भॉईगाश' शान्त मुद्रा में उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट करते थे।

'भॉईगाश' दीन दुखियों के संकट निवारण के हेतु सदा तत्पर रहते थे। परस्पर प्रेम, सद्भाव एवं बन्धुत्व के रिश्ते में वे प्रत्येक श्रद्धालु के साथ जुड़े रहते थे। उन्हें अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण था। क्रोध और लोभ को वश में करके उन्होंने अहंभाव को भी सीमाओं में बान्ध रखा था। उनका द्वार हर एक के लिये खुला रहता था और इसमें वर्ग, सम्प्रदाय अथवा धर्म का कोई भेद-भाव नहीं रहता था। अस्वस्थ होते हुए भी वे नियम पूर्वक शास्त्र एवं कर्मकाण्ड की कक्षायें चलाते थे और जिज्ञासु भक्तजनों के शंका निवारण के हेतु सदा प्रयत्नशील रहते थे।

२३ दिसम्बर सन् १९६७ ई० प्रातः लगभग चार बजकर पन्द्रह मिनट पर उन्होंने भौतिक काया छोड़ कर महासमाधि ग्रहण की और इस प्रकार इस महान शाक्तोपासक, अध्यात्म गुरु एवं योगी सन्त की इह-लीला समाप्त हुई।

शैव-शास्त्र के विद्वान, तन्त्र-शास्त्र के महापण्डित एवं परम्परागत मान्यताओं एवं विश्वासों पर दृढ़ आस्था रखने वाले भाईगाश ने वर्षों निरन्तर सेवा-धर्म का निर्वाह करते हुए अपना कर्तव्य कर्म निबाहाया। माता शारिका के उपासक पण्डित रघुनाथ संस्कृत भाषा व्याकरण एवं तन्त्र शास्त्र के महापण्डित होने के साथ-साथ दैवी शक्ति-सम्पन्न पुण्यात्मा भी थे। उन्होंने वर्षों अध्यात्म शिक्षण के क्षेत्र में कश्मीरी पण्डित समाज का नेतृत्व किया है।

श्री एच० एन० तिक्कू (४२ भगवती नगर जम्मू) ने 'भॉईगाश' के विषय में जो लिखित जानकारी अंगेज़ी भाषा में भेजी है उसी के आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र का तैयार किया गया है।



माताश्री राधामाली रैणा

सन् १८६० में नाविदयार रैणावारी, श्रीनगर के एक प्रसिद्ध कौल परिवार में माताश्री राधमाली जी का जन्म हुआ था। इनका विवाह ज़ैनदार मोहल्ला टँकीपोरा, श्रीनगर के प्रतिष्ठित रैणा परिवार के श्री डी० एन० रैणा से हुआ। श्री डी० एन० रैणा एक जाने-माने व्यपारी थे। किसी ज्योतिषी ने श्री रैणा को यह कहा कि उन्हें देश त्याग करना चाहिए क्योंकि उन्हें कालारिष्ट लगने वाला है। श्री रैणा ने ऐसा ही किया - किसी को भी पता नहीं था कि वे कब और कहाँ गए। श्रीमती राधामाली इस कारण बहुत दुःखी हुईं। उनके चार बच्चे थे और पतिदेव का कुछ पता नही था। धीरे-धीरे वह ईश्वर-भक्ति की ओर अग्रसर हुई और शीघ्र ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ती गई। हर दिन सवेरे हारीपर्वत की परिक्रमा करती और लौटते समय शमशान से होते हुए घर पहुँचती थी। ज्योतिषी के बताए हुए कार्यक्रम के अनुसार कुछ समय पश्चात् श्री डी० एन० रैणा लौट कर आए - पर श्रीमती राधामाली आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर चुकी थी। फिर भी उनके दो बच्चे और हुए। कुल मिला कर पाँच लड़कियाँ और एक लड़का। सन् १९३५ में पति के देहान्त से पूर्व वह अपने मायके गई और वहाँ आँगन में चटाइयाँ बिछाईं - लोग समझ गए कि कुछ अशुभ होने वाला है। इसी प्रकार सन् १९४६ में अपने एकमात्र पुत्र के निधन से पूर्व अपनी बहू के सिर पर एक साफा रखा और हाथ में कलम थमा दी।

माताश्री राधामाली एक चमत्कारी महिला सन्त थीं। सन् १९४७ ई० में देश के विभाजन और उसी वर्ष अक्टूबर में पाकिस्तानी हमले के समय माताश्री ने कई ऐसे चमत्कार कर दिखाए जो केवल आध्यात्मिक महाविभूतियों द्वारा ही सम्भव होते हैं तथा जो समय की धारा को ही पलट



माताश्री राधामाली रैणा (१८६० - १६५६ ई.)

सकते हैं। विभाजन के समय सियालकोट पाकिस्तान में काम कर रहे सर्वश्री निरंजन नाथ वारिकू, डॉ० अमरनाथ गूरू, गोपीनाथ सुल्तान, एस० एन० गंजू को माताश्री की कृपा से मौत के मुँह से छुटकारा मिला। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिनसे श्रीमती राधामाली रैणा का यश फैलता गया। मोहल्ले में रह-रहे ज़ाडू परिवार का एक छोटा लड़का मर गया - माताश्री ने उस मरे हुए बच्चे को अपना स्तन-पान कराया - बच्चा जी उठा और अभी भी (सन २००२ में) जीवित है।

सन् १९४७ में ही माताश्री १२ साल की तपस्या में लग गई - अपने ही घर के एक कमरे में एकान्तवास करने लगी। सन् १९५९ की आश्विन कृष्ण पक्ष की अष्टमी की रात को माताश्री राधामाली ६९ वर्ष की आयु में समाधिनिष्ठ हुईं। इनकी शिष्य मंडली में कई महिलाएँ थीं जिनमें रोफ् द्यद काचरू का विशेष उल्लेख किया जाता है। रोफ़द्यद श्रीनगर की ही रहने वाली थीं। कभी-कभी अपनी पुत्री के पास रहने के लिये पाँपुर जाती थी। शिष्यों में श्री एस० एन गँजू तथा रामजी जन्दा प्रमुख हैं।



पण्डित रामजू सफ़ाया
{ तबरदार }

फाल्गुण शुक्ल द्वितीया विक्रमी सं० १६५६ तदनुसार सन् १६०२ ई० के दिन श्रीनगर के चिंक्राल मुहल्ला के निवासी श्री नाथराम सफाया के घर एक पुत्र-रत्न ने जन्म लिया। नवजात शिशु का नामकरण रामजू हुआ। शैशव काल से ही रामजू की प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर अधिक प्रबल थी। समय व्यतीत होने के साथ-साथ बालक रामजू का भैरव अस्थापन और अन्य विशिष्ट धार्मिक स्थानों में प्रायः आना जाना प्रारम्भ हुआ। तरुण होते-होते रामजू की परम सत्य की खोज के लिए अकुलाहट और तीव्र होती गई। इसी बीच पं० रामजूँ की नियुक्ति श्रीनगर नगरपालिका (Municipality) में हुई। अन्य दायित्वों के अतिरिक्त पं० रामजू को श्रीनगर शहर में स्थित ज़ब्हखाना (Slaughter House) का निरीक्षण करना भी था। नित्य बेड़-बकरियों के कटे जाने के दृश्य से पं० रामजू का मन व्याकुल हो जाता और वह चीख उठते। इस पीड़ा से आहत और परम सत्य की खोज के लिए बाल्य-काल से ही आकुल रामजू अपने पथ प्रदर्शन के लिए गुरु की खोज में बहुत बेचैन हुए थे। भैरव अस्थापन में घण्टों नित्य ध्यान लगाने का क्रम टूटा नहीं बल्कि अविराम चलता रहा। इस बीच ३५ वर्ष की आयु में पं० रामजू की सहधर्मिणी का स्वर्गवास हुआ। इस घटना के उपरान्त रामजू अपना अधिकांश समय बड़शाह कदल, श्रीनगर स्थित आनन्देश्वर भैरव परिसर में व्यतीत करते रहे। कई लोगों के अनुसार उनके गुरु पं० महताबजू काक थे और कई स्वामी नीलकण्ठ जी साधु बताते हैं। एक दिन आनन्देश्वर भैरव मन्दिर परिसर में ही पं० रामजू की भेंट साधना में लीन एक साधु महाराज से हुई। इन साधु महाराज ने रामजू को बाज़ार से कुछ सामग्री लाने का निर्देश



पण्डित रामजू सफ़ाया 'तबरदार' (१६०२ - १६७८ ई.)

दिया। रामजू ने सामग्री के बदले एक चिल्म और चर्स लाकर दिया। साधु महाराज बड़े नाराज़ हुए और उन्होंने रामजू द्वारा लाई गई सामग्री (चिल्म और चर्स) अपनी दूनी में फेंक दिए और कहा कि तुम अभी साधना के लिए परिपक्व नहीं हुए हो और यह कहकर अदृश्य हो गए (ऐसा पं० रामजू ने स्वयं एक भक्त के समक्ष प्रकट किया है)।

अपनी तपश्चर्या और उपरोक्त घटना से सन्तुष्ट न होकर सन् १९६१ ई० में पं० रामजू भारत के दक्षिण में स्थित रामेश्वरम मन्दिर में गए जहाँ वह छः वर्ष बिता कर सन् १९६७ में घाटी वापिस आ गए। घाटी में रहकर वह भक्तों का मार्ग दर्शन और व्याधियों से पीडित लोगों का कष्टनिवारण करते रहे। अल्पभाषी रामजू 'तबरदार' नाम से अधिक विख्यात थे। सन् १९७८ के फरवरी मास में पं० रामजू तबरदार अपना लौकिक देह त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रयाण कर गए। उनकी भौतिक जीवन-लीला के विभिन्न पक्षों को प्रकाश में लाने के लिए उनके कई भक्त-जन कार्य कर रहे हैं।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



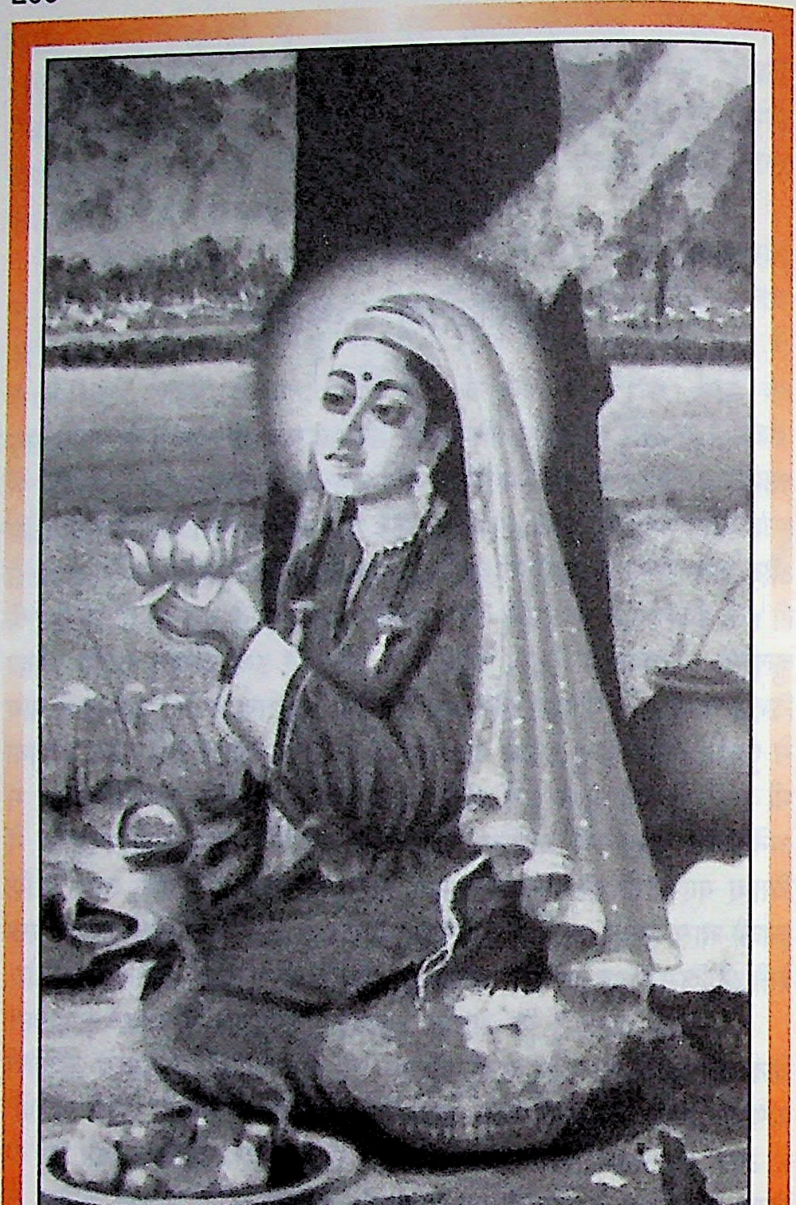
लल्लेश्वरी 'ललद्यद'

{ लल मॉज }

कश्मीर शैवदर्शन, त्रिकदर्शन की महाराज्ञी लल्लेश्वरी का जन्म सन् १३२३-१३३९ ई० के आसपास पांदरेठन (पुराणाधिष्ठस्थान) कश्मीर में हुआ और वह सन् १३७३-१३८९ ई० तक जीवित रहीं। आपके बाल्यकाल और माता-पिता के विषय में कोई ठोस जानकारी प्राप्त नहीं है। हाँ, बचपन से ही इन्हें ईश्वर-प्रेम ने अपनी ओर आकृष्ट किया। इनके गुरु इन के परिवार के कुलगुरु - स्यदबोय' (स्यद श्रीकंठ) थे, जिन्होंने इन्हें दीक्षित किया। इनका विवाह पाम्पोर के पण्डित सोनॅ भट्ट से हुआ। ससुराल में इन्हें पद्मावती नाम से पुकारा गया किन्तु इनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण इन्हें काफी सताया भी गया। इनकी सास इन्हें काफी दुःख देती । कश्मीरी पण्डित समाज में अनेकानेक कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनसे इस शैव योगिनी के ससुराल में बिताए गए दिनों का अनुमान लगाना सरल हो जाता है। कहा जाता है कि इनकी सास इनकी थाली में परोसे गए चावल के भीतर एक गोल पत्थर रख देती थी जिससे यह लगे कि ललेश्वरी कितना ढेर सारा चावल खाती थी।

कहा जाता है कि अन्ततः ललद्यद ने ससुराल के बन्धन तोड़ कर शिव की शरण ली और उन्हीं के पथ पर निकल पड़ी। ललेश्वरी कश्मीरी पण्डित समाज और शैव 'त्रिक-शास्त्र' की महानतम विभूति है। उनके 'वाखों' में आज भी जीवन और जगत के रहस्यों का विश्लेषण आत्मिक स्तर पर ही किया जा सकता है। उनके 'वाख' हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। उनकी कविता में दर्शन शास्त्र का गाम्भीर्य, विचारजगत का गहन मंथन और आत्मिक अनुभूतियों की अथाह आस्था का सागर लहरें मार रहा है।

ललद्यद का समय कश्मीर के इतिहास में आज के समय से अधिक



लल्लेश्वरी 'ललद्यद' (१४वीं शताब्दी ई.)

भिन्न नहीं था। धार्मिक उन्माद की तलवार चलनी शुरु हो गई थी - लल ने कश्मीरी पण्डितों को अपनी दीर्घकालीन परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया - कश्मीरी शैव-शास्त्र और त्रिक्-दर्शन के प्राचीन स्तम्भ भट्ट नारायण और उत्पलदेव से एक बार फिर बाँधने की कोशिश ललद्यद के वाख हैं। कश्मीरी पण्डितों की संस्कृति, उनके लोकाचार तथा उनके इतिहास का प्रतिनिधित्व करने वाली एक अद्वितीय कवयित्री, योगिनी एवं शैव साधक लल्लेश्वरी थी। वास्तविकता यह है कि ललद्यद के जीवन और उनके 'वाखों' का समुचित वैज्ञानिक विश्लेषण आज भी नहीं हुआ है।

लल्लेश्वरी ने अपना सन्देश देने के लिये चतुष्पदी का प्रयोग किया जिन्हें कश्मीरी में 'वाख' कहते हैं। 'वाख' मूलतः संस्कृत के 'वाक्' वाणी शब्द का तद्भव रूप है।

श्री पी० एन० कौल बाम्बज़ई की मान्यता है कि लल्लेश्वरी का जन्म १४वीं शताब्दी के मध्यकाल में सुलतान अला-उद्दीन के राज्यकाल मे हुआ है।

स्यद कंठ के उपदेशानुसार उन्होंने योग साधना आरम्भ की और निरन्तर योग साधते हुए सिद्धि प्राप्त की। लेकिन आध्यात्मिक बुलन्दियों को छूने के साथ-साथ वह अपने सामाजिक कर्तव्य के प्रति भी सचेत थी। परस्पर स्नेह और बन्धुत्व के सूत्र में बान्धने के हेतु वह निरत अपने देश वासियों को प्रेरणा देती रही।

लल्ला ने विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपनी बात कश्मीरी भाषा अर्थात् लोक भाषा में कही है। वह चाहती थी कि उसके रहस्यात्मक अनुभव सामान्य जन तक पहुँच सकें और वे उनसे प्रेरित होकर परिपूर्ण सत्य की प्राप्ति हेतु तलाश पर निकले। उन्होंने अपने वाखों के द्वारा कश्मीरी बोली को भाषा का रूप प्रदान करते हुए गौरवान्वित किया है । शैव दर्शन के महिमा मंडित सिद्धान्तों से गर्भित 'वाखों ' में त्रिक् सिद्धान्त अथवा त्रिक्दर्शन की लोक भाषा में सर्वसुलभ व्याख्या प्रस्तुत की है।

सर्वधर्म सम्मान, मानव प्रेम, बन्धुत्व, सरल जीवन में गहन चिन्तन, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार और गुरुपदेश से लाभान्वित करने के उद्देश्य से लल्लेश्वरी ने अपने जीवन-अनुभवों को वाखों की लड़ी में पिरो दिया है।

दिव्य ज्योति पाने के हेतु आत्म शुद्धि एवं सहज आत्मबोध नितान्तावश्यक है । अपनी पहचान सब से मुश्किल बात है और जिसे यह

पहचान प्राप्त हुई वही दिव्य पुरुष है।

लल्ला अपने समय की एक महान योगिनी और रहस्यवादी कवयित्री थी जिसने अपने साथ साधनात्मक जीवन की दिव्य आभा से मध्यकालीन कश्मीर के जन-जीवन में आध्यात्मिक आनन्द की स्रोतस्विनी प्रवाहित की।

प्रोफ़ेसर अमरनाथ धर का विचार है कि "लल्लेश्वरी को किसी विशेष जाति, वर्ग, और समुदाय से जोड़ना बेमानी है। इसी प्रकार किसी विशिष्ट धर्म या चिन्तन प्रणाली अथवा दार्शनिक विचारधारा से जोड़ कर उसे सीमाओं में क़ैद नहीं किया जा सकता ऐसा करने से उसके आध्यात्मिक बड़प्पन को क्षति पहुँचेगी।"

आज लल्लेश्वरी के वाखों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं लगभग २०० वर्ष पूर्व लल्लेश्वरी के ६० वाखों का प्रथम संग्रह संस्कृतानुवाद सहित प्रकाश में आया और इसके लेखक है भास्कर राजानक। आज वाखों की संख्या सैंकड़ों में जा रही है। मूल रूप कितना है और प्रक्षिप्तांश कितना यह एक और समस्या हमें आज कल सन्देह में डाल रही है।

जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने सन् १९७५ ई० में प्रो० जियालाल कौल द्वारा लिखित ' ललद्यद' शीर्षक से महत्त्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन किया है जिसमें लल्लेश्वरी के 'वाख' अनुवाद एवं आलोचनात्मक टिप्पणी सहित दिये गये हैं । यद्यपि संग्रहकर्ता और अनुवादक के अनूदित अंशों से सहमत होना अनिवार्य नहीं तथापि प्रो० जियालाल कौल का प्रयास स्तुत्य है । इस पुस्तक के लेखन में प्रोफ़ेसर नन्दलाल कौल 'तालिब' की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त जार्ज अब्राहम गिर्यसन, श्री बदरीनाथ पारिमू तथा श्री शम्भूनाथ भट्ट 'हलीम' ने भी ललद्यद के वाखों के संग्रह अर्थ एवं टिप्पणी सहित प्रकाशित किये हैं।

श्री बी० एन० सोपोरी ने "Voice of Experiences - Lall Vaakh of Lall Ded" शीर्षक से दो खण्ड़ों में लल्लेश्वरी के वाख अंग्रेज़ी भाषा में व्याख्या सहित सन् १९९६ ई० में 'कान्ति आफसेट प्रिंटिंग हाउस' सरवाल जम्मू से प्रकाशित किये हैं।

लल्लेश्वरी के चिन्तन, दर्शन एवं मान्यताओं का कई विद्वानों के द्वारा सविस्तार विवेचन किया गया है और आज भी हो रहा है। अंग्रेज़ी, उर्दू, हिन्दी

और कश्मीरी भाषाओं में पर्याप्त शोध-पत्र ललद्यद पर प्रकाशित हो चुके हैं। कई पत्रिकाओं के 'ललद्यद-विशेषांक' भी छप चुके हैं। मेरा संकेत जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'शीराज़ा' पत्रिका की ओर है। कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी और कश्मीरी विभागों में भी ललद्यद पर पर्याप्त शोध कार्य हो चुका है।

पीएच० डी० उपाधि के हेतु ललद्यद पर स्वीकृत शोध ग्रन्थ कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में ही लिखा गया है। यह सन् १९६७ ई० की बात है। आज स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर ललद्यद के वाखों को गहन और विशिष्ट अध्ययन के लिये पाठ्यक्रमों में रखा गया है। ललद्यद के वाखों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन भी हो रहा है।

इधर श्रीमती बिमला रैणा (समकालीन कश्मीरी साहित्य में चर्चित 'वाख' लिखने वाली कवयित्री) ने 'लल वाखों' के शुद्ध रूप पर कई आपत्तियाँ व्यक्त की हैं। इस विषय में उनकी एक पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

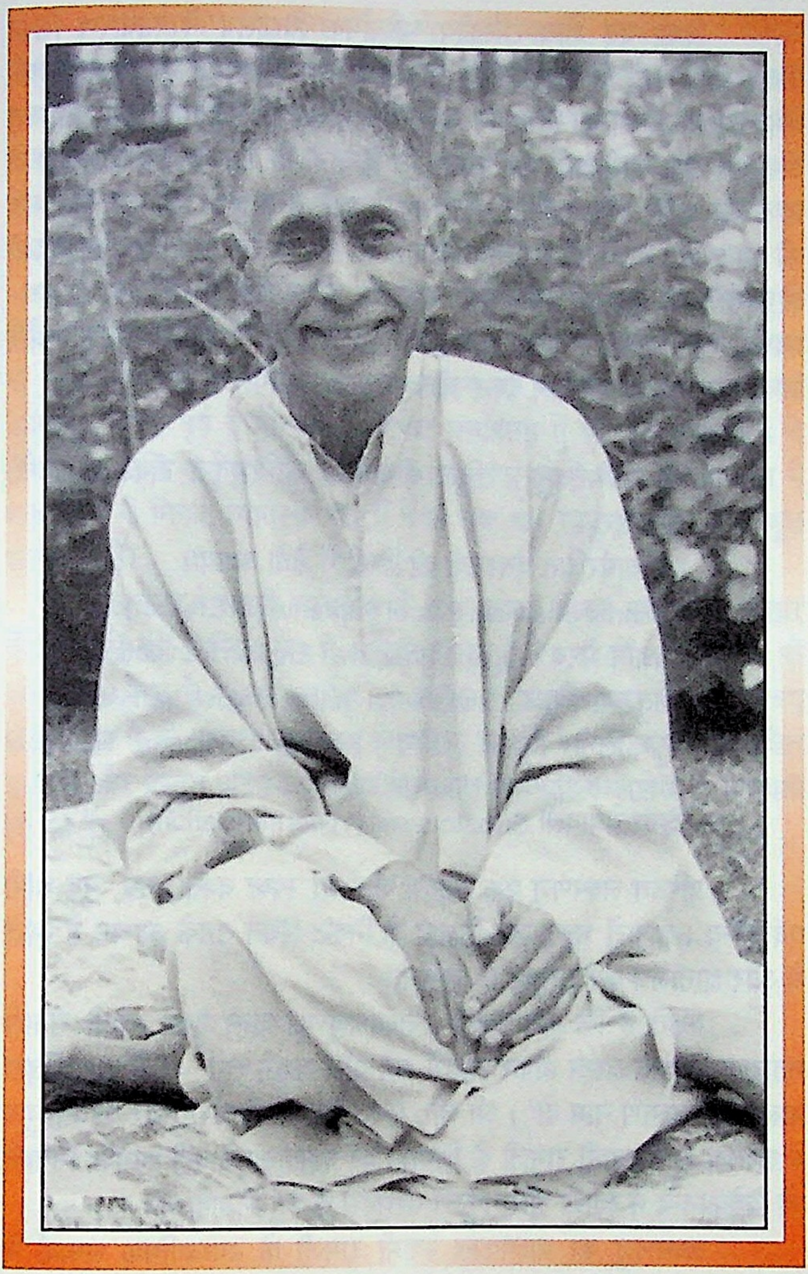
कश्मीर की सन्तपरम्परा



ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू का जन्म नमचिबल, फतेहकदल, श्रीनगर-कश्मीर में ९ मई १९०७ ई० (वैशाख कृष्ण द्वादशी) श्री नारायण दास रैणा के घर में हुआ था। इनकी माताश्री का नाम था - श्रीमती अरणिमाली।

वैभव पूर्ण परिवार में पलने पर भी शैशवावस्था से ही वैराग्य क प्रति आकृष्ट थे। युवावस्था में क़दम रखते ही घरबार और राजसी ठाठ को तिलाञ्जलि देकर एकान्तवास की ओर उन्मुख हुए। साधुगंगा के सघन वनांचल में अहर्निश साधना में लीन होकर ईश्वर प्राप्ति के लिए विकल रहे। आबाल ब्रह्मचारी रहकर विषय वासनाओं से विमुख थे। अपने गुरुमहाराज श्री महताब काक की सेवा परिचर्या में तन-मन-धन से समर्पित थे। अपने परमगुरु शुद्ध चिद्रूप शाम्भवयोगी स्वामी रामजी महाराज के शुभाशीर्वाद का प्रतिबिम्ब स्वरूप। शैवदर्शन की बारीकियों को अनुभव के आधार पर समझाने में सक्षम गुरु के रूप में चर्चित रहे । हज़ारों व्यक्तियों को कश्मीरी शैवदर्शन की शिक्षा-दीक्षा देकर उन्हें सन्मार्ग पर लगाने को आतुर रहे। स्वदेशी विद्वानों के साथ-साथ विदेशी विद्वानों को भी कश्मीरी शैवदर्शन की रहस्य प्रक्रिया को समझाने में सदा तत्पर रहे। रविवासरीय प्रवचनों के उपदेशामृत से सामान्य जनता को लाभान्वित करने का उनका एकमात्र ध्येय था। निर्वाण प्राप्ति से कुछ वर्ष पूर्व अपनी भैरवी अवस्था में भविष्य में होने वानी अप्रत्याशित घटनाओं की ओर सब को सचेत करते रहे। विदेश से लौटकर कुछ समय के लिए समाधिस्थ रहकर नौयड़ा में २१ सितम्बर सन् १९९१ ई० (आश्विन कृष्णपक्ष चतुर्थी) के दिन परमधाम की ओर प्रस्थान किया ।



ईश्वरस्वरुप स्वामी लक्ष्मणजू (१९०७ - १९९१ ई.)

शिक्षा एवं शोध-राजकीय माध्यमिक विद्यालय में साधारण शिक्षा पाकर आगे पढ़ने को अनुत्साहित थे। कक्षा कार्य के स्थान पर आशुतोष की वैभवमयी घटनाओ का ही वर्णन करने में दत्तचित रहे। शैवदर्शन का विधिवत् अध्ययन तथा बारीकियों का मनन व चिन्तन श्री महेश्वरनाथ राज़दान से प्राप्त कर दर्शन विद्यावारिध बनके अपने ज्ञान व अनुभव की फुहार से सब को आप्लावित करने को समुत्सुक दिखाई देते थे। अनेक भारतीय और विदेशी शोधार्थियों के कश्मीर शैव-दर्शन सम्बन्धी शोध-कार्य के निर्देशक एवं पथ-प्रदर्शक रहे। साधारण शिक्षा पाकर भी विद्वत्सभाओं में अंग्रेज़ी, संस्कृत और हिन्दी भाषाओ में व्याख्यान देकर श्रोतःगण को आकर्षित करते थे।

प्रकाशन -

१. श्री अभिनवगुप्त रचित श्रीगीताजी की संस्कृत टीका का हिन्दी रूपान्तर।
२. धर्माचार्यरचित पंचस्तवी की हिन्दी में शैवी व्यख्या।
३. Kashmir Shaivism Secret Supreme (in English)
४. 'विज्ञान भैरव' Vijnana Bhairava (English translation)
५. 'वातुलनाथ सूत्र' Vatulanatha Sutra (English translation)
६. 'कुण्डलिनी विज्ञान रहस्य' Kundalini Vijnana Rahasya (English Sanskrit translation)
७. शिवस्तोत्रावली Sivastotravali (Hindi translation)

पण्डित लक्ष्मणजू एक सहृदय जीव थे। स्पष्ट वक्ता, नम्र, मृदु भाषी एवं सौम्य। हज़ारों भक्त जन निशात के निकट स्थित उनके आश्रम में आते थे और ज्ञानार्जन कर सन्तुष्ट हो जाते थे।

कहते हैं कि जब स्वामी लक्ष्मणजू का जन्म हुआ स्वामी रामजी महाराज अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगे और कहने लगे - ' मैं राम हूँ इस बालक को लक्ष्मण नाम दो'। श्री जी० एन० रैणा के विचारानुसार परवर्ती युग में लक्ष्मण जू ने स्वामी रामजी के शिष्यत्व को ग्रहण करके वही भूमिका निबाही जो विवेकानन्द ने स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंस के हेतु निबाही थी।

लक्ष्मणजू का बाल्यकाल स्वामी रामजी के आध्यात्मिक सम्पर्क में व्यतीत हुआ। उन्होंने लक्ष्मण जी को गायत्री मंत्र जप एवं शैव साधना के अनुसार योग क्रिया की जानकारी दी थी।

जब लक्ष्मण जी सात वर्ष के थे स्वामी रामजी स्वर्ग सिधारे लेकिन महाप्रयाण से पहले उन्होंने बालक लक्ष्मण जी को अपने प्रमुख शिष्य स्वामी महाताब काक के सुपुर्द किया जिन्होंने बाद में लक्ष्मण जी को शैवदर्शन की दीक्षा दी। स्वामी लक्ष्मण जी ने स्वयं श्री जी० एन० रैणा साहब को बताया है कि उन्हें २० वर्ष की आयु में आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और दिव्य दृष्टि का आभास हुआ।

बाद में एक प्रसिद्ध शैव पण्डित महेश्वरनाथ राज़दान से लक्ष्मणजू ने शैव शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। सन् १९३४ ई० में लक्ष्मण जू ने निशात के पास अपना आश्रम बनाया। इस आश्रम का नामकरण हुआ - 'ईश्वर आश्रम'। इससे पूर्व वे हारवन के निकट धन्यहामा में भी कुछ समय रहे थे और योग सिद्धि के हेतु सोपुर के निकट साधु गंगाश्रम में भी उन्हें गहन वन में एक चश्मे के निकट ध्यानस्थ मुद्रा में देखा गया था। साधु गंगाश्रम में वे कुछ समय रहे हैं।

सन्ताचार्य स्वामी लक्ष्मणजू के साधनात्मक जीवन एवं रचना संसार के विषय में हमें लिखित रूप में सामग्री प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त श्री जी० एन० रैणा ने 'स्वामी लक्ष्मण जू' शीर्षक से अंग्रज़ी भाषा में एक परिचय लेख लिखा है जो 'कोशुर समाचार' दिल्ली के फरवरी १९९९ अंक में प्रकाशित हुआ है और प्रस्तुत परिचय पत्र लिखने के हेतु रैणा साहब के लेख से सहायता ली गई है।



पण्डित लक्ष्मणजू रैणा 'बुलबुल'

सन्त कवि पण्डित लक्ष्मण* जू रैणा के पूर्वज मलपोरा (बान मुहल्ला) श्रीनगर के निवासी थे और यही उनका जन्म सन् १८२६ ई० के आसपास हुआ था। इनके पिता स्वर्गीय पण्डित सुन्दर जू राज़दान एक जाने माने विद्वान एवं कृष्ण-भक्त थे।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद लक्ष्मण जू दो वर्ष भारत यात्रा पर रहे। मथुरा में ब्रज के कृष्ण-भक्त कवियों से काफ़ी प्रभावित हुए। वहाँ से लौट कर उनकी नियुक्ति कूटयाल के पद पर हुई और नागाम में विवाह सम्पन्न हुआ। पहली पत्नी के अकस्मात् देहावसान के बाद दूसरा विवाह भी नागाम में ही हुआ।

पुत्र शोक से विह्वल लक्ष्मणजू साधु सन्तों की संगत में रहने लगे और अन्त में मट्टन पहुँच कर उन्होंने स्वामी परमानन्द का शिष्यत्व ग्रहण किया। कृष्ण के प्रति उनके अनन्य अनुराग को परिपुष्ट करने में परमानन्द का पर्याप्त योगदान रहा है। नवीनतम खोज के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि 'बुलबुल' का देहान्त सन् १८९८ ई० में हुआ है।

'बुलबुल' ने कई भक्तिपरक गीत, लीलाएँ एवं भजन-स्तुतियाँ लिखी हैं जिनमें सर्वत्र उनका भक्त हृदय रस छलकाता मुखर हो उठा है। 'बुलबुल' के मुख्य आराध्य श्रीकृष्ण हैं।

'बुलबुल' ने जहाँ अध्यात्म ज्ञान, दिव्यानुभूति, अत्मानन्द एवं परमब्रह्म के अलौकिक स्वरूप के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त किया है वहाँ दूसरी ओर उन्होंने संसार की असारता, जीवन की क्षण-भंगुरता, मृत्यु भय तथा सांसारिक माया-मोह के छलमय बन्धनों के प्रति भी अपने हृदय की अकुलाहट व्यक्त की। इस प्रकार जीव, जगत, माया, प्रकृति एवं ब्रह्म से

(चित्र उपलब्ध नहीं है)

पण्डित लक्ष्मणजू रैणा-'बुलबुल' (१८२६ - १८६८ ई.)

सम्बन्धित नाना विषयों पर 'बुलबुल' ने अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये हैं। बुलबुल की कृष्ण लीलाओं में 'वॅथिवी सखरिवि सखरिवि वन कृष्ण दर्शुन कॅरिवी लो लो'[१] पर्याप्त चर्चित लीला रही है।

कृष्णलीला का अभिनय युक्त नाटक रास कहलाता है और 'बुलबुल' की रास लीलाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हैं। कहीं-कहीं उन्होंने मिश्रित ब्रजभाषा में भी रास-लीलाएँ लिखी हैं। कृष्णानुराग की हाला पीकर इस मंडलाकार नृत्य-प्रधान गायन में गोप-गोपियाँ परमानन्द का अनुभव करती हुई लीन हो जाती हैं। 'बुलबुल' के व्यक्तित्व का एक और आकर्षण यह है कि उन्होंने समान रूप से 'हर'(शिव) और 'हरि' (विष्णु) के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किए हैं। बुलबुल की शिव-लीलाओं में चिन्तन की गहनता और परिपक्व सोच की प्रधानता है। इनमें तर्क की कसावट अधिक है, प्रेम की उष्णता कम। शिवलीला वस्तुतः सम्पूर्ण जगत के शिवमय होने का एहसास गहराती है। 'बुलबुल' ने भक्ति और ज्ञान से सम्बन्धित अनेक स्तुति-परक रचनाएँ भी लिखी हैं जिनमें सन्त कवि कहीं सर्वव्यापक परमब्रह्म की दिव्य ज्योति में लय होने के लिये आकुल-व्याकुल दिखाई देता है और कहीं भौतिक संसार की क्षण-भंगुरता पर मानसिक क्षोभ और अकुलाहट को वाणी प्रदान करते हैं।

मसनवी (मस्नवी) शैली में बुलबुल की दो प्रबन्ध रचनाएँ उल्लेखनीय हैं - 'सामनाम' तथा 'नलदमयन्ती'। 'नलदमयन्ती' का मूल स्रोत स्वदेशी है तथा हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं विश्वासों के साथ जुड़ा हुआ है।

बुलबुल एक महान सन्त , सगुण कृष्ण-भक्त, तत्त्व-चिन्तक तथा एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। यह कहना उचित होगा कि पण्डित लक्ष्मणजू उन्नीसवीं शताब्दी के कश्मीरी कृष्ण काव्य के चहकते बुलबुल हैं।

---

* 'लक्ष्मण' शब्द का कश्मीरी रूप 'लॅखमन' हो जाता है। लक्ष्मणजू रैणा अपने कविनाम 'बुलबुल' से काफी चर्चित रहे हैं।

[१] 'परमानन्द'- भाग २ - जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन - १६७४ ई० - पृ० ६४



श्रीमती वन्ँमॉली कोठेदार

श्रीमती वन्ँमॉली एक गृहस्थी साध्वी थी । आपका जन्म हान्जीवेरा (बारामूला) नामक गावँ में पण्डित सोनुँ भट्ट के घर सन् १६०८ ई० मे हुआ। आप प्रसिद्ध सन्त स्यदमोल (पण्डित व्यदुँलाल भट्ट) की भतीजी थी। बचपन से ही आप माँ भवानी की भक्ति में लीन रहती थी। आप का विवाह बारह वर्ष की आयु में हुआ। आप नियम से सोमयार घाट पर जाकर वितस्ता में नहाती तथा सोमयार मन्दिर में शिवलिंग पर जल चढ़ाती थीं। आप हर शुक्लाष्टमी को श्रीनगर से तुलामुला गाँव तक पैदल जाकर माँ भवानी की पूजा अर्चना एवं दर्शन कर पैदल ही श्रीनगर लौटती थीं। आपने मन्त्र-बल से अपने अनेक भक्तों के कष्ट हरे हैं। स्वामी नन्दलाल जी मस्ताना, स्वामी आनन्दजी तथा स्वामी विद्याधर जी सरीखे सन्त आपका काफी आदर करते थे।

नन्दलाल मस्ताना नुनर ने आप को वन्ँमॉली पान्दछ विशेष नाम दिया था । नन्दलाल जी ने आप से कहा था कि तुम्हारे चार बाग़ मैं ले जाऊँगा। उत्तर में आप ने कहा मेरे चार बाग़ों के लेने का साहस न करना। मैं खुद जाऊँगी । कुछ समय के पश्चात् मन्दिर से होकर भगवान शंकर जी का फोटो सामने रख कर प्राण-त्याग किया । आध्यात्मिक पथ पर चलते हुए भी आपने सदा अपने पति के सुख-दुःख में साथ दिया। आपने अपनी बहू-बेटियों को अपने देह-त्याग के बारे में पहले से ही कह रखा था। उस समय आपने भगवान शंकर का चित्र सामने रख कर भौतिक काया को त्याग दिया। यह २८ फरवरी सन् १६६८ ई० की घटना है।



श्रीमती वर्नुमॉली कोठेदार (१६०८ - १६६८ ई.)

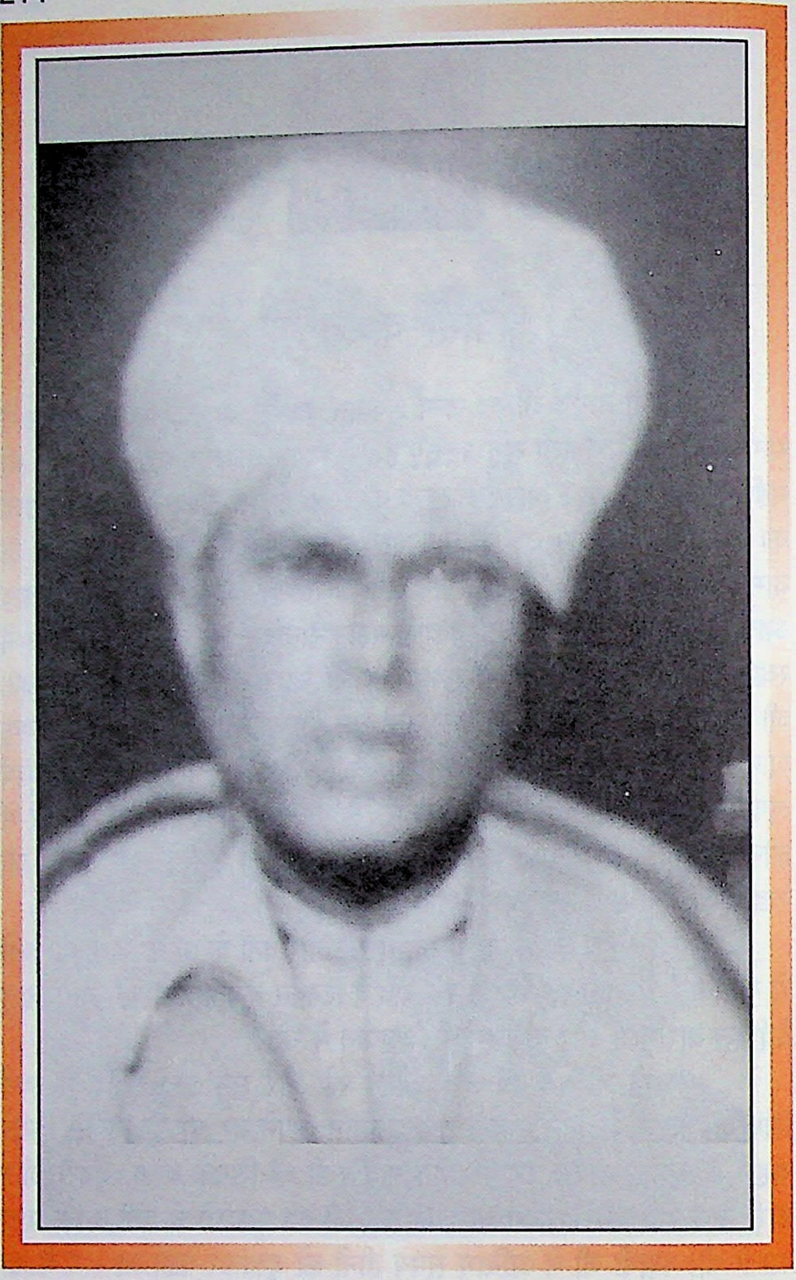


स्वामी वामन जी

स्वामी वामन जी का जन्म शुपयान कश्मीर के एक गाँव वस्वहाल में मार्ग शुक्ल पक्ष पूर्णमासी सन् १८६५ ई० में हुआ। आपका वास्तविक नाम श्री महीश्वरनाथ धर था । आपके पिताजी का नाम पण्डित टीकाराम और माताजी का नाम ज़यमाली था। आपके चार भाई और दो बहनें थीं। बाल्यकाल से ही वामन जी भजन कीर्तन में रुचि लेने लगे। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप गौतम नाग में निवास करने वाले महान सन्तों के सम्पर्क में आये जिन में स्वामी रामजी महाराज, स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज और स्वामी गाश काक जी महाराज उल्लेखनीय हैं। यहाँ उन्हें धर्म, अध्यात्म एवं दर्शन की सम्यक् जानकारी प्राप्त हुई और संस्कृत भाषा का अध्ययन भी किया। वे कई वर्ष लगातार आश्रम में रहे और गुरुजनों से गुरुमन्त्र प्राप्त करके साधना में लीन रहे। यहीं पर स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने उनका नाम वामन जी रखा और बाद में वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

कुछ समय वामन जी शारदा में रहे और वहाँ के महान भाषा पण्डितों से जानकारी प्राप्त करते रहे। इसके बाद वे टिक्कर कुपवाड़ा में रहे, तत्पश्चात् देवीबल बारामूला और कपालमोचन शुपयान में रहे।

स्वामी जी ५१ वर्ष तक जीवित रहे और सन् १६४६ ई० में स्वर्ग सिधारे। जीवन के अन्तिम ढाई वर्ष उन्हांने अपने घर पर ही व्यतीत किये। कहते हैं उन्होंने अपने घर पर तीन गायें रखी थीं जिनके ब्वद्ध, बबरी और हारी नाम रखे थे। जिस नाम की गाय को वह पुकारते थे वही उनके पास आती थी। स्वामी जी ने अन्तिम समय तीनों को बुलाकर कहा था – " मैं जा रहा हूँ, आपकी आवश्यकता पड़ेगी, क्या आओगे ?" तीनों ने साथ चलने की इच्छा व्यक्त की, स्वामी जी के देहान्त के बाद पाँच दिनों के अन्दर-अन्दर



स्वामी वामन जी (१८६५ - १९४६ ई.)

तीनों गायों की इहलोक लीला समाप्त हुई।

स्वामी जी ने जान से पहले स्वामी रामजी और स्वामी कृष्णानन्द जी से कहा था कि कश्मीर में विनाश होने जा रहा है, सर्वत्र अशान्ति रहेगी और जन, धन एवं सम्पत्ति का नाश होगा अतः मैं इससे पहले ही जा रहा हूँ। सुन कर सब आश्चर्य में पड़ गये थे।

देहान्त के एक वर्ष बाद सन् १६४७ ई० में कश्मीर पर कबाइलियों का हमला हुआ और निर्दोष देशवासी सर्वत्र त्रस्त हो उठे। चारों ओर हाहाकार मच गया। विनाशलीला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई । उस समय शारदा में रहने रवाले स्वामी रामचन्द्र जी की प्राण रक्षा वामन जी ने ही की थी यद्यपि उनका देहान्त एक वर्ष पहले ही हुआ था।

एक बार इलाके में ज़बरदस्त सूखा पड़ गया। लोग भूखों मरने लगे। भक्त-जन स्वामी जी के पास आये और कुछ उपाय करने के लिये विनती की। बहुत सोच समझ कर स्वामी जी एक दिन प्रातः समाधि लगा कर बैठ गये और सायम् काल तक उसी स्थिति में रहे। कहते हैं दूसरे दिन इन्द्रदेव ने कृपा की और इलाके में पानी बरसा।

गाँव के मन्दिर के हेतु मूर्ति की तलाश शुरु हुई । स्वामी जी की देख-रेख में एक वीरान स्थल पर खुदाई आरम्भ हुई और अकस्मात् भव्य शिवलिंग प्रणाली सहित प्राप्त हुआ। ज़मीन से मूर्ति निकाली गई और समारोह पूर्वक इसका प्रतिष्ठापन गाँव के मन्दिर में किया गया । विस्थापन तक यह मूर्ति मन्दिर में विद्यमान थी।

इस प्रकार स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में अद्भुत करामातों से जन-मानस को मोह लिया था और सैंकड़ों की संख्या में भक्तजन उनकी शरण में उपस्थित हो कर दिव्यानन्द का सुख प्राप्त करते थे। उनकी शिष्य परम्परा में श्री रामचन्द्र जी, महीश्वरनाथ जी, बाल जी और राधवराम जी उल्लेखनीय हैं ।

शोपयान बटपोरा के मूल निवासी श्री विनोद धर ने वामन जी के विषय में जो लिखित जानकारी उपलब्ध की उसी को आधार बनाकर प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार किया गया है।



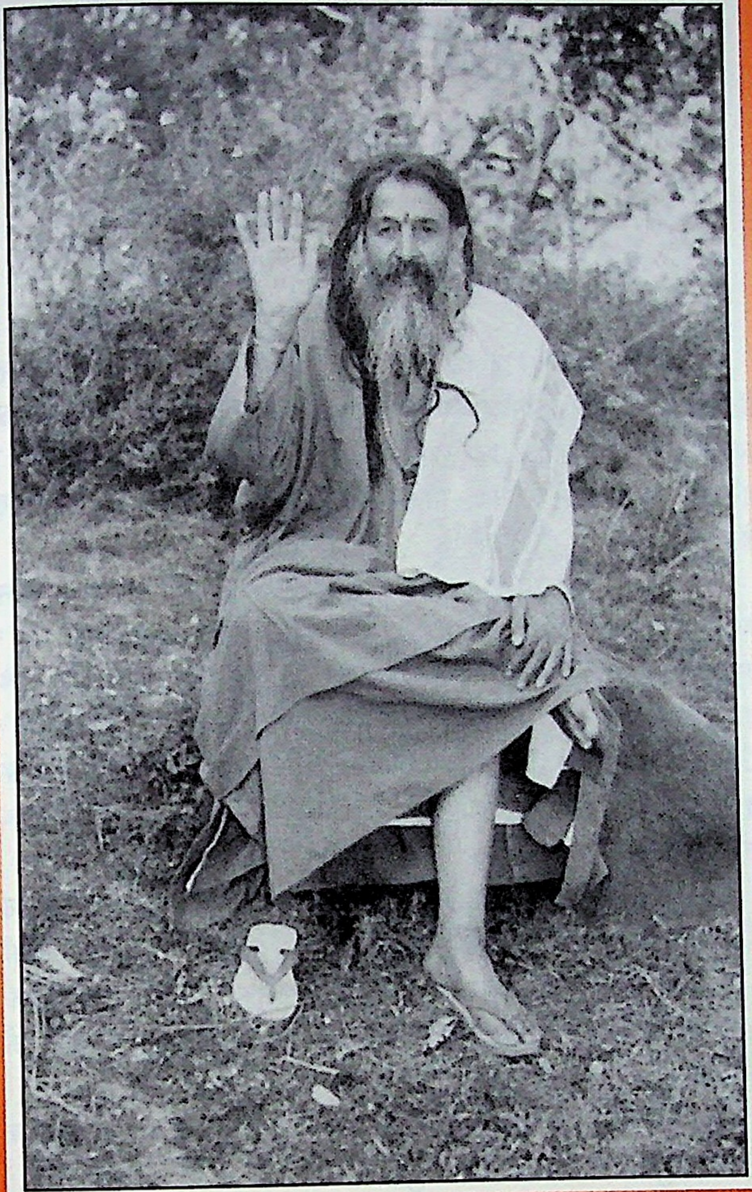
स्वामी विभीशण जी

आपका जन्म सन् १६३६ ई० में बारामूला में हुआ । आपके पिता जी का नाम फ़कीरचन्द बिन्द्रू था और माता का पार्वती। आप छः भाई और एक बहन थे । आप बचपन से ही गृहस्थ जीवन के प्रति उदासीन थे।

प्रारम्भ में कर्मकाण्ड और शास्त्रों का अभ्यास करते रहे । कई बार माघ मास का व्रत भी रखा । प्रातः चार बजे गणेश गोन्र्डे और देवीबल जाकर पूजा-अर्चना करते। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेज़ी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इन्हें बारामूला के एक फौजी वर्कशाप में नौकरी मिल गई। जहाँ ये पाँव में खड़ाऊँ पहन कर जाते थे । किन्तु ये अपनी साधना में लगे हुए थे। तभी आप एक चमत्कारी सन्त बनते चले गए। एक दिन अपने यूनिट के फौजी अफ़सर को श्रीनगर जाने से मनाह कर दिया और उनकी जान बचाई क्योंकि जिस गाड़ी में वे जा रहे थे श्रीनगर जाते हुए वह गाड़ी दुर्घटना ग्रस्त हो गई।

अन्ततः इन्होंने नौकरी छोड़ दी और इनकी माताजी ने इन्हें टिक्कर के स्वामी नन्दलाल जी की सेवा में भेज दिया। स्वामी जी की देख-रेख में आपने योग साधना प्रारम्भ की और धीरे-धीरे आप एक सिद्ध पुरुष बन गए। स्वामी नन्दलाल जी ने इन्हें हुशरू तहसील चाडूरा में एक आश्रम स्थापित करने की आज्ञा दी, जिसे इन्होंने पूरा किया।

सन् १६८६ ई० में इन्होंने हुशरू आश्रम त्याग दिया और ऊधमपुर के जिब गाँव में आश्रम स्थापित किया, साथ ही जम्मू में बोड़ी तलाब तिल्लू, में भी आश्रम की स्थापना की । सन् २००१ ई० में आपने बोड़ी आश्रम से ही वैकुण्ठ धाम के लिए प्रस्थान किया।



स्वामी विभीषण जी (१९३६ - २००१ ई.)



स्वामी विद्याधर जी

स्वामी विद्याधर जी का जन्म विक्रमी संवत् १६४२ के आषाढ़ मास में शीतलनाथ, श्रीनगर-कश्मीर के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में श्री गणकाक राजानक के घर हुआ । प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त हुई। कर्मकांड की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ सरकारी पाठशाला में संस्कृत भाषा पढ़ते रहे।

आपके गुरु प्रसिद्ध शैवाचार्य फ़तेहकदल के स्वामी रामजी थे जिनके सम्पर्क में आकर आपने शैव दर्शन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्ष की जानकारी प्राप्त की। स्वामी जी ने अल्पायु में ही गृह त्याग किया और विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए कई आश्रमों में रहकर साधना रत रहे। स्वामी जी अद्वैतवादी चिन्तन से भी पर्याप्त प्रभावित रहे। एकान्त में गहन वनों में तपस्या रत रहकर (मंज़गाम वन, कोकरनाग) बिना अन्न लिये खुले आवास में रहकर उन्होंने अद्भुत को जानने और पहचानने का प्रयास किया।

निरन्तर साधनारत रहने के कारण स्वामी जी सिद्धि पथ पर बढ़ते गये और ज्ञान सिद्धि के साथ साथ कर्म सिद्धि, वाक सिद्धि एवं दृष्टि सिद्धि भी प्राप्त की। स्वामी जी उच्चकोटि के सन्त और दिव्य द्रष्टा थे। जीवनकाल में स्वामी जी ने कई करामात (आश्चर्य चकित कर देने वाले कार्य) किये और भक्त जनों का उद्धार किया ।

मार्ग शुक्ल पक्ष तृतीया विक्रमी संवत् २००६ (१६४६ ई०) को ६४ वर्ष की आयु में स्वामी जी ब्रह्मलीन हुए।

गुरु स्तोत्र, निर्वाण विलाप, राज्ञन्या स्तोत्र, सरस्वती स्तोत्र, इन रचनाओं का अध्ययन करने पर यह बात स्वयं सिद्ध होती है कि स्वामी जी कश्मीर के शैव दर्शन, त्रिक् सिद्धान्त एवं अद्वैत दर्शन के महापण्डित थे। संवत्



स्वामी विद्याधर जी (१८८५ - १६४६ ई.)

२००३ विक्रमी को कर्णनगर श्रीनगर में उनके नाम पर आश्रम की स्थापना हुई । विस्थापन के बाद विवेक विहार, पलोरा-जम्मू में 'स्वामी विद्याधर स्वामी महादिव शैव आश्रम' पर हर वर्ष आषाढ़ त्रयोदशी एवं मार्ग शुक्ल पक्ष तृतीया को स्वामी जी की पुण्य स्मृति में यज्ञ का आयोजन होता है और उनके भक्त जन हज़ारों की संख्या में उपस्थित होकर मानसिक शान्ति प्राप्त करके आत्मानन्द में लीन हो जाते हैं।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



श्री व्यदलाल-'स्यदमोल'

स्वामी जी का जन्म सन् १६०२ ई० में हाँजीवेरा बारामुल्ला में हुआ। आपके पिता का नाम पण्डित व्यशर्नें लाल भट्ट था और आपके दो भाई थे। आपकी शादी अल्पायु में हो गई। तीन लड़के और दो लड़कियाँ हुईं। सबसे छोटा बेटा ओमकार नाथ सन् १६६२ की भारत-चीन लड़ाई में शहीद हो गया। दो बेटियों की शादी कराने के बाद आपने गृहस्थ जीवन से अलग होकर अपने ही घर में एक आश्रम की स्थापना की। हर महीने शुक्ल-पक्ष अष्टमी को आप हाँजीवेरा से माता क्षीरभवानी के दर्शन के लिए तुलमुला तक पैदल जाते थे। वहाँ रात भर पवित्र जलकुण्ड़ पर भवानी सहस्रनाम और इन्द्रक्षी का पाठ किया करते थे। माता भवानी की कृपा से आप एक सिद्धपुरुष बन गए।

आप को वाक्-सिद्धि प्राप्त हुई। आप सदा अपने भक्तजनों की कठिनाइयों को दूर करते थे। गृहस्थ होते हुए भी अपनी नित्य-नियम पूजा-साधना आदि में लीन रहते। कर्मकाण्ड के अभ्यासी थे। हरिद्वार में कई बार आपने माघ मास का व्रत रखा।

व्यदलाल जी को एक अज्ञात गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई। उसके बाद उन्हें अपने गुरुमहाराज के दर्शन कभी नहीं हुए लेकिन ज्ञान गुत्थियों को सुलझाने के हेतु उन्हें योगीराज स्वामी नन्दलालजी के शरण जाना पड़ा। स्वामी नन्दलालजी ने उनका मार्गदर्शन किया और उन्हें सिद्धि का वरदान देते हुए 'स्यदमोल' नाम रखा। आज भक्तजन उन्हें 'स्यदबब' भी कहते हैं।

स्यदमोल के प्रिय भक्तजनों में श्री जानकीनाथ कौल का नाम उल्लेखनीय है। श्रीनगर में वह प्रायः श्री जियालाल कौल के घर में रहते थे।



श्री व्यदलाल 'स्यदमोल' (१६०२ - १६८५ ई.)

कार्तिक कृष्ण द्वितीया सन 1985 ई० में व्यद बब ने श्रीनगर में निर्वाण प्राप्त किया। हर वर्ष कार्तिक कृष्णपक्ष द्वितीया के दिन उनका श्राद्ध बढ़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है।

श्री द्वारिकानाथ पण्डित 'बेबस' सोपोरी ने सन्त स्यदमोल (स्यद बब) शीर्षक से एक परिचय लेख 'कोशुर समाचार' के लिए लिखा जो अगस्त 1999 ई० में छपा है। प्रस्तुत परिचय लिखने के लिए उस लेख से सहायता ली गई है। वे लिखते हैं :-

हूंज़वेरे बऽबु दोरुथ अवतार,
च्यानि यिनॅु व्वलसनॅु आवव संसार
गटॅु च़ऽज्य गाश आव लोत गव गोब बार
स्यॅदु बऽबॅु आसिन च़्य जय जय कार ।।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



पण्डित व्यदलाल मट्टू

{ व्यद बब }

कश्मीर महान ऋषियों और सन्तों की साधना-भूमि रही है । इसे 'ऋषि-वाऽर' भी कहते हैं। इसी भूमि में पं० व्यदलाल मट्टू -जो जन साधारण में 'व्यद बब" के नाम से लोकप्रिय रहे हैं - का जन्म चन्दपोरा - हारवन में सन् १६०२ ई० में और निर्वाण फरवरी सन् १६६२ मे माना जाता है।

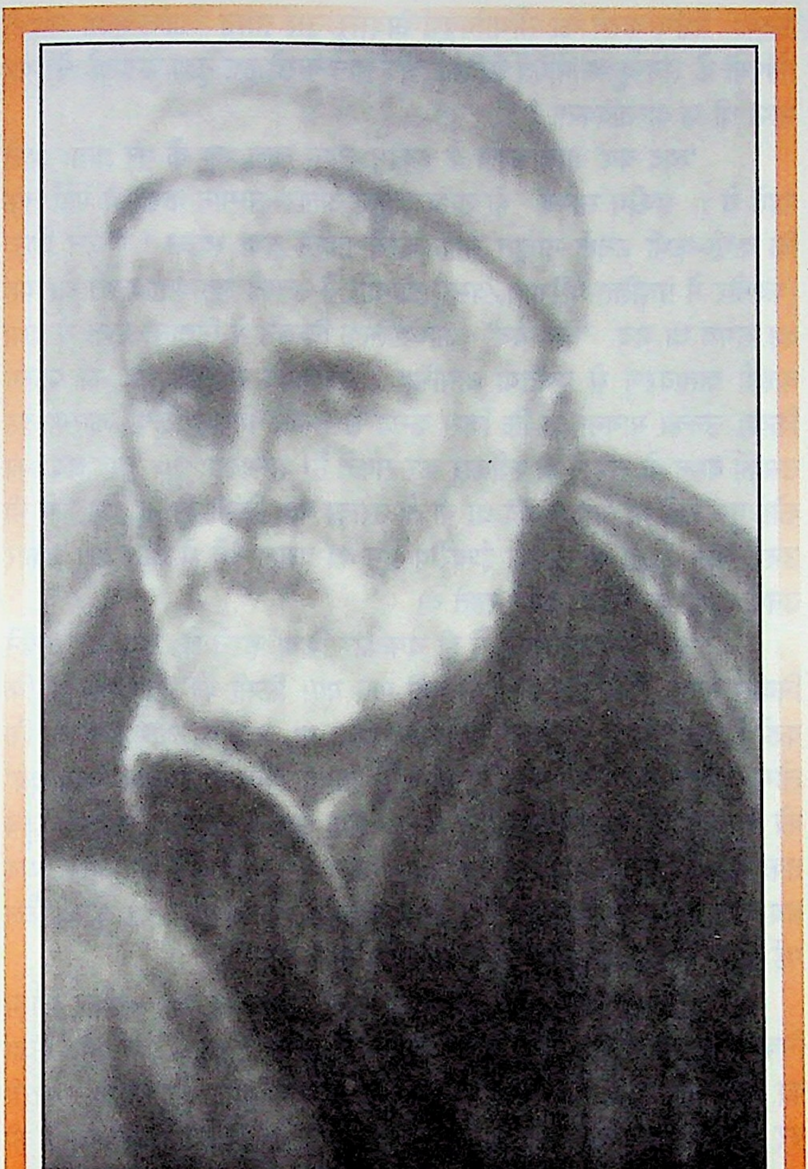
पं० व्यद लाल ने पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की और इसके बाद पुलिस विभाग में नियुक्त हुए। अविभाजित भारत में वे विभिन्न पदों पर जन्मू-कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत रहे। बाल्यकाल से ये गहरी धार्मिक आस्था तथा श्रद्धा-भक्ति स्वभाव के थे। चाहे कैम्प में सेवा-रत रहते या अन्यत्र, अपना भोजन स्वयं ही पकाते थे। ऐसा भी होता था कि कभी-कभी कई दिनों तक निराहारी बने रहते। उनमें अनोखी बात यह थी कि उन्होंने अपरम्परागत तौर-तरीकों से अध्यात्म की ऊँचाइयों को प्राप्त किया। निश्चय करने की स्वयं-प्रज्ञा के धनी थे।

दो दशकों तक पुलिस विभाग में सेवा कार्य करके नौकरी छोड़ दी और पूर्णरूपेण रहस्यवादी सन्त बने। निरुद्देश्य घूमते रहते पर एकान्त में मन अधिक रमा रहता था। उनके दर्शन प्रायः वृक्षों के सहारे या गोशाला की दीवारों के सहारे सुस्ताते हुए होते थे। जब अस्थायी तौर पर गंगा-धाट क्षेत्र में सेवा-रत रहे तो उसी पवित्र घाट पर नित्य स्नान, साधना और प्राणायम किया करते थे ।

शैशवास्था से ही श्रीकृष्ण के भक्त रहे। (लेखक[1] को कृष्ण रूप में

---

[1].लेखक से तात्पर्य श्री एम० के० मट्टू से है जिन्होंने पण्डित व्यदलाल मट्टू की जानकारी लिखित रूप में भेजी है। प्रस्तुत परिचय-पत्र लिखते समय उस सामग्री का उपयोग किया गया है।



पण्डित व्यदलाल मटट् 'व्यद बब' (१६०२ - १६६२ ई.)

उनके दर्शन करने का सौभाग्यपूर्ण अवसर उस समय प्राप्त हुआ जब वे गोपियों के संग कृष्ण भक्ति कविता का गायन करते हुए नृत्य कर रहे थे) यह माया थी या वास्तविकता ?

'व्यद बब' हब्बाकदल के हकीम श्याम लाल भट्ट के घर प्रायः आते रहते थे। हकीम साहब भी उनका बहुत आदर-सम्मान करते थे यहाँ तक कि कभी-कभी उनके नाखून साफ करने नहाने तथा स्वच्छ ' फ़िरन पोछ़' (कश्मीर में प्रचलित परिधान/वस्त्र) पहनाने में उनकी सहायता करते थे। यह वह समय था जब 'व्यद बब' आध्यात्मिक चिन्तन में नितान्त मस्त थे तथा बाहरी वातावरण से पूर्णतया अनभिज्ञ । आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। उनका मानना था कि जिस कन्या से उनका विवाह किया जाएगा वह उसको बहन के रूप में ही स्वीकार कर सकते हैं। सम्भवतः पं० 'व्यद बब' का कोई गुरु नहीं था अथवा यदि था भी तो उसका पता किसी को नहीं था, जो भी उनके पास आता था उसको ईश्वरीय-प्रेम का प्रसाद देते थे और इस प्रकार उनके दुःखों का निदान करते रहते थे।

'व्यद बब' अनजाने में ही चमत्कार किया करते थे। एक बार अपने निवास स्थान में वे तीन दिनों से नहीं पाए गए। किसी को पता नहीं था कि कहाँ है, इन्हीं दिनों 'तेलबल' नाला बाढ़ ग्रस्त था, बाढ़ का ज़ोर ऐसा था कि लोग सुरक्षित स्थानों की ओर भागने लगे। भागती भीड़ ने एकमात्र 'व्यद बब' को ही बाढ़ की भयंकर लहरों से आवृत्त एक सूखे भू-खण्ड पर पाया। जब तक जलस्तर गिरता रहा तब तक यह भू-खण्ड शुष्क ही बना रहा और 'व्यद बब' उस पर अविचलित बैठे रहे। इस चमत्कारिक घटना की खबर तुरन्त फैल गई और अधिकाधिक लोग उनके दर्शन हेतु आने लगे।

दूसरा चमत्कार तब हुआ जब उनकी पीठ पर एक भयंकर फोड़ा निकला सम्भवतः यह कैंसर से कुछ कम पीड़ा जनक न था, पर न कभी पीड़ा का आभास दिया और ना ही इसका उपचार करवाया। हाँ, गीली धरती पर पीठ रख कर थोड़ा -थोड़ा आराम करते रहे । कुछ समय बाद लोगों की आशा के विरुद्ध - जिन्होंने उनको मरणासन्न समझा था - स्वस्थ हो गए।

जीवन के अन्तिम दिनों में 'व्यद बब' ने ठोस पदार्थों का सेवन भी त्याग दिया और लगभग एक मास तक परमानन्द अवस्था में विभोर रहे। ख्रिव के स्वामी क्षेमराज अचानक ही उनके पास आए। अन्यथा बन्द उनके नेत्र

केवल स्वामी जी के दर्शन हेतु खुले, पण्डित जी ने अपने कर-कमलों से स्वामी जी का मुख छुआ और सदा सर्वदा के लिए उनके नेत्र बन्द हुए।



स्वामी शकर साहब

सन् १८०५-०७ के मध्य स्वामी शकर साहब* का जन्म एक प्रतिष्ठित कश्मीरी पण्डित परिवार - बकाया परिवार - में कन्याकदल श्रीनगर में हुआ। गोत्र से पालदेव वसुगार्गी थे । वे अपने पूज्य पिता पण्डित केशव काक बकाया के ज्येष्ठ पुत्र थे जो उस समय के राज्य-शासन में एक उच्च पद पर आसीन थे। उनके दूसरे पुत्र का नाम हिम्मत साहब था। बाल्यकाल से ही शकर साहब अपने घर पर साधुओं और सन्तों को आमंत्रित करते और उन्हें सम्मान पूर्वक भोजन आदि खिलाकर तृप्त करते। कहते हैं कि वे कटकोल (पास की नदिया) के ऊपर से चलकर पार हो जाते अथवा खडाऊं पहन कर किसी पेड़ या खम्भे पर चढ जाते, लोग अचम्भे में पड़ जाते क्योंकि ये क्रियायें एक सामान्य जीव के द्वारा हो ही नहीं सकती। १३ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध किया गया। पत्नी का नाम था सावी देवी जो उस युग के एक प्रतिष्ठित कश्मीरी पण्डित श्री देलामुंडुल की सुपुत्री थी। विवाह के कुछ दिन बाद वे अपने परिवार तथा दामाद जी के साथ तुलमुला यज्ञ करने तथा माताश्री का आशीर्वाद पान चले गये और यहाँ दामाद जी के साफे में चरस की ढलिया देखकर वे नाराज़ हुए, परस्पर झगडा हुआ और दामाद जी श्वसुर जी से रुष्ट होकर भाग खड़े हुए। रंग में भंग पड़ गया। शकर साहब के घर वालों को सूचना भेजी गई परन्तु शकर साहब का कहीं कोई पता नहीं निकला। इधर शकर साहब चुपचाप तुलमुला से शहर और लधू के रास्ते ज्वालादेवी के अस्थापन खिवुँ पहुँचे।

---

* 'साहब' शब्द का अर्थ है - स्वामी, सरदार, आदरणीय व्यक्ति का सम्बोधन, सम्मानार्थ शब्द कश्मीरी में इसी शब्द से 'सॉब' शब्द विकसित हुआ है।

(चित्र उपलब्ध नहीं है)

स्वामी शकर साहब (१८०५-०७ - १८४३ ई.)

खिवुँ के पास ही पहाड़ी पर उस युग के महान सन्त स्वामी जीवन साहब धूनी जगा कर साधना रत थे। समाधिस्थ अवस्था में उसने देखा शकर साहब गाँव के करीब पहुँच चुके हैं। ध्यान समाप्ति पर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा - जल्दी करो, मेरा गुरु भाई आ रहा है, उनका स्वागत करना है। वे नीचे गाँव के निकट पहुँचे जहाँ जीवन साहब शकर साहब के गले मिले और अपने पूर्वजन्म की कहानी अपने शिष्यों को सुनाई । पूर्वजन्म में भी जीवन साहब और शकर साहब परस्पर गुरु भाई थे।

श्री एस० एन० बकाया जिन्होंने सन् १९९६ ई० में "Tribute to a Great Master Swami Shakar Sahi" शीर्षक से शकर साहब पर एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है, के विचारानुसार शकर साहब के गुरु हांगुलगुंड अनन्तनाग के महान सन्त श्री मिर्ज़ काक थे।

पर्याप्त खोज करने के बाद घर वालों को शकर साहब का लधू के आश्रम में विद्यमान होने की सूचना मिली । वे आये, अनुनय विनय करने पर भी उन्होंने घर लौटना नहीं माना। पत्नी इसी शोक में चल बसी। स्वामी शकर साहब अपनी पत्नी के दाह संस्कार पर मसान (श्मशान) कुछ समय के लिये आये थे।

घूमते-घूमते शकर साहब हंदवारा के बटगुंड गाँव में पहुँचे । उनके तीन आरम्भिक शिष्य थे - कंडी साधुगंगा के शंकर कौल, बटगुंड के हैदरखान तथा एक और सज्जन जिसके नाम की जानकारी आज नहीं है।

तब तक शकर साहब की चर्चा सारे इलाके में फैल चुकी थी और आये दिन करामाती घटनाएँ होने लगी जिनमें एक हैदरखान की पत्नी से भी जुडी है। कुछ वर्ष स्वामी जी बटगुंड हन्दवारा में रहे। एक दिन उन्होंने वापस घर लौट चलने की ठान ली और बटगुंड छोड़ कर कन्याकदल श्रीनगर लौट आये और स्थायी रूप से यहीं रहने लगे। जब भी कोई असाध्य रोग से पीड़ित होता तो स्वामी जी उनके शरीर पर हाथ फेर कर अथवा फूँक मार कर उन्हें व्याधि मुक्त करते। कन्याकदल से वे स्तथू पाईन चले आये जहाँ उनके पिता जी केशवकाक बकाया ने नया घर बनवाया था।

इस महान सन्त एवं परम योगी दिव्य पुरुष ने अपने जीवनकाल में कई अद्‌भुत चमत्कार दिखाये। ब्रह्मलीन होने से पूर्व कुछ समय तक स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ जिनमें हैदर खान भी एक था, देवीआंगन हारीपर्वत

में रहे।

इधर उनके भाई हिम्मत काक की पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी के गर्भ से एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जो बाद में पण्डित ज़नारदन काक के नाम से चर्चित रहे। कहते हैं जन्म लेते ही बच्चा मर गया था परन्तु शकर साहब ने अपने प्राण उसमें डाल दिये और स्वयं अकस्मात् सदा के लिये अन्तर्धान हुए। यह घटना वैशाख शुक्ल पक्ष द्वितीया सन् १८४३ ई० को घटित हुई जबकि शकर साहब की आयु केवल ३६ वर्ष थी।

कहते हैं कि ज़नारदन काक को रात्रि में दैवी प्रेरणा मिलती थी और फारसी भाषा में रात के समय कविताएँ कोयले से कमरे के दीवारों में लिख देते थे। यह सिलसिला बहुत समय तक चलता रहा।

देहान्त के बाद शकर साहब का अन्तिम संस्कार कर्णनगर के शवदाह गृह में किया गया जहाँ एक किनारे पर उनकी समाधि बनायी गयी थी।

सत्थू पाईन में उनके निजी कमरे में उनकी महत्त्वपूर्ण चीज़ें (स्मृतिशेष / Relics) रखी गई थी जिनमें उनका आसन, बिस्तरा, पलंग और खडाऊं उल्लेखनीय हैं। उनकी टोपी बटगुंड हन्दवारा में रखी गई थी। उनके प्रमुख शिष्य मास्टर प्रसाद जी कौल यह महत्त्वपूर्ण स्मृतिशेष जम्मू लाये और इसे मुंशीचक के निकट गोलगुजराल आश्रम में रखा।

निर्वाण प्राप्ति के बाद उनके कमरे में जिसे पूजागृह में बदला गया है, अत्यन्त आकर्षक सर्प को जिसका छत्र सोने का होता था, आते देखा गया है। पूजागृह में रखे दूध को पीकर सर्पराज वापस लौट जाते थे । विश्वास यह था कि यह वास्तव में शकर साहब ही भक्तों के दर्शनार्थ आते हैं और दर्शन देकर लौट जाते हैं।

श्री एस. एन. बकाया ने स्वामी शकर साहब के विषय में जो महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की उसी के आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र बनाया गया है।



स्वामी शंकरजू राज़दान
{ शेंक्रन्य मकुँच़ }

शंकरजू राज़दान का जन्म कन्याकदल, श्रीनगर के एक सामान्य पण्डित परिवार में हुआ। माँ-बाप का पूरा परिचय प्राप्त नहीं है और न ही जन्म तिथि । माना जाता है कि इनका जन्म विक्रमी संवत् १८८६ (ई० सन् १८२६) में हुआ और विक्रमी संवत् १६३१ (सन् १८७४ ई०) में इनका देहावसान हुआ।

आपके पिता कुलगाम में माल विभाग में नौकरी करते थे, स्वामी जी उस समय पन्द्रह वर्ष के थे। लेकिन इन्हीं दिनों उनके मन में वैराग्य भावना और भगवद्भक्ति का जन्म हो चुका था। उनके प्रारम्भिक जीवन का अधिकांश भाग इसी क्षेत्र के विभिन्न स्थलों पर गुज़रा। वे ब्रारिआंगन उत्तरसू में उमादेवी तीर्थस्थल पर पाँच वर्ष रहे। मंजगाम, जहाँ क्षीरभवानी का मन्दिर है, में स्वामी जी ने आश्रम बनाने की ठानी, किन्तु जैसे ही वेशॅव नदी पार करने का प्रयास किया वैसे ही नदी में तूफान आया, देवी माँ प्रकट हुई और श्री शंकर राज़दान को आदेश दिया कि आप की जगह मंज़गाम नहीं है, आप सफ़ाकदल, श्रीनगर के स्वामी ज़नार्दन धर से दीक्षा ले लो। स्वामी जी तुरन्त श्रीनगर के लिए निकल पड़े और सफ़ाकदल पुल पर पण्डित ज़नार्दन धर इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, जैसे ही ये वहाँ पहुँचे तो स्वामी ज़नार्दन ने इन्हें गले लगाया और अपना शिष्य बनाया । वे बहुत समय तक उनका मार्गदर्शन करते रहे।

इसके बाद स्वामी जी १२ वर्ष तक तोसॉ मैदान में तपस्या करते रहे। तपस्या की समाप्ति पर वे श्रीनगर लौटे और छताबल में कुटिया डाल कर वहीं रहने लगे। स्वामी जी बालब्रह्मचारी वैष्णव साधु थे। अपने पास एक कुल्हाड़ी रखा करते थे और उसकी पूजा भी करते। उनके लिए यह कुल्हाड़ी ही समस्त



स्वामी शंकरजू राज़दान 'शेंक्रन्य मकुँच' (१८२६ - १८७४ ई.)

ज्ञान का आधार थी। कहते हैं कि एक बार बिजबिहाड़ा में वे आए थे। कुल्हाड़ी की पूजा कर रहे थे कि लोगों ने पूछा कि महाराज यह कुल्हाड़ी पूजन क्यों ? इस पर स्वामी शंकर राज़दान ने हँसते हुए अपनी कुल्हाड़ी एक बड़े पत्थर पर दे मारी - कुल्हाड़ी पत्थर में धँस गई। लोग काफी ज़ोर लगा कर भी कुल्हाडी को पत्थर में से नहीं निकाल सके। इसी धटना के आधार पर स्वामी जी का नाम ' शेंक्रन्य मर्कुच' प्रसिद्ध हुआ।

उन्होंने अनेक चमत्कार किये और उनके भक्तजनों की संख्या दिनोदिन बढ़ने लगी। एक बार श्रावण पूर्णिमा पर श्री अमरनाथ जी की यात्रा के दिन अमरनाथ जी की गुफ़ा के पास भयंकर बर्फीला तूफान आया - यात्रियों के बचने की कोई आशा न रही। स्वामी जी छताबल की अपनी कुटिया के तहखाने में धुसे और अमरनाथ गुफ़ा पर प्रकट हुए और सभी यात्रियों को बचा लिया।

महाराजा रणवीर सिंह तथा महाराजा प्रताप सिंह उनके आश्रम पर माथा टेकने आते थे। उनके आदेश पर आश्रम के लिए 250 कनाल ज़मीन का जागीर दिया गया जो मनिगाम गांदरबल में था और जिससे आश्रम का लंगर चलता था। भारत की आज़ादी के बाद यह जागीर आश्रम से छीना गया। छत्ताबल दॉनवारी में आपका मन्दिर है जिसमें आप की कुल्हाड़ी, खडाऊँ, वस्त्र आदि हुआ करते थे, जो अब सम्भवतः नहीं हैं।

स्वामी शंकर राज़दान एक माहन सन्त होने के साथ-साथ एक प्रतिभा सम्पन्न लेखक भी थे। श्री एम० के० रैणा ने स्वामी शंकर राज़दान पर एक परिचय लेख लिखा है जो 'काशुर समाचार' फरवरी १९९९ ई० अंक में प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने लिखा है कि शंकर राज़दान ने कश्मीरी पद्य में रामायण शारदा लिपि मे लिखा है और इसके अतिरिक्त असंख्य 'वाख' लिख कर पीछे छोड़ गये हैं।

शंकर राज़दान ने कश्मीरी भाषा में शारदा लिपि में राम काव्य लिखा है यह एक महत्त्वपूर्ण जानकारी है। ज़ाहिर है इसकी मूल पाण्डुलिपि उनके परिवार जनों के पास होगी।

छताबल आश्रम में वे सब का स्वागत करते थे। चाहे वह शासक हों या सामान्य भक्त जन। उन्होंने एक विधवा के रोगग्रस्त पुत्र को जीवनदान देकर दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकारा और उसका पालन पोषण किया । उस

शिशु को नया नाम दिया – रामजी ।

जब उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई, महाराजा ने उनके नाम पर समाधि निर्मित करवाई और इसे 'मन्दिर रत्नज्योति' नाम दिया। इसी मन्दिर में स्वामी जी की चीज़ें रखी गईं जिनमें कुल्हाड़ी, वस्त्र तथा पुस्तकों के अतिरिक्त वे सब उपहार रखे गये जो श्रद्धावश लोगों ने अथवा महाराजा ने उन्हें भेंट किये थे।

श्री एम० के० रैणा ने अपने लेख में स्वामी जी की दिव्य शक्ति से जुड़े कई प्रसंग एवं घटनाएँ बयान की हैं जिनसे हम उनकी आध्यात्मिक बुलन्दी और देवी माँ की कृपा से प्राप्त ब्रह्मज्ञान की जानकारी प्राप्त करते हैं। उन्होंने अपनी उपलब्धियों को सदा जन कल्याण और मानवोद्धार के हेतु प्रयोग में लाया।

प्रस्तुत परिचय पत्र को लिखते समय श्री एम० के० रैणा के लेख से सहायता ली गई है।



स्वामी शक्ति चैतन्य जी

मानव कल्याण के हेतु सन्तों, साधुओं और तपस्वियों की भूमिका विविध युगों में विविध स्थानों पर महत्त्वपूर्ण रही है । सत्य, सद्-व्यवहार, अध्यात्म एवं परमानन्द पथ पर उन के सदोपदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इन्हीं प्रसिद्ध सिद्ध योगियों में शक्ति चैतन्य जी महाराज एक हैं।

स्वामी शक्ति चैतन्य जी का वास्तविक नाम पण्डित शम्भूनाथ धर था और कश्मीर के प्रसिद्ध धर परिवार में सफ़ाकदल श्रीनगर में उनका जन्म सन् १६१६ ई० में हुआ। सन् १६३६ ई० में एस० पी० कालेज श्रीनगर से स्नातक की उपाधि पा कर अकस्मात् आपने सन्यास लेकर सब को आश्चर्य में डाल दिया।

कश्मीर प्राचीनकाल से ही शारदापीठ कहलाता है। इस ने कई विद्वानों, ज्ञानियों, सन्तों और अध्यात्म की खोज में आये महात्माओं को अपनी ओर आकर्षित किया इन्हीं में एक आशोकानन्द जी हैं जो मूलतः बंगाल के निवासी थे और कश्मीर में सुम्बल में वर्षों रह कर 'सुम्बली बाबा' के नाम से विख्यात हुए । अन्त में इन्होंने नागडंडी अच्छाबल में आश्रम बनाया और इसी आश्रम में आकर शम्भूनाथ धर गुरु दीक्षा पाकर शक्ति महाराज के नाम से विख्यात हुए । उनके मानस में अध्यात्म की ज्योत जगाने में स्वामी सच्चिदानन्द महाराज जो परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की शिष्य परम्परा में आते हैं, का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके आदेशानुसार वे उत्तर काशी के पर्वतों में गहन तपस्या में लीन हुए और धीरे-धीरे दिव्य स्वरूप से परिचित हुए। पर्याप्त ज्ञानार्जन और आत्मचिन्तन के पश्चात् गुरु महाराज ने इन्हं कर्णनगर श्रीनगर में 'रामकृष्ण अद्वैत आश्रम' की स्थापना करने का आदेश दिया । यही पर घाटी के प्रसिद्ध विद्वान, बुद्धिजीवी और तत्त्वचिन्तक उनकी



स्वामी शक्ति चैतन्य जी (१६१६ - २००१ ई.)

ओर आकृष्ट हुए । इनमें श्री नन्दलाल कितरू, श्री पी० एन० के० बामज़ई, प्रो० चमनलाल सप्रू आदि उल्लेखनीय हैं । यहाँ विधिवत धर्म सभाओं का आयोजन होता था और शक्ति महाराज अपने प्रवचनों से सब श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते थे । गुरु महाराज के देहान्त के बाद शक्ति महाराज जम्मू आये और यहाँ रामकृष्ण अद्वैताश्रम की स्थापना की। शक्ति महाराज ने अपनी सतत जीवन साधना से 'अहं' भाव को परास्त कर वश में किया था। उन्हें व्यर्थ के प्रचार से घृणा थी और झूठे प्रशंसकों से दूर रहते थे। उनके निकट बैठने से ही मनुष्य मानसिक शान्ति प्राप्त करके आत्मानन्द में लीन हो जाता।

शक्ति महाराज ने महाप्रयाण से पहले आश्रम को रामकृष्ण मिशन बिलोर के सुपुर्द किया । ४ अगस्त २००१ ई० को रक्षाबन्धन के दिन वे परमब्रह्म में लीन हुए।

श्री के० एल० कल्ला ने शक्ति महाराज के विषय में जो महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की उसी के आधार पर प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार किया गया है।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



मास्टर शंकर कौल

मास्टर शंकर कौल जो अपनी ज्ञान गरिमा और विद्वता के कारण लोगों में शंकर पण्डित के नाम से चर्चित थे, सन् १८७६ ई० में श्रीनगर कश्मीर में जन्मे थे। स्टेट हाई स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें मिशन हाई स्कूल फतेहकदल श्रीनगर में प्रेवश मिला। यह स्कूल लन्दन की चर्च मिशन सोसाइटी सी० एम० एस० द्वारा चलाया जाता था। बिस्कू साहब स्कूल के प्रिन्सिपल थे । उनके सम्पर्क में शंकर कौल की प्रतिभा का समुचित विकास हुआ और शिक्षा प्राप्ति के बाद वे इसी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए । कई वर्ष स्कूल में कार्यरत रहकर मास्टर जी की योग्यता और ज्ञान गरिमा की धाक जम गई । तिरपन वर्षों तक वे स्कूल से जुड़े रहे और मुख्याध्यापक की पदवी प्राप्त की । उस युग में कश्मीर घाटी के नामवर अध्यापक जैसे पण्डित संसारचन्द कौल, नन्दलाल बकाया, एन० एन० फोतेदार, एन० एन० मिसरी तथा शिव जी कौल स्कूल में पढ़ाते थे।

मिशन स्कूल में अध्ययन करते वे खेल कूद और अन्य अतिरिक्त छात्र- जीवन सम्बन्धी गतिविधियों के प्रति आकर्षित हुए। वे एक सफल तैराक़, मज़बूत पर्वतारोही, व्यायामिक प्रशिक्षक (Gymnastic Instructor) और अनुशासित शिक्षार्थी बन गये। बी० ए० पास करने के बाद मास्टर शंकर कौल ने बी० एड० की परीक्षा पास की और केन्द्रीय मिशन स्कूल में १८६६ ई० में अध्यापक नियुक्त हुए।

सी० एम० एस० स्कूल के चर्चित अध्यापकों में वे एक थे। वे एक प्रतिभा- सम्पन्न शिक्षक और खेल कूद तथा अन्य छात्र गतिविधियों के विशेषज्ञ थे। अंग्रेज़ी भाषा की सम्यक् जानकारी के अतिरिक्त उन्हें फारसी, अरबी और उर्दू भाषाओं पर विशेष अधिकार प्राप्त था। संस्कृत भाषा की भी



मास्टर शंकर कौल (१८७६ - ई.)

उन्हें जानकारी थी। यद्यपि वे एक सनातनी हिन्दू थे उन्हें ईसाई धर्म एवं विश्वासों तथा इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों की सम्यक् जानकारी प्राप्त थी। वे प्रायः विभिन्न धर्म ग्रन्थों से उचित उदाहरण प्रस्तुत कर अपने कथन की सार्थकता सिद्ध करते थे । गुण सम्पन्न होने के साथ-साथ वे मन, वचन और कर्म से सच्चे और सन्त प्रकृति के जीव थे । वे अध्यात्म ज्ञान में विशेष रुचि रखते थे तथा फ़ारसी भाषा के कवियों और सूफी सन्तों के प्रति आकर्षित थे। केनन बिस्कू ने अपनी पुस्तक 'सनलाइट एण्ड शेड' में लिखा है – ' जो शंकर नहीं जानता है वह जानने के योग्य भी नहीं है।' इस से शंकर कौल की ज्ञान गरिमा और व्यक्तित्व के बड़प्पन का अनुमान लगाया जा सकता है। हर दिन प्रातः स्कूल के समस्त विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के सम्मुख प्रार्थना सभा में उनके द्वारा दिया गया नीति-उपदेश भाषण ज्ञान-गर्भित और विचार उत्तेजक होता था। उनकी स्पष्ट धारणा, विचारों की गरिमा और विस्तृत व्याख्या सब सुनने वालों पर अपनी मायिक/जादूई प्रभाव डाल देती थी ।

मास्टर शंकर कौल समाज सेवा के कार्यक्रमों में भी विशेष रुचि लेते थे। प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने के लिये वे अपने छात्र दल के साथ निकलते थे। चाहे कहीं आग लगी हो, महामारी फैली हो या बाढ़ आई हो वह अपने छात्रों के साथ जनसेवा के लिये निकल पड़ते थे। पशुओं के साथ जो दुर्व्यवहार होता था वे उसके विरुद्ध भी आन्दोलन चलाते थे । इस प्रकार बाढ़ के दिनों में बाढ़ पीड़ितों के साथ और महामारी के दिनों मे रोगियों की सेवा करते दिखाई देते थे।

हिन्दू समाज में बाल विवाह से पीड़ित महिलाओं के उद्धार हेतु वे विधवा- विवाह के पक्ष में आन्दोलन चलाते रहे । वे महाराजा हरिसिंह से मिले, बाल-विधवाओं की दुर्दशा की जानकारी उन्हें प्रदान की और उन्हें सन् १९२८ ई० में विधवा विवाह क़ानून बनाने के लिये प्रेरित किया जिस के आधार पर हिन्दू विधवाओं को पुनः विवाह करने का अधिकार मिल गया। उन्हीं के प्रयासों का यह फल था कि सन् १९२८ में बिस्कू ने अपनी पुस्तक ' सनलाइट एण्ड शेड ' में इस प्रयास की सफलता के लिये मास्टर शंकर पण्डित की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी मास्टर शंकर पण्डित श्रीनगर नगरपालिका के लिये नगर पालिका आयुक्त भी निर्वाचित हुए थे। जन सेवा के हेतु वे

सक्रिय रूप में कार्यरत रहे और नगर की सफ़ाई के कार्यक्रमों में उन्होंने विशेष रुचि ली। उस युग की सरकार समय-समय पर जन सेवा कार्यक्रमों में उनसे राय लेती थी।

यद्यपि शंकर पण्डित आजीवन ईसाई मिशन स्कूल में कार्यरत रहे तथापि उन्हें अपने धार्मिक विश्वासों में सुदृढ़ आस्था थी और धार्मिक कार्यक्रमों में वे विशेष रुचि लेते थे। जीवन के सन्ध्या काल में भी वे अस्वस्थ रहने के बावजूद ग़रीबों और हाजतमन्दों की सेवा में व्यस्त रहे। वे एक महान कर्मयोगी पण्डित थे और कर्मयोगी सदा कर्मशील जीवन-व्यवहार में विश्वास रखता है। वे कहा करते थे - 'क्रियारत रह कर छीजना (क्षय होना, नष्ट होना) निष्क्रिय रहकर सड़ जाने से बेहतर है।' वे अपने भोगे हुए जीवन सत्य का ही प्रचार करते थे। उन्हें उपदेश देने में रुचि नहीं थी अपितु अपने जीवनानुभव और आदर्शों के अनुसार व्यवहारी पुरुष बनने में पूर्ण आस्था थी। उन्हें विश्वास था कि सेवा भाव ही सबसे बड़ी पूजा है। निस्वार्थ सेवा भाव और जन कल्याण का संकल्प मानव को देवता बना देता है और उसके दानवी तत्त्वों का संहार कर देता है - धार्मिक ढोंग और दिखावे का यहां कोई महत्त्व नहीं रहता।

शंकर पण्डित ने आजीवन इस सिद्धान्त और विश्वास का पालन किया है।

स्पष्ट है कि मास्टर शंकर कौल एक महान कर्मयोगी महापुरुष थे जिन्होंने अपनी ज्ञान गरिमा और बहु आयामी व्यक्तित्व के प्रभाव से समाज को एक नयी दिशा प्रदान की।

मेरे विचार से ज्ञान-दान सब से बड़ा दान है। युवा समाज को जीवन संघर्ष के हेतु तैयार करना और उनकी ज्ञान चक्षुओं को विवेक के प्रकाश से भर देना एक महान सामाजिक कर्तव्य का निर्वाह करना होता है और मास्टर जी आजीवन इस उत्तदायित्व को निबाहते रहे।

मास्टर शंकर कौल का देहान्त सम्पूर्ण कश्मीरी समाज के लिए एक दुखद घटना थी।



योगिनी शारिका जी

मूलतः श्रीनगर-कश्मीर में महाराजगंज बाज़ार के निकट सराफ कदल मुहल्ले में रहने वाले और बाद में श्रीनगर के वज़ीरबाग क्षेत्र में नये मकान में रहने वाले श्री जियालाल जी सोपोरी तथा उनकी धर्मपत्नी राधिकारानी के यहाँ इस शिव योगिनी का जन्म वि० सं० १९७० (सन् १९१३ ई०) सप्त० सं० ४९७६ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष द्वितीया को हुआ था। बाल्यावस्था से ही इनकी प्रवृत्ति धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, प्रातः स्नात होकर नित्य-कर्म में अभ्यास-रत होने और एकान्त में भजन-कीर्तन करने में रही। ऐसी दिनचर्या में लीन रहकर सुश्री शारिका गुरुमहाराज ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू के सम्पर्क में आईं। गुरुदेव के प्रति इनकी भक्ति और श्रद्धा दैनंदिन तीव्रतम होती गई और सन्तुष्ट होकर गुरुदेव ने भी उन पर अपार अनुग्रह किया। ज्ञान-दान मिला और इन्होंने वैवाहिक जीवन न अपनाने का व्रत ले लिया । सर्वतो भाव से गुरु सेवा में आजीवन लगी रहीं। जीवन भर शैव शास्त्रों का मनन करती रहीं । इस परिपूर्ण योगिनी ने २ फरवरी १९९१ / २० माघ २०४७/फाल्गुण कृष्ण पक्ष तृतीया सप्त० सं० ५०६६ को महासमाधि ली। इनकी अरथी को इनके गुरु महाराज ने स्वयं सजाया और यह कह कर विदा किया, " तुम चलो, हम भी कुछ समय के बाद आ रहे हैं; हमें थोड़ा सा काम है " यह प्रतिज्ञा गुरुदेव ने ७ मास पश्चात् पूरी की। स्वामी लक्ष्मण जू ने २७ सितम्बर सन् १९९१ ई० के दिन महानिर्वाण प्राप्त किया।

सुश्री शारिका देवी ने लक्ष्मण जी के निर्देश में ही योग साधना आरम्भ की और कुछ ही वर्षों के अनन्तर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। हर्षाधिक्य में वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठी और बावला गई। उन्हें उनके पिता के घर



योगिनी शारिका जी (१९१३ - २००१ ई.)

पहुँचाना पड़ा। कुछ समय के बाद लक्ष्मण जू स्वयं वहाँ गये। बीमार को देखकर कुछ अंगूर खाने को दिये और धीरे-धीरे योगिनी का मानसिक सन्तुलन लौट आया और वह पूर्ण स्वस्थ हुई। लक्ष्मण जू ने उनकी छोटी बहन प्रभा जी को भी दीक्षा दी थी। ईश्वर आश्रम के निर्माण के बाद शारिका जी के पिता श्री जिया लाल ने आश्रम के पास ही शारिका जी के लिये एक निवास गृह का निर्माण करवाया।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



पण्डित श्यामलाल वांचू

{ बाबा हज़ीन }

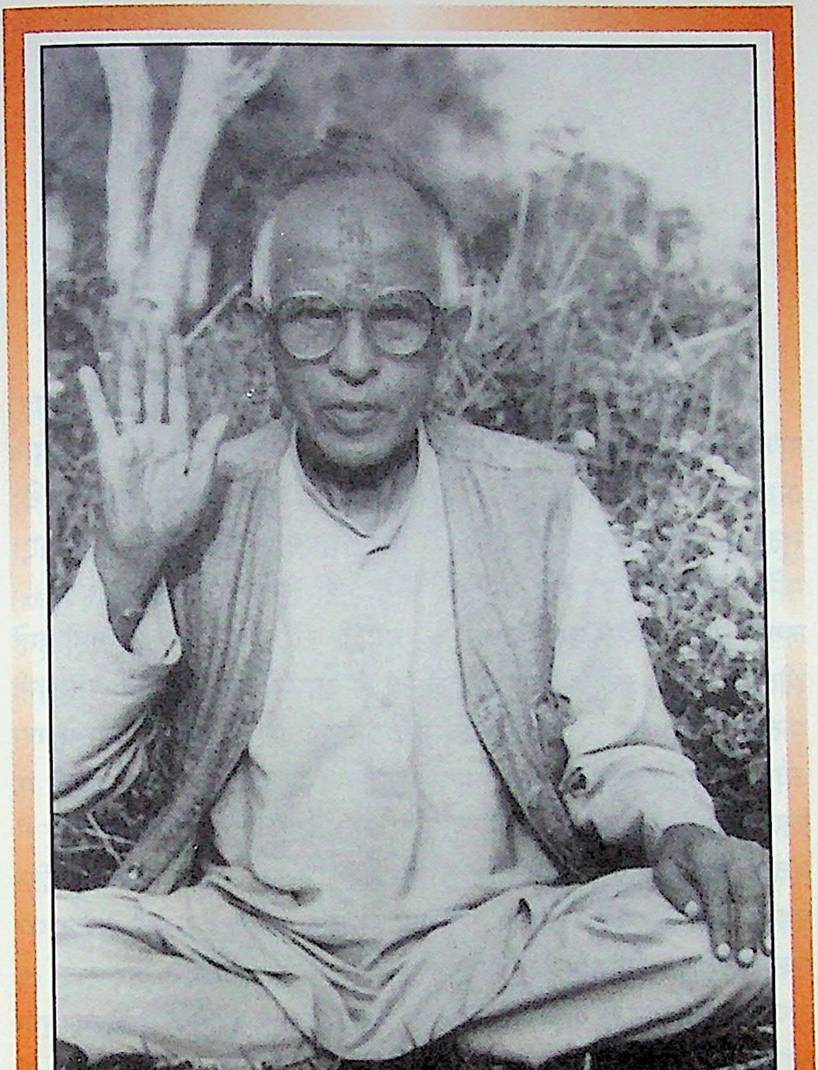
आपका जन्म मार्ग शुक्ल पक्ष द्वितीय के दिन सन् १६१६ ई० में स्वामी कण्ठराम जी वांचू और उनकी सहधर्मिनी ज़ूॅनमाल के घर हुआ। बाल्यकाल समाप्त होते ही माता-पिता ने गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट करवाया। पत्नी प्रभावती निष्ठावान पति-परायण रही किन्तु आप ने गृहस्थ जीवन के साथ-साथ साधु वृत्ति को जीवित रखा। वैराग्य न लेकर गृहस्थ जीवन और सन्यासाश्रम का समन्वय कर जीवन व्यतीत किया। आप अपने ही जीवन के अनुभूत आध्यात्मिक रहस्यों को अपनी रचनाओं के द्वारा जनता तक पहुँचाते रहे। आपके द्वारा रचित पुस्तकें/रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१. भाव रस,

२. लोलॅुक आलव

३. कलामि हज़ीन, इत्यादि।

आपका स्वर्गवास चैत मास में कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन सन् १६६६ ई० में हुआ। आप मूलतः यारीपोरा बटसर ग्राम कुलगाम के निवासी थे और 'बाबा हज़ीन' के उपनाम से जाने जाते थे। विस्थापन के बाद आपके भक्तजनों ने संग्रामपोरा, गजनसू जम्मू में आपके नाम पर एक आश्रम की स्थापना की है।



पण्डित श्यामलाल वांचु 'बाबा हज़ीन' (१९१६ - १९९९ ई.)



श्रीभट्ट

पण्डित श्रीभट्ट सुल्तान ज़ैन-उल-आब्दीन {(बड़शाह) राज्यकाल १४२० ई० - १४७० ई०)} के राज्यकाल में हुए हैं। आप अध्यात्म-पथ के पथिक होने के साथ-साथ एक प्रवीण वैद्य भी थे। सुल्तानी दौर में कश्मीरी पण्डितों पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढाये गए। मन्दिर एवं इनमें स्थापित मूर्तियाँ तोड़ी गई, तरह-तरह के कर (Tax) लगाये गए। संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने की मनाही की गई । इतना ही नहीं इन्हें झीलों में ज़िन्दा डुबोया गया और ज़िन्दा ही आग में जलाया गया। सुल्तानी यातनाओं से तंग आकर कई कश्मीरी पण्डित परिवार मुसलमान हो गए और अधिकांश देश के दूसरे भागों में अपना धर्म और इज़्ज़त बचाने के लिए पलायन पर मजबूर हो गए। कहा जाता है कि इस दौरान कश्मीर में केवल ग्यारह पण्डित घर ही रह गए थे। सुल्तान ज़ैन-उल-आब्दीन पहले-पहले अपने पुरखों के रास्ते पर ही चला पर जब उसके शरीर पर एक ज़हरीला फोड़ा निकला जिसका इलाज शाही तबीब न कर सके तो अपने एक वज़ीर के कहने पर श्रीभट्ट वैद्य को, जो कश्मीर में विचारनाग श्रीनगर में रहते थे, इलाज के लिए बुलाया गया। वैद्य जी के इलाज से सुल्तान कुछ ही दिनों में भला चंगा हो गया। सुल्तान ने श्रीभट्ट को दरबार में बुला कर पुरस्कृत करना चाहा पर अध्यात्म के पथ पर चलने वालों को धन-सम्पदा और अन्य लालच आकर्षित नहीं करते । उन्होंने पुरस्कार लेने से इनकार किया। जब सुल्तान ने श्रीभट्ट को कुछ मांगने पर मजबूर किया तो श्रीभट्ट ने कहा - " अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मेरे गुरु पण्डित विष्णु जुँव तथा अन्य सभी कश्मीरी पण्डितों



श्रीभट्ट (१५वीं शताबदी ई.)

को वापिस बुलाइये। आपके पिता ने उन पर जो जिज़िया (विशेष कर) लगाया है उसे मुआफ कीजिए तथा संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने आदि पर लगाई गई पाबन्दी उठाइये।" सुल्तान ने ऐसा ही किया। कश्मीरी पण्डित घाटी लौट आये और इसी के साथ कश्मीर का वैभव भी लौट आया। सुल्तान का मानसिक परिवर्तन हुआ। उसने प्रजा की भलाई के लिए कई काम किये इसी कारण उनका नाम 'बड़शाह' याने बड़ा बादशाह पड़ा।

कश्मीरी पण्डित हर साल चैत्र कृष्ण अमावस्या को श्रीभट्ट दिवस मनाते हैं।

कहते हैं कि एक 'निश्चित कार्य योजना' के तहत श्रीभट्ट कश्मीरी पण्डितों को पुनः कश्मीर वापस बुलाने तथा उन्हें बसाने में सफल हुए। इस कार्य योजना को स्वयं श्रीभट्ट ने तैयार किया था और बड़शाह ने खुले दरबार में इसको स्वीकृति प्रदान की थी।

श्रीभट्ट ने अपने जाति बन्धुओं के लिये सब कुछ दाँव पर लगाकर मुसलमान शासक का दिल भी जीत लिया। स्वस्थ होने के बाद बादशाह की कार्य प्रणाली, चिन्तन एवं निर्णय शक्ति में स्वस्थ परिवर्तन हुआ और प्रजा-जन उनके त्याग एवं समर्पण की भावना से गद्-गद् हो उठे।

श्रीभट्ट एक दैवी गुण सम्पन्न वैद्य थे और जंगलों से जड़ी बूटियाँ इकट्ठी करके स्वयं अपने हाथों से रोगोपचार हेतु औषधियाँ तैयार करते थे। इसलिये जन-हिताय एव सेवा भाव का संकल्प लेकर वे जीवन क्षेत्र में सक्रिय रहे। श्रीभट्ट निस्सन्देह एक महापुरुष और सन्त थे।

एक महान सन्त की तरह उन्होंने कभी अपने व्यक्तिगत सुख की चिन्ता नहीं की बल्कि व्यक्ति-सुख को समष्टि के कल्याण हेतु त्याग दिया था। इसी त्याग भावना ने श्रीभट्ट को अमर कर दिया था।

कुटिया निवासी, स्वल्पाहारी एक सज्जन पुरुष ने अपने व्यक्तित्व के दैवी आकर्षण से तत्कालीन शासक का दिल जीत लिया था। श्रीभट्ट लोक कल्याण की भावना से आजीवन प्रेरित रहे।

उन्हें विश्वास था कि 'तिब्ब रंग और नस्ल की बन्दिशों से पाक'

है। बिल्कुल एक वृक्ष की तरह जो कुल्हाड़ा मारने वाले को भी अपनी परछाइयों से वंचित नहीं रखता। इसी प्रकार वैद्य किसी भी मनुष्य को उपचार की सुविधाओं से वंचित नहीं रख सकता चाहे वह उसका घातक शत्रु ही क्यों न हो।

श्रीमद्भगवद्गीता के कर्तव्य कर्म सिद्धान्त से श्रीभट्ट पर्याप्त प्रभावित थे। उन्होंने गीता के उपदेश को ही जीवन-लक्ष्य स्वीकारा था। कर्तव्य निबाहना ही वह अपना धर्म समझते थे।

व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है, व्यक्ति से अधिक जाति और जाति से ऊपर राष्ट्र का महत्त्व है। श्रीभट्ट एक महान राष्ट्र भक्त एवं जाति हितैशी पण्डित थे। श्रीभट्ट की कर्तव्यनिष्ठा देखकर बड़शाह सोच में पड़ गये थे और ईश्वर से दुआ करने लगे ' मुझे क्षमा कीजिये इतनी शक्ति दीजिए कि मैं इस जाति के साथ मानवीय व्यवहार कर सकूँ।'

दैनिक मार्तण्ड श्रीनगर ने ११ अप्रैल १९५६ ई० में समाचार पत्र का एक विशेष अंक ' श्रीभट्ट एडिशॅन' शीर्षक से प्रकाशित किया था। प्रस्तुत परिचय पत्र लिखने के हेतु इस विशेष अंक से सहायता ली गई है।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



माता सती द्यद

माता सती द्यद ने श्रीनगर में करफली मुहल्ले के तिक्कू परिवार में जन्म लिया था। उनका विवाह उस समय की प्रचलित सामाजिक प्रथा के अनुसार शैशव काल में ही हुआ था। कहा जाता है कि उनका ससुराल श्रीनगर के निकट स्थित एक गाँव में था वहीं उन्होंने एक कन्या को भी जन्म दिया जिसका नाम ड्यक द्यद था । ड्यक द्यद का स्वर्गवास सन् १६८६-६० में हुआ है।

वैवाहिक जीवन धारण कर भी माता सती को सांसारिक जीवन व्यतीत करने का कोई अभिप्राय नही था। वह सही दिशा दर्शाने वाले गुरु की तलाश में थीं। इसी बीच उनका सम्पर्क सिद्ध पुरुष स्वामी आफ़ताब जू से हुआ। स्वामी आफ़ताब जी योग सिद्ध उच्च कोटि के एक महान सन्त थे। वे प्रायः शमशान घाट कर्णनगर में साधना में रत रहते थे।

माता सती में भक्ति और आध्यात्मिक पथ पर चलने की जिज्ञासा को देख कर स्वामी जी ने उन्हें अपनी कृपा दृष्टि से निहाल किया और इससे उन्हें अष्ट- सिद्धियाँ प्राप्त हुईं ।

माता जी अपने पिता के घर करफ़ली मुहल्ले में ही निवास करती थी। वहीं वह सामान्य हिन्दु नारी वेश में आसन पर आसीन परम सत्य की खोज में साधना में मग्न रहती थी । भक्तजन आशिष् प्राप्त करने के लिए प्रायः माता के दर्शनार्थ आते थे। माता जी उनकी शांकाओं का समाधान करती । प्रकट न करने पर भी सती माता उनके हृदय की अवस्था भाँप कर अभिलाषा पूर्ति करने के हेतु दिशा निर्देश करती थी तथा शंकाओं का समाधान करने के लिये संयमित साधारण जीवन जीने की प्रेरणा देती थीं । भक्त जन उनके परामर्श को जीवन प्रसाद समझ कर ग्रहण करते थे। माता क मन में हर भक्त

(चित्र उपलब्ध नहीं है)

माता सती द्यद (- १६३४ ई.)

के प्रति स्नेह था भले ही वह किसी और जाति, सम्प्रदाय अथवा धर्म का रहा हो।

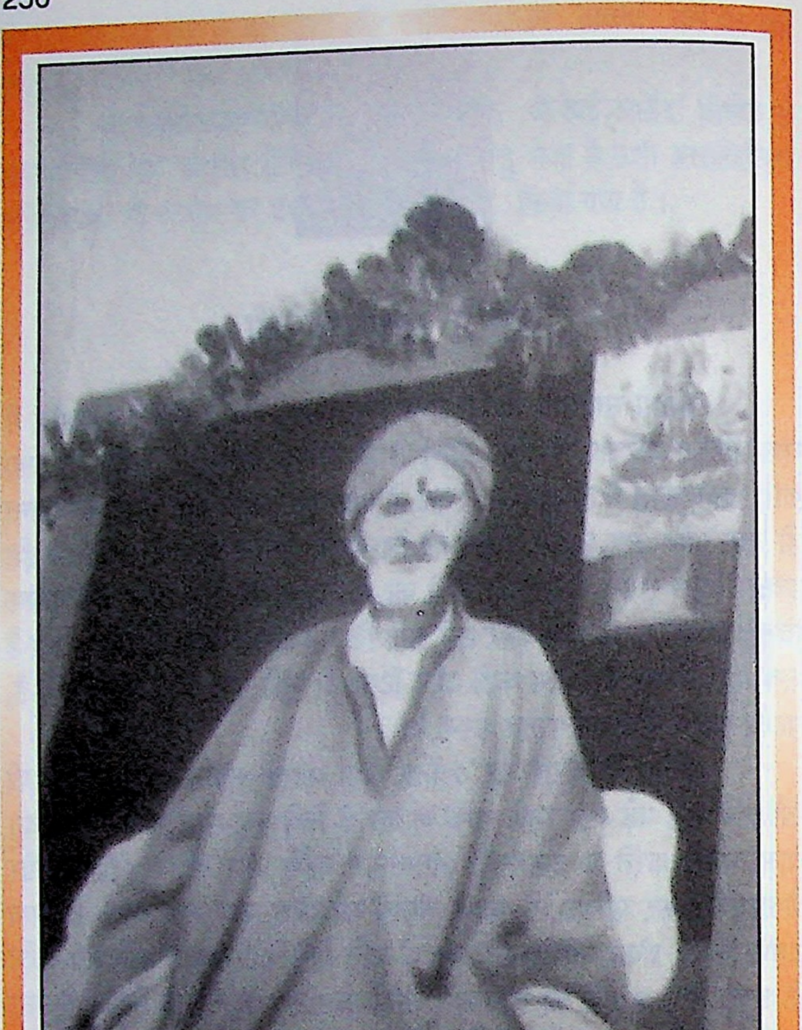
श्री मक्खनलाल वांगनू ने ' सेन्टेस ऑफ अँ हाई आर्डर' शीर्षक से एक परिचय पत्र 'कश्मीर सेंटिनल' में प्रकाशन हेतु भेजा है उसी हस्तलिखित परिचयपत्र के आधार पर प्रस्तुत रेखाचित्र तैयार किया गया है ।



स्वामी सर्वानन्द जी

स्वामी सर्वानन्द जी का जन्म सन् १८८६ ई० में बंडीपोरा कश्मीर में एक पण्डित परिवार में हुआ। जन्म से ही बालक अत्यन्त तेजस्वी दिख रहा था। बाल्यकाल में ही अकस्मात् एक के बाद एक उनके माता-पिता का देहान्त हो गया और अब लालन पालन की ज़िम्मेदारी उनकी दादी ने सम्भाली। ईश इच्छा ! कुछ समय के पश्चात् दादी का भी देहान्त हो गया और अब बालक बिल्कुल अकेला रह गया और उसे लगा कि यह संसार मायाजाल है, धोखा है सब कुछ मिथ्या है। सत्य कहीं और छिपा है। मुझे उस सत्य को ढूँढना है, पहचानना है और आत्मसात करना है।

जीवन के दोराहे पर अकेला खड़ा बालक सर्वानन्द परम सत्य की खोज में चल पड़े यह उनके भावी जीवन के लिये एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था। यात्रा करते करते वे उमानगरी अनन्तनाग पहुँचे और प्रसिद्ध विद्वान और शैवाचार्य शंकर पण्डित के चरण कमलों पर शीश नवा कर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। शंकर पण्डित उस युग के जाने माने वेदान्ताचार्य तथा शैव दर्शन के ज्ञाता थे । शास्त्रों की जानकारी उन्हीं के चरण कमलों के निकट बैठकर सर्वानन्द को प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उपनिषद्, पुराण, वाल्मीकि रामायण, अद्वैतदर्शन एवं ज्योतिष की जानकारी उन्हीं से मिली। सर्वानन्द के लिये श्री शंकर पण्डित का सान्निध्य वरदान सिद्ध हुआ । वर्षों वे श्री शंकर पण्डित के सम्पर्क में रहे जिन्होंने एक पत्थर को तराश कर बहुमूल्य हीरा बना दिया। श्री शंकर पण्डित ने ही सर्वानन्द को गौतमनाग (अनन्तनाग) के महान सन्त योगीराज स्वामी गाश काक जी महाराज के सुपुर्द कर दिया। स्वामी गाश काक ने सर्वानन्द को अध्यात्म की रहस्यात्मक गुत्थियों से परिचित कराया और दिव्य साधना पथ पर निरत चलने की प्रेरणा दी। उनकी ग्रहण शक्ति एवं



स्वामी सर्वानन्द जी (१८८६ - १६७८ ई.)

दृढ़ स्थिर- चित तथा संकल्प वृत्ति से स्वामी गाश काक बहुत प्रभावित हो उठे और उन्होंने कुछ समय के बाद उन्हें अपना प्रधान शिष्य घोषित किया। ब्रह्मलीन होने से पूर्व स्वामी जी ने गौतमनाग आश्रम सर्वानन्द के सुपर्द किया और परमज्योति पुंज में समा गये।

गौतमनाग आश्रम में स्वामी सर्वानन्द पुनः योग साधना में लीन रहे और वर्षों कठोर तपस्यारत रहने के बाद उन्हें पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुइ। ज्ञान योग के पथ पर वे निष्काम भाव से एक एक मंज़िल पार करते हुए दिव्यानन्द से पूर्ण परिचित हुए।

स्वामी जी किसी प्रकार के प्रचार में विश्वास नहीं रखते और यदि कोई ऐसा प्रचारात्मक कर्म करता तो वे रुष्ट होकर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते थे।

श्री कृष्णजी पण्डिता का मानना है कि उन्हें जब जब स्वामी सर्वानन्द का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो माँ का प्यार, पिता की देख-रेख, गुरु का अनुशासन, दाता का रक्षण और परमात्मा का अनुग्रह सब कुछ उन्हें वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ।

सन् १९७५ ई० में स्वामी जी ने गौतमनाग आश्रम की ज़िम्मेदारी स्वामी माधव दास जी के ऊपर डाल दी और स्वयं अब केवल ईश-वन्दना में रत रहे।

स्वामी जी को अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण था और उपलब्ध साधनों से ही वह अपना जीवन निर्वाह करते रहे। उन्होंने जीवन में कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और न ही किसी प्रकार की सहायाता स्वीकार की।

मार्ग कृष्ण पक्ष त्रयोदशी सन् १९७८ ई० को ६ बजे प्रातः स्वामी जी ने ९२ वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त कर भौतिक काया को सदा के लिये छोड़ दिया।

श्री कृष्णजी पण्डित ने स्वामी सर्वानन्द जी के जीवन के विषय में जो जानकारी लिख कर भेजी है, प्रस्तुत जीवन चरित लिखने में उससे पर्याप्त सहायता ली गई है। सन् १९७३ ई० में इन्होंने स्वयं स्वामी जी का शिष्यत्व ग्रहण किया था और वे लगभग ६ वर्षों तक उनके निकट रहे हैं।

स्वामी जी ने स्वयं अपनी जन्म तिथि एवं जन्म स्थान के विषय में



स्वामी सोनुँकाक जी

स्वामी सोनुँकाक का जन्म खरयार हब्बाकदल श्रीनगर में सन् १८७८ ई० में हुआ था। उनके छोटे भाई पण्डित रघुनाथ भी सन्त प्रकृति के जीव थे। स्वामी सोनकाक जी पण्डित पुरोहित परिवार से सम्बन्धित थे। लोग उन्हें सोन बब, सोन बोय, सोनमोत आदि नामों से जानते थे। उनके पिताजी भी जाने माने पुरोहित और सन्त थे । लोग उन्हें 'लोरिपीर' (छड़ी वाले पीर) भी कहते थे क्योंकि उनके हाथ में हर समय एक छड़ी रहती थी। महराजा प्रताप सिंह उनका बहुत मान सम्मान करते थे। आरम्भ में सोनुँकाक ने भी अपने पिता का पेशा ग्रहण किया और जीवन निर्वाह करने लगे लेकिन उन्हीं दिनों वे रोज़ शहर के बाहर स्थित मरघट (मसान, श्मशान) पर जाते थे और एक विशिष्ट साधना में लीन रहते थे। धीरे-धीरे वे इस साधना में इतना लीन हुए कि पुरोहिताई का पेशा छोड़ कर मस्तानों का सा जीवन जीने लगे। लोग उसके पीछे पीछे चलते थे और वह अनापशनाप बोल कर आगे निकल जाते थे। कभी किसी दुकान पर बैठ कर चाय पीते थे या चिल्म के कश लगाते थे। अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षित होकर वह दीवानों की तरह जीवन जीने लगे और धीरे धीरे लक्ष्य के करीब पहुँच कर शान्त हुए। स्वामी जी का अपना पैतृक निवास खरयार - श्रीनगर में स्थित था । आलीकदल श्रीनगर में पण्डित श्रीधर जू धर के निवास पर १४ वर्ष स्थायी रूप से रहे हैं क्योंकि अपना एक मंज़िला मकान खरयार में तबाह हो गया था ।

स्वामी जी के कई भक्त थे जो उनके महात्म्य को समझ कर उनसे आशीर्वाद पाने के हेतु व्याकुल रहते थे लेकिन उनके शिष्य बहुत कम थे। उनके भक्तजनों में घाटी के नामवर सज्जन डाक्टर गाशलाल जी (शल्यचिकित्सक) थे। कुछ दिनों स्वामी जी उनके निवास पर भी रहे और

(चित्र उपलब्ध नहीं है)

स्वामी सोर्नुकाक जी (१८७८ - १९४२ ई.)

फिर आलीकदल लौट आये।

स्वामी जी महाकाली के भक्त थे। अन्तिम समय से पूर्व वे अपने एक भक्त श्री श्यामलाल के घर गये । दही की कटोरी महाकाली के देवीगृह की ओर मुँह करके वितस्ता में बहा दी। नाव मंगवा कर पोखरीबल चले गये और लोगों से यह कह कर कि शक्ति माँ का आदेश जाने के लिये मिल गया है, वापस रातों रात लौट चले और गदाधर मन्दिर के पास जब नाव पहुँची तो सब को बाहर जाने का आदेश देकर अपने शिष्य विश्वम्भरनाथ जुत्शी से चाय बानने के लिये कहा। चाय पीली और पद्मासन में महासमाधिस्थ हुए। यह दिन चैत्र दुर्गाष्टमी (सन् १६४२ ई०) का पुनीत दिन था। उनके पार्थिव शरीर को उनके पैतृक निवास खरयार पहुँचा कर लोगों के दर्शनार्थ रखा गया और दूसरे दिन उनका दाह संस्कार किया गया।

स्वामी जी और उनके भाई दोनों ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण कर चुके थे।

स्वामी जी कभी-कभी आनन्दावस्था में आये हुए भक्त जनों की बातें सुनकर कष्ट निवारण के हेतु उपाय बताते थे अथवा अपनी ही दिव्य दृष्टि के प्रताप से भक्तों का कल्याण करते थे।

देश और देशवासियों के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति रहती थी और कभी-कभी सांकेतिक रूप में वे भविष्य वाणियाँ भी करते थे।

संकट ग्रस्त भक्त जनों के दुख को कम करने के हेतु वे सदा तत्पर रहते थे।

एक अज्ञात व्यक्ति (सम्भवतः 'कोशुर समाचार' के सम्पादक महोदय) ने स्वामी सोनॅुकाक पर अंग्रज़ी भाषा में एक लेख लिखा है जो 'कोशुर समाचार' के फरवरी १६६६ ई० में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत परचिय पत्र लिखते समय उस लेख से सहायता ली गई है।

कश्मीर की
सन्तपरम्परा



पण्डित सोनुँराम रैणा

महापुरुष पण्डित सोनुँराम रैणा तहसील और ज़िला पुलवामा कश्मीर के द्रस्सु गाँव के मूल निवासी थे। आप का जन्म द्रस्सु गाँव में पण्डित दयाराम रैणा के घर १६ अगस्त सन् १६०७ ई० के दिन हुआ। आपके दादाजी स्वर्गीय मुकुन्द रैणा एक महान सन्त और भक्त कवि थे। उनके भाई पण्डित दामूदर रैणा इलाके के जाने माने फ़कीर थे।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद पण्डित सोनुँराम राज्य के कृषि विभाग में ब्लॉक कृषि कार्यकर्ता नियुक्त हुए और काफ़ी समय तक काम करने के बाद सेवा निवृत्त हुए।

आरम्भ से ही दैवी शक्ति के प्रति आकर्षित थे तथा गुरुदीक्षा पाकर विधिवत साधनात्मक जीवन व्यतीत करने लगे। चिन्क्राल मुहल्ला श्रीनगर के श्री बलधर पण्डित आप के गुरु थे जिन्होंने आपको गीता रहस्य एवं भारतीय दर्शनों की सम्यक् जानकारी दी। इन्हीं से आपने संस्कृत भाषा की जानकारी भी प्राप्त की।

पण्डित सोनुँराम एक गृहस्थ सन्त थे। पारिवारिक सुख उन्हें भरपूर मिला लेकिन वे आध्यात्मिक आनन्द की तलाश में रहे।

आपने महाभारत का कश्मीरी भाषा में गद्यानुवाद किया जो कि जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने आपसे हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में प्राप्त किया। अकादमी की ओर से सन् १६७२ ई० में इस कार्य के लिये आपको पुरस्कृत भी किया गया था।

आपने महाभारत के अनुवाद को आठ उप-खण्ड़ों के भीतर विभक्त करके लिखा है। इसके अतिरिक्त आपने असंख्य लीलाएँ एवं भजन लिखे हैं जो 'अमृत भक्ति भजन माला' तथा 'बो'ड कलियुग' शीर्षक पुस्तिकाओं में



पण्डित सोनुॅराम रैणा (१९०७ - २००२ ई.)

पढ़ने को मिलते हैं।

पण्डित सोनुँराम आजीवन साधनारत रहे विशेष कर जीवन के अन्तिम नौ वर्ष वे रात दिन भगवत् साधना में लीन रहे। पण्डित सोनुँराम को सम्पूर्ण भगवद्गीता कंठस्थ थी और प्रतिदिन प्रातः ४ बजे से दो घण्टे लगातार भगवद्गीता का पाठ करते थे।

अपनी लीलाओं और भजनों को आपने अपने मधुर कंठ से गाकर कैस्टों में रिकार्ड कर रखा है जिनकी संख्या एक सौ पचास से ऊपर है।

पण्डित सोनुँराम ने अनेक भविष्यवाणियाँ की हैं जो यथोचित समय पर सत्य प्रमाणित हुई हैं। ६ जुलाई सन् २००२ में मिश्रीवाला कैम्प के क्वाटर नम्बर ३६५ में पण्डित सोनुँराम का देहावसान हुआ।

पण्डित सोनुँराम एक अत्यन्त मधुर-भाषी सरल प्रकृति के सज्जन थे। हर समय दूसरे के कष्ट निवारण के हेतु प्रयत्नरत रहते थे। उन्हें अपनी चिन्ता नहीं थी। सब के कल्याण हेतु तथा हिन्दुत्व के उत्थान की कामना करते हुए उनकी इहलोक लीला समाप्त हुई।

पण्डित सोनुँराम के शिष्यों में सर्वश्री चूनी लाल, सतीश कुमार भट्ट एवं महाराजकृष्ण रैणा उल्लेखनीय हैं।

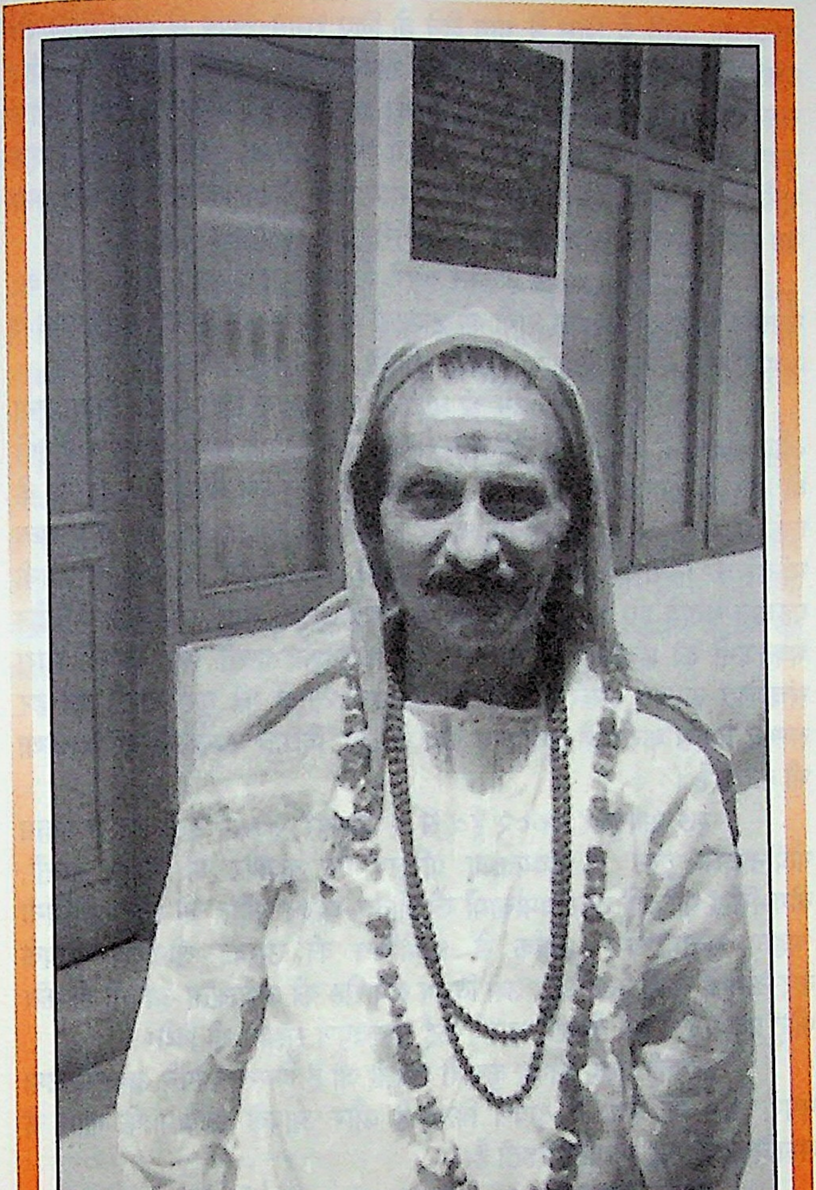
पण्डित सोनुँराम की निम्नलिखित लीलाएँ पर्याप्त चर्चित रही हैं :-

१. मनि मंज़ बिहित छुम आदनुक यार, कृष्ण भगवानस छु जय जय कार
२. भगवानुँ चावतम प्रेमुक ज़ल, पान वथरावह्य पादन तल
३. मनि मंज़ दयि सुंज़ माय गनिराव, दयि लोलुँ सूत्यन मन फोलुँराव
४. तुलॅमुलि छख किन लुकुँ भवनै यति छक तुँ तति मॉज्य भविनय जय
५. मरुनुई यार्दुई थाव, स्वर गोविन्द सुन्द नाव
६. अपजुई छुई यि संसारो लो भगवानुँ यीतनय चे़ ऑर लो
७. दितमो दर्शुन लगयो पादन, नादन कन थाव भगवानो।



स्वामी स्वयमानन्द जी

आपका जन्म ६ जून सन् १९२८ ई० के दिन गणपतयार श्रीनगर में हुआ। प्रारम्भ में आपने सामान्य मनुष्य का गृहस्थी जीवन ही व्यतीत किया। इस बीच आपने राज्य सरकार के वन विभाग में नौकरी की। किन्तु गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए आपने नित्य धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करना कभी नहीं छोड़ा। नौकरी के दिनों आप घाटी के दूरस्थ गाँव में काम करने के लिए भेजे गए। इन्हीं दिनों आप हन्दवारा के निकट राजवारा ब्लॉक में स्थित मच्छीपोरा गाँव के एक प्रसिद्ध मस्ताना सन्त सलाम साहिब के निकट सम्पर्क में आए। वे आपके व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित हुए और एक दिन उन्होंने आपको वरदान मांगने के लिए कहा। आपने अपनी पत्नी के स्वस्थ रहने की इच्छा प्रकट की किन्तु सलाम साहिब वरदान में भक्त को कुछ और भी देने के इच्छुक थे इसलिए उन्होंने आपसे कहा कि कुछ और भी मांगो। यह घटना आपके जीवन में एक विचित्र मोड़ लाई और तभी से गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए एक सन्यासी के भाँति घर में जीवन-निर्वाह करने लगे। घर से प्रातः निकल कर नित्य दुर्गानाग श्रीनगर के पास शंकराचार्य पहाड़ी पर स्थित शिव मन्दिर में पानी से भरी पीतल की गागर का जल लेकर शंकर के शीश पर चढाना वर्षों अविराम चलता रहा। कुछ वर्ष बाद आपने अनन्तनाग ज़िले के शांगस क्षेत्र में स्थित माता उमा देवी के मन्दिर (ब्रारिआंगन) की जीर्ण-शीर्ण स्थिति को सुधारने का निश्चय किया, ऐसा उन्होंने एक दैवी आदेश के आधार पर किया जो उन्हें शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मणजी (ईशबॅर निशात) से प्राप्त हुआ। घाटी के इस दूरस्थ स्थान में हिन्दुओं के कुछ परिवार ही पड़ोस के गांव में रहते थे। मन्दिर का जीर्णोद्धार आपने किया और नव-निर्माण की कई परियोजनाएँ बनाई। कुछ ही वर्षों में जीर्ण-शीर्ण पड़े मन्दिर का नव-निर्माण हुआ और आपके द्वारा संचालित मन्दिर पुनर्निमाण परियोजना भी सफलतापूर्वक पूरी हुई। हर वर्ष आप यहां गंगाष्टमी के दिन एक महायज्ञ का



स्वामी स्वयमानन्द जी (१६२८ - २००५ ई.)

आयोजन करते थे जिस में भाग लेने के लिए स्थान-स्थान से लोग आते थे। एक प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर होने के बावजूद यह स्थान दोनों सरकार और समाज के ध्यान से निकल चुका था किन्तु अब यहाँ की सड़कों का भी निर्माण हुआ औरं लोगों के आने जाने का क्रम फिर आरम्भ हुआ। यह कार्य एक चुनौती भरा कार्य होने के साथ-साथ सामाजिक गौरव का कार्य भी था। अब यह स्थान अपने वास्तविक नाम 'उमानगरी' नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

सधनात्मक जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ आप रुग्ण लोगों का उपचार भी करते थे। कई रोगी जो डाक्टरों के उपचार से स्वस्थ न हो सके वे आपके मन्त्र - यन्त्र तथा आयुर्वेदिक औषधि से स्वास्थ्य लाभ कर गए हैं।

दुर्भाग्य वश हिन्दुओं को घाटी से पलायन के लिए विवश किया गया और भक्तजनों को आपके अविछिन्न सम्पर्क में बाधा पड़ गयी। किन्तु कुछ वर्षो के बाद ही आपने अपने भक्तों की इच्छा के अुनकूल जम्मू में मुट्ठी के एक-भू खण्ड जो कुछ वर्ष पूर्व बंजर ज़मीन का टुकडा था, पर एक भव्य मन्दिर का निर्माण किया । आज यह मन्दिर 'स्वयमानन्द आश्रम' से अपनी पहचान बनाये हुए है। इसी स्थान पर आप अपनी साधना में रत रहे और भक्तजनों की शंकाओं का समाधान एवं मार्गदर्शन करते रहे। आपके द्वारा संचालित आश्रम ज़रूरत मन्दों की आवश्यकताओं को पूरा करने का हर सम्भव प्रयास करता है तथा जन हित के लिए विभिन्न कार्यक्रमों की व्यवस्था भी करता है ।

२७ अक्टूबर २००२ ई० से २ नवम्बर २००२ ई० तक 'भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट' ने उदयवाला परिसर पर कश्मीर के महान सन्तों, योग-सिद्ध पण्डितों और धर्माचार्यों की जीवन-चरित सहित जो फोटू-प्रदर्शिनी 'महान सन्तपरम्परा' शीर्षक से आयोजित की उसका श्रीगणेश आपके कर-कमलों से ही हुआ और उस विशेष समारोह की अध्यक्षता आपनी ही की। फोटू प्रदर्शिनी देखने के बाद आपने कई महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिये।

आपकी मुख्य शिष्या कुमारी लवली जी हैं जिसने अपने आपको उमा नगरी धाम की सेवा में अर्पण किया है और आपके आश्रम के काम मे सहायिका के रूप में व्यस्त रहती है।

आपका महानिर्वाण २६ नवम्बर सन् २००५ ई० को जम्मू में हुआ। ३० नवम्बर २००५ ई० के दिन आपका दाह संस्कार किया गया और हज़ारों भक्तजनों ले आपकी अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होकर आपके प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किये। ४ दिसम्बर २००५ ई० के दिन भगवान गोपीनाथ जी आश्रम उदयवाला में स्वामी जी को श्रद्धांजलि देने के हेतु एक शोक-सभा

का आयोजन हुआ।

प्रस्तुत चरित-लेख लिखने के लिए डॉ० तेजकृष्ण मोज़ा द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में भेजे गए 'स्वामी स्वयमानन्द जी' लेख से पर्याप्त सहायता ली गई है।

सम्पादक के निजी अनुभव

१८ अक्टूबर २००५ ई० के दिन दिल्ली में प्रोफेसर चमनलाल सप्रू से मेरी भेंट हुई। सप्रू जी ने श्रीराम कृष्ण कथा अमर्यथ' (राम कृष्ण परहंस की जीवनी का कश्मीरी अनुवाद जो सप्रू जी ने किया है) की एक प्रति मेरे हाथ स्वयमानन्द जी को देने के लिए दी। यह पुस्तक स्वामीजी को देने के लिए मैं ३१ अक्टूबर २००५ ई० सायंकाल उनके आश्रम मुठ्ठी पहुँचा। उन्होंने मुझे अन्दर बुलाया। वे रोग-शय्या पर थे लेकिन आतिथ्य सत्कार को नहीं भूले। मेरे लिये चाय बनाने का आदेश दिया और चाय पिलाकर ही मुझे आशीर्वाद देते हुए सप्रू जी की पुस्तक स्वीकार की। पुस्तक देख कर बहुत प्रसन्न हुए। एक पन्ना पढ़ लिया और अपना हाथ मेरे सिर पर रख कर मेरे उज्जवल भविष्य की कामना की।



स्वामी हरकाक जी

{ हरबब }

उत्तरीय कश्मीर के जन साधारण में 'हरबब' के नाम से प्रसिद्ध स्वामी हरकाक जी उर्फ़ श्री स्वामी हरीराम जी का जन्म कुपवाड़ा के बुमहामा ग्राम में वि० स० १९६० अश्विन कृष्ण पक्ष त्रियोदशी तदनुसार ई० 1903 को धर-भारद्वाज गोत्र के एक साधारण पण्डित गृहस्थ परिवार में हुआ था, पिता का नाम श्री नाथराज धर था। वे कृषक थे और साथ ही पी० डब्ल्यू० डी० विभाग में नौकरी करते थे।

माना जाता है कि स्वामी जी ने मात्र ५-६ वर्ष की छोटी आयु में परमार्थ-मार्ग पर पदार्पण किया था, स्वामी जी जब ६ वर्ष के थे तो उस समय कश्मीर घाटी को 'कॉलरा' महामारी ने अपनी झकड़ में लिया था। स्वामी जी भी इसकी मार से बच न सके। उस समय उपचार की सुविधाओं के अभाव के कारण स्वामी जी को राम-भरोसे छोड़ा गया। सौभाग्यवश एक दिन उस समय के एक प्रसिद्ध सन्त - सोपोर के स्वामी शिवजी पट्टू सम्बन्धी के रूप में हरकाक जी के घर पधारे। स्वामी हरकाक जी के पिताजी अपने पुत्र के स्वास्थ्य-सुधार के विषय में पूर्णतया निराश हो गए थे। अतः उन्होंने घर आये स्वामी जी से मरणासन्न बालक की आत्मा की शान्ति के लिए उसके कान में कुछ मन्त्र फूँकने की विनती की। आदरणीय सन्त ने बालक के कानो में कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया और उसे बिना अवरोध के एक मन्त्र दोहराने का निर्देश दिया। बालक ने निर्देश का शब्दशः पालन किया और कुछ समय के बाद वे रोग मुक्त हुए। अपने आप में यह चमत्कार ही था। 'हरबब' यह मन्त्र बराबर जपते रहे और एक वर्ष बाद सन्त और बालक का पुनः साक्षात्कार हुआ। बालक ने सन्त के सम्मुख अपनी प्रगति प्रकट की। सन्त शिवजी पट्टू



स्वामी हरकाक जी (१६०३ - १६७५ ई.)

बच्चे की प्रगति के विषय में प्रसन्न और आश्चर्यचकित हुए। तत्पश्चात् सन्त जी ने विधिवत स्वामी हरबब को अपने शिष्य के रूप में ग्रहण किया। स्वामी जी की सघन तपस्या के फलस्वरूप भगवती महामाया की कृपा उन पर हुई और १८ वर्ष की आयु में ही पूर्ण योगी बने। सन्त परम्परानुसार उन्हें 'इलाकादारी' की उपाधि मिली। { 'इलाकादारी' कश्मीर के सन्तों, ऋषियों, सूफियों, मस्तानों आदि के बीच धर्म और जातिगत भेद-भाव रहित पारस्परिक आध्यात्मिक बन्धुत्व है।} स्वामी 'हरकाक' के गुरु मुश्किल कुशाँ ऋषिपीर' की परम्परा से सम्बन्धित थे, वे सोपोर के थे और हिन्दू दर्शन-विशेषकर शैवमत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

स्वामी हर बब जी अपने सन्त-जीवन के प्रारम्भिक काल में प्रायः गुप्त ही रहे। पर महामाया की इच्छानुसार कश्मीर को एक अन्य महान सन्त मणिगाम के स्वामी कशकाक ने श्रद्धालुओं को उनके (हरबब) के पास भेजना आरम्भ किया था। इतना कि १९६०-६१ की माघ शुक्ल पक्ष चतुर्दशी को स्वामी कश काक जी ने स्वामी हरबब को मणिगाम आने का सन्देश दिया। तीन दिनों से अनवरत हिमपात के बावजूद स्वामी जी कैसे मणिगाम पहुँच सके, यह अपने आप में चमत्कार ही था। स्वामी कशकाक जी ने वहीं अपनी 'इलाकादारी' स्वामी 'हरबब' को सौंपी और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त किया।

स्वामी जी सरल कश्मीरी भाषा में उपदेश देते थे और उनकी कथन-कला से श्रोता-गण घन्टों मन्त्र-मुग्ध होते थे। उनके उपदेशों की वर्णन-कला में किसी सख़्त जान नास्तिक के मन को भी पिघलाने की शक्ति होती थी। स्वामी जी को जिन सन्तों-साधुओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ था उनमें स्वामी नन्दलाल जी, स्यद मोल, स्वामी आफ़ताब राम, चण्ड़ी गाम के बाबा जी, रफी-आबाद गोफ़्बल के स्वामी अगस्त्य मुनि, श्री अमा साहिब यारू, श्री कादिर साहिब { हीरी, कुपवाड़ा} आदि थे।

आजकल स्वामी 'हरबब' का शिष्य परिवार उनके उपदेशों के प्रचार-प्रसार के शुभ और कल्याणकारी काम में जुटा हुआ है।

स्वामी जी ने ४ अप्रेल सन् १९७५ ई० तदनुसार चैत्र कृष्ण पक्ष सप्तमी २०३२ को निर्वाण प्राप्त किया। स्वामी जी एक गृहस्थी सन्त थे और अपने नाम पर कोई आश्रम स्थापित करना उन्हें स्वीकार न था। वे 'बमहामा' में अपने घर को ही अपने शिष्यों के लिए आश्रम मानते थे। उनकी जयन्ती पर

यज्ञ पहले बमहामा में हुआ करता था। आजकल जम्मू में तालाब तिलो में उनके नाम के साथ जुड़े आश्रम पर हुआ करता है।

स्वामी जी की शिष्य परम्परा में कश्मीर के कई प्रतिष्ठित महानुभावों की गणना होती है। गुशी कुपवारा के स्वामी व्यदलाल जी उनके गुरु भाई थे।

डॉ० अशोक पण्डित से 'हरबब' पर एक परिचय-पत्र प्राप्त होने के बाद ही प्रस्तुत जीवन चरित तैयार किया गया है। डॉ० साहब के परिचय-पत्र से सहायता ली गई है।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



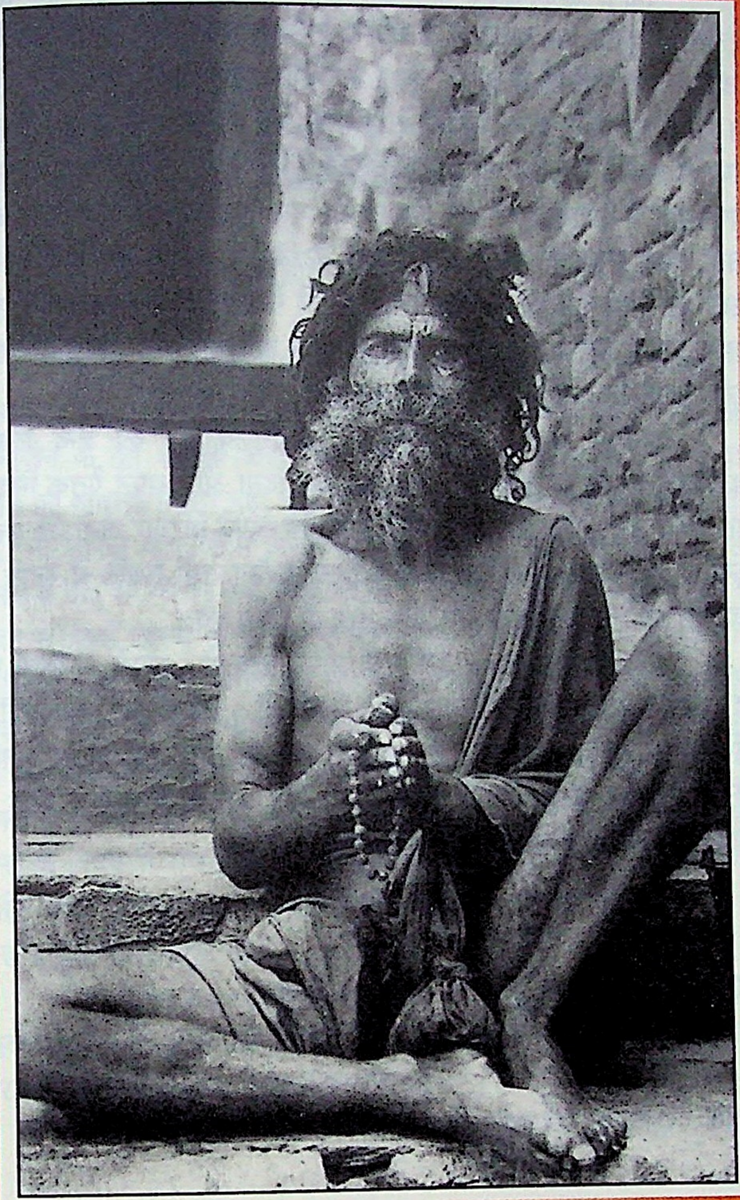
पण्डित हरजू मस्ताना

{ हरकाक खिव }

पण्डित हरजू फटे-पुराने कपड़े पहन कर नंगे पैर घूमा करते थे। इन्हीं लक्षणों के कारण इनके नाम के साथ 'मस्ताना' शब्द जुड़ गया। आप खिव के रहने वाले थे पर रहते थे अमीराकदल - श्रीनगर के हनुमान मन्दिर में। आपको वेदान्त दर्शन की गहरी समझ थी। आप कश्मीरी भाषा के अतिरिक्त उर्दू ज़बान से भी परिचित थे। आपको भूत-यज्ञ तथा अन्य लोगों को खाना खिलाने एवं निराश्रितों को आर्थिक सहायता करने में आनन्द आता था। आप दिन भर धन तथा अन्न एकत्र करके इसे विधवाओं, भूखों एवं पक्षियों को खिलाते थे। उन दिनों श्रीनगर का हर कश्मीरी पण्डित बारात को खाना खिलाने से पहले अन्न और व्यंजनों से भरी थाली आपके पास भेजता था। लोगों में विश्वास था कि ऐसा करने से खाना कम नहीं पड़ता । आपकी आध्यात्मिकता का इतना प्रभाव था कि तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री बख़्शी गुलाम मुहम्मद भी आपका काफ़ी आदर करते थे । जो भी आपसे आशीर्वाद प्राप्त करता था उसके बिगड़े काम बन जाते थे।

श्री एच० एल० मिस्री ने स्वामी हरकाक के विषय में तनिक जानकारी लिख कर भेज दी है जिसके आधार पर यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि हरजू एक पहुँचे हुए सन्त और योगी थे। हर शनिवार के दिन वे विशेष साधना में निमग्न रहते थे और मधुर कंठ से मंत्रोच्चार करते रहते थे। इस दिन वे किसी को भी अपने कमरे में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं देते थे।

पण्डित हरजू कई भाषाओं का व्यवहार करने में कुशल थे जिनमें हिन्दी, कश्मीरी, फारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी प्रमुख हैं।



पण्डित हरजू मस्ताना (हरकाक खिव) (- १६८५ ई.)

स्वामी जी विवाहित थे लेकिन पत्नी का देहान्त विवाह के कुछ समय के बाद ही हुआ था। कहते हैं वे सर्दियों में बिना वस्त्र पहने अपने कमरे में बैठते थे और गर्मियों में कम्बल ओढ़ कर और सामने आग जला कर बैठते थे। पूछने पर कहते थे कि सर्दियों में ग्रीष्म के ताप को बाहर निकालता हूँ और ग्रीष्म में सर्दियों की ठंड को बाहर निकालता हूँ। महान भविष्यवक्ता होने के साथ-साथ वे करामातें भी कर दिखाते थे। एक बार वितस्ता में भीषण बाढ़ आयी, पानी हनुमान मन्दिर अमीराकदल के बिल्कुल समीप तक चढ़ आया। किसी भी समय कुछ भी हो सकता था। हर जू ने खिड़की के पास जाकर हाथ बाहर निकाल कर बाढ़ के बहते पानी से अपने हाथ धो लिये। देखते ही देखते पानी उतरने लगा और कुछ ही दिनों में हालात पूर्णरूप से सुधर गये।

अन्तिम समय पास आने पर उन्होंने कुटिया को बन्द किया। खिडकियों के पटों पर कीलें गाड कर बन्द कर दिया और अपने पैतृक निवास सीन खिव लौट आये। प्राण त्याग से पूर्व उन्होंने अपने परिवार जनों को सचेत किया था कि जिस स्थिति में मैं प्राण त्याग करूँगा उसी स्थिति में स्नान के बाद मेरा दाहसंस्कार करना और ठीक ऐसा ही किया गया।

२१ मई सन् १९८५ ईसवी में आपने खिव में अपने निवास पर देह त्याग किया । आपके परिवार जनों, रिश्तेदारों, शिष्यों तथा भक्तजनों ने विधि पूर्वक आपके क्रियाकर्म की व्यवस्था कर दी और इस प्रकार उनका अन्तिम संस्कार खिव गाँव में हुआ। दसवें दिन आपके सेवकों ने खिव के ज्वालामुखी मन्दिर में भजन कीर्तन की व्यवस्था भी की।

कश्मीर की सन्तपरम्परा



स्वामी हिम्मतकाक

कुपवाड़ा - कश्मीर के गुशी गाँव के निवासी स्वामी हिम्मतकाक का जन्म सन् १८४५ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा-प्राप्ति के बाद हिम्मत काक ज्ञानार्जन के हेतु शारदा शिक्षा पीठ पहुँचे जहाँ उन्हें पठित विद्वानों के पास बैठने का अवसर मिला। यहीं वर्षों साधनारत रहने के पश्चात् उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। माँ शारदा की असीम अनुकम्पा से उनके ज्ञानचक्षु खुल गये, उस समय वे ४० वर्ष के थे। एक दुखद घटना के कारण (बहन के विधवा होने की वजह से) उन्हें शारदा से लौट आना पड़ा और श्रीनगर में अपनी विधवा बहन के घर के निकट सत्थू शीतलनाथ में एक कुटिया का निर्माण करके वहीं स्थायी रूप से रहने लगे । स्वामी जी अन्तिम समय तक इसी कुटिया में रहे। स्वामी जी की प्रसिद्धि दूर दूर तक फैलने लगी और हर समय उनकी कुटिया पर भक्त जनों का ताँता बन्धा रहता । महाराजा प्रताप सिंह को जब इस महान सन्त के विषय में सूचना मिली तो वे सन्त की कुटिया पर पधारे और दर्शन पाकर सन्तुष्ट हुए। इसके पश्चात् बहुत समय तक वे स्वामी जी से मिलने कुटिया पर आते रहे।

श्री के० एल० स्वरूप ने स्वामी हिम्मत काक का एक अत्यन्त संक्षिप्त जीवन-चरित लिखा है जो दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'कोशुर समाचार' फरवरी १९९९ ई० अंक में प्रकाशित हुआ है।

प्रस्तुत परिचय पत्र तैयार करने के हेतु उस से सहायता ली गई है।

(चित्र उपलब्ध नहीं है)

स्वामी हिम्मतकाक

(१८४५ - १६१२ ई.)



स्वामी हरेकृष्ण जी

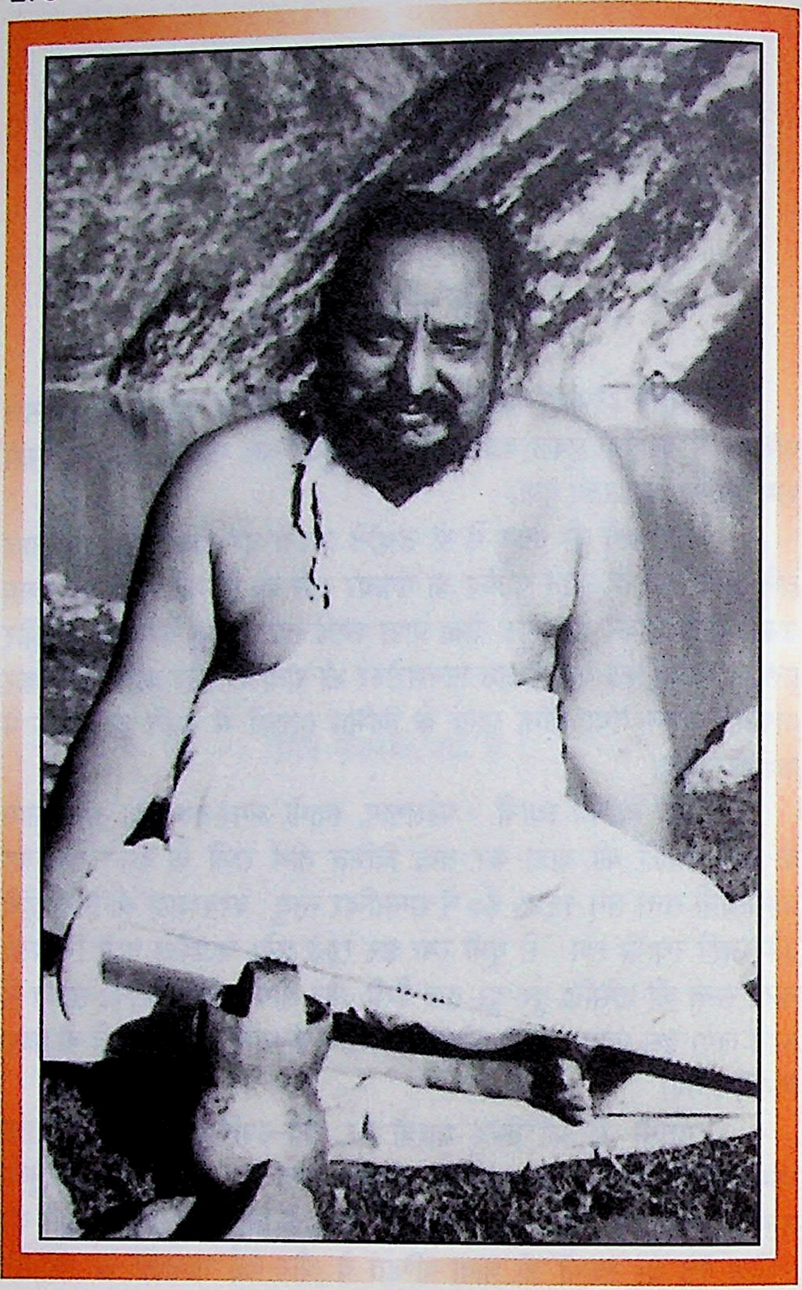
स्वामी हरेकृष्ण महाराज का जन्म वाराणसी के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में कार्तिक शुक्ल पक्ष एकदशी को हुआ था। नवजात शिशु का नाम राम किशोर दास रखा गया।

सात वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपना घर छोड़ा और प्रयागराज चले आये जहाँ वे अपने गुरुदेव श्री गंगाधर दास जी से मिले और कुछ समय उनके साथ रहकर तथा गुरु दीक्षा प्राप्त करके तपस्या हेतु हिमालय की ओर प्रस्थान किया। कई बार कैलाश मानसरोवर की यात्रा की और वहाँ से लौट कर अफ़गानिस्तान तथा सीमा प्रान्त के विभिन्न इलाकों में घूमते हुए अन्त में कश्मीर पहुँचे।

यहाँ विभिन्न स्थानों - पहलगाम, स्वामी अमरनाथ तथा अनन्तनाग के तीर्थ स्थलों की यात्रा कर तथा विभिन्न तीर्थ राजों के दर्शन कर यह ब्रह्मज्ञानी सन्त सन् १९४५ ई० में राममन्दिर स्तथू बरबरशाह श्रीनगर पहुँचे और यहाँ स्थायी रूप से धूनी रमा कर रहने लगे। जटाकेश धारी निरवस्त्र नागा सन्त की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली और लोग दर्शनार्थ काफ़ी संख्या में आने लगे। इस प्रकार स्वामी हरेकृष्ण महाराज के नाम से भक्त जनों के हृदय हार बन गये।

स्वामी जी को हिन्दू शास्त्रों पर, वेद-उपनिषद् रहस्य पर तथा श्रीमद्भगवतगीता पर असाधारण अधिकार प्राप्त था । माता अष्टदशभुजा उनकी आराध्य थीं और सदा भक्तों को माता के प्रति पूर्ण समर्पित होने का उपदेश देते थे। स्वामी जी भाषा पण्डित थे और कई भाषाओं का व्यवहार सुविधा के साथ करते थे। अग्रेज़ी भाषा पर भी पूर्णाधिकार था।

अनन्तनाग स्थित नागबल के तीर्थ स्थल पर उन्होंने स्वयं नवदुर्गा की



स्वामी हरेकृष्ण जी (- १६७५ ई.)

पूजा आरम्भ कराई और यही नवदुर्गा के दूसरे ही दिन ६ अक्तूबर १९७५ ई० में नवदुर्गा पाठ मण्डप के निकट उन्होंने महासमाधि में प्रवेश किया और ब्रह्मलीन हुए। स्वामी जी का पार्थिव शरीर श्रीनगर लाया गया जहाँ उनके अन्तिम दर्शन के हेतु अपार जनसमूह उमड़ पड़ा। तत्पश्चात् वैदिक रीति से उनका अन्तिम संस्कार किया गया।

कश्मीर की सन्तपरम्परा

Bhagavaan Gopinathji Trust acknowledges the services of the following former Trustees rendered by them in different capacities in establishing the Trust as pioneers in the background.

1) Lt. Sh. Shankar Nath Fotedar
2) Lt. Sh. Shridhar Joo Dhar
3) Lt. Prof. K.N. Dhar
4) Sh. Prof. J.N. Sharma
5) Lt. Sh. Gopinath Malla
6) Sh. O.N. Bhan
7) Lt. Sh. Makhan Lal Pandita
8) Lt. Justice Shiv Nath Katju
9) Lt. Sh. Anand Koul
10) Lt. Sh. Amar Nath Daftari
11) Lt. Swami Amritanandji
12) Lt. Sh. Hari Krishan Mirza
13) Lt. Sh. Shankar Nath Zadoo
14) Lt. Sh. Madavjoo Sathoo
15) Lt. Sh. Gwash Lal Malla
16) Lt. Sh. Jia Lal Nehru
17) Lt. Sh. Janki Nath Khar
18) Lt. Sh. Aka Lal
19) Lt. Sh. Badri Nath Koul
20) Sh. Brij Nath Tikoo
21) Lt. Sh. Gopinath Dhar
22) Lt. Hakim Sham Lal Bhat
23) Sh. P.N. Pandita
24) Lt. Sh. Narayan Joo Raina
25) Lt. Sh. Major Radha Krishan Raina
26) Sh. Triloki Nath Kachroo
27) Lt. Sh. Triloki Nath Raina
28) Lt. Sh. Radha Krishen Bazaz
29) Sh. Badri Nath Parimoo
30) Lt. Sh. Sham Lal Dhar

It is to be noted that alongside the above Trustees, Sh. Pran Nath Koul, Ms. Jai Kishori Patwari, Sh. S.K. Turki and Sh. M.K. Tikoo have also done commendable services in significant ways. They are also members of the present Board of Trestees.

Names of the members of the former Managing Body who have rendered valuable services as devotees alongside the Trustees.

1) Lt. Sh. Gobind Joo Koul
2) Lt. Smt. Dhani Fotedar
3) Lt. Smt. Dhanwati Dhar
4) Lt. Smt. Anupurna Katju
5) Lt. Sh. Amar Chand Kaw
6) Sh. Jawahar Lal Fotedar
7) St. Smt. Madhav Joo Sathoo
8) Sh. Rajinder Nath Fotedar
9) Sh. Ramesh Chander Sheopuri
10) Lt. Sh. Shamboo Nath Bhan
11) Lt. Sh. Tribuvan Nath Shastri
12) Sh. O.N. Fotedar
13) Lt. Mr. Philip Simpfendorfer
14) Madan Jann Stewart
15) Sh. M.K. Koul
16) Sh. Balbhadra Koul
17) Lt. Sh. Badri Nath Khodbali
18) Lt. Sh. Jagar Nath Chandra
19) Lt. Sh. Dwarika Nath Shalla (Masroor)
20) Lt. Sh. Avtar Krishen Kalla
21) Sh. A.K. Jalali
22) Lt. Sh. Arjan Nath Raina
23) Sh. Ashok Raina
24) Smt. Nirmala Teng (Raina)
25) Smt. & Sh. Prithvi Nath Pandita
26) Sh. Rattan Lal Dhar
27) Lt. Sh. Triloki Nath Dullu (Advocate)
28) Lt. Sh. Vishishwar Nath Tikoo
29) Lt. Sh. Pushkar Nath Tikoo

Bhagavaan Gopinathji Trust:

Names of the present Board of Trustees

1) Kum. Jai Kishori Patwari (President)
2) Sh. S.K. Turki (Vice-President)
3) Sh. Ashok Kaw (Secretary)
4) Sh. S.K. Khurdi (Joint Secretary)
5) Sh. M.K. Tikoo (Organiser)
6) Sh. Tej Kishan Raina (Additional Organiser)
7) Dr. Sushil Wattal (Publicity Secretary)
8) Sh. Satish Razdan (Treasurer)
9) Sh. Shadi Lal Ganjoo (Auditor)
10) Sh. Ashok Kumar Khushoo
11) Sh. Ashok Kumar Razdan
12) Sh. Badri Nath Fotedar
13) Sh. Bhushan Lal Mattoo
14) Sh. Chaman Lal Moza
15) Sh. Deepak Kumar Razdan
16) Sh. Gopi Kishen Koul
17) Sh. Hriday Nath Fotedar
18) Sh. Inder Krishen Koul
19) Sh. K.N. Koul
20) Sh. M.L. Shakdhar
21) Sh. J.L. Malla
22) Dr. T.K. Kak
23) Dr. K.L. Bhat
24) Sh. Mukesh Safaya
25) Prof. O.N. Chrangoo
26) Dr. Opinder Kishan Bhat
27) Sh. P.N. Koul
28) Sh. R.L. Bhat
29) Sh. Sanjay Khazanchi
30) Sh. Sumedh Wattal
31) Sh. S.K. Koul

Names of the special invitees to the Board of Trustees Meetings:

1) Sh. Ravi Sathu
2) Sh. B.L. Razdan

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No. 6949
Dated 10-9-2006

G.M.C.E.J
6949

BHAGAVAAN GOPINATHJI TRUST PUBLICATIONS :

- ***Jagadguru Bhagavaan Gopinathji***
  (A Biographical Study by S. N. Fotedar)
- ***The Saint of All Times*** by Prof. Kashi Nath Dhar
- Birth Centenary Volume : ***Our Spiritual Heritage***
- भगवान गोपीनाथ सहस्रनाम
- श्री ग्वरुँगीता - translation into Kashmiri by P.N. Koul 'Sayil'
- श्री गुरुगीता Or The Hymn to the Guru - translation into English by Prof. J. N. Sharma
- श्री गुरुगीता (हिन्दी व्याख्या सहित) - translation into Hindi by P.N. Handoo, Shastri
- प्रातः आराधना
- सांध्य वन्दना (daily *aarti*)
- श्रीगुरुपादुकास्तुतिः
- पंचस्तवी (Canto I, II, III, IV, V) translation into Kashmiri by Prof. O.N. Chrangoo
- श्री पंचस्तवी (Sanskrit)
- अष्टोत्तर-शतनाम स्तोत्रम्
- श्री बब भगवान चालीसा by C. L. Razdan
- संक्षिप्त महात्म्य (brief biography in Hindi by Prof. B.L. Koul and C. L. Razdan)
- क्षमाअष्टक by C. L. Razdan
- शुद्धविद्या (bi-annual trilingual journal)
- Audio Cassettes, Audio CD's, Photographs (different sizes), Laminated Photographs, Rings, Lockets, Stands New PC, Pens etc.

All the publications of the Trust can be had from Bhagavaan Gopinathji Ashrams :

a) Bohri, Udaiwala Road, Jammu-180 002.
Tel. : 0191-2503783, 2555775 E-mail : bgashram@sancharnet.in

b) Pamposh Enclave, G.K. 1, New Delhi - 110 048.
Tel.: 011-26216368 E-mail : bgashram_delhi@yahoo.co.in

c) Kharyar, Habba Kadal, Srinagar - 190 001.
Tel.: 0194-2456113 E-mail : bgashram_kashmir@yahoo.com